मांस भक्षण की भ्रान्ति

केवल राम

नव साहित्य प्रकाशन, बंगलो रोड, दिल्ली-६

१९६०

पांच रुपये पचास नये पैसे

प्रकाशक:- केवल राम, कसौली

मुद्रक:- रमेश चन्द्र, हिन्द समाचार प्रेस, जालन्धर

विषय सूची



श्री केवल राम जी

दो शब्द

मानव के मन का निर्माण करने में उसके आहार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आहार का निर्णय उसकी उत्पत्ति के स्थान, उपलब्धि के साधन, पाचन की प्रक्रिया, रासायनिक परिणाम और आध्यात्मिक प्रभाव इन पांच प्रकार से हो सकता है। जो वस्तु गंदी जगह पर उत्पन्न होती है वह मन में कभी सात्त्विकता नहीं ला सकती, जिसे किसी को पीड़ा पहुँचाये बिना अथवा धोखा दिये बिना प्राप्त ही नहीं कर सकते वह किस प्रकार हमारे चित्त को निर्दोष रख सकती है ? जिसके पाचन में पाकाशय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है वह वस्तु आलस्य और जड़ता की ही जनक होती है। अतः उसका रासायनिक परिणाम भी स्वास्थ्य के विपरीत ही होगा और शरीर एवं मन पर भी उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकेगा। इन सभी दृष्टियों से मनुष्य के लिये मांस-भक्षण सब प्रकार अनिष्ट का ही कारण है। फिर भी कैसा आश्चर्य है कि संसार की अत्यधिक जनसंख्या मांसाहारी है और दिनों दिन मांस-भक्षण की ही प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। समय-समय पर सभी देशों के मनीषी महानुभाव वहाँ की जनता को सचेत भी करते रहे हैं, तथापि यह रसनेन्द्रियकी लोलुपता बड़ी ही प्रबल है। इसने मानव को ऐसा जड़ कर दिया

है कि वह न तो अपने विवेक का ही आदर कर पाता है और न अपने सच्चे शुभचिन्तकों की चेतावनी को ही सुनता है।

प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे ही मनीषी का आन्तरिक उद्गार है। पशुओं के निर्मम वध और उनके करुणक्रन्दन ने उनके हृदय को हिला दिया और अपने पास विशेष साधन-सम्पत्ति न होने पर भी उन्होंने इस समस्या पर मनोयोग के साथ विचार किया। उनके चालीस वर्ष के अथक अनुसन्धान का ही यह परिणाम है। जीव तो सब साधन-शून्य ही होते हैं। परन्तु वे हैं तो उस सर्वसमर्थ सर्वेश्वर के ही प्रतिबिम्ब। इस लिये जब वे अपनी अशक्ति की ओर न देख कर उस सर्वशक्तिमान् का आश्रय ले लेते हैं तो उन में उन्हीं की कृपा-शक्ति अवतरित हो कर सभी प्रकार की आवश्यक साधन-सामग्री जुटा देती है। इससे उस असमर्थ को भी बड़ी से बड़ी सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है—'मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन।' उन की कृपा से भला क्या नहीं हो सकता ?

अतः यह पुस्तक उन सर्वेश्वर का ही कृपा-प्रसाद है। ला० केवल राम जी के द्वारा प्रभु की अहैतुकी कृपा ही अपने जीवों का मंगल करने के लिए इस पुस्तक के रूप में अवतरित हुई है। इस में अपने प्रतिपाद्य विषय का विभिन्न दृष्टिकोणों से सुन्दर विवेचन हुआ है। मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्य में इस विषय पर इतनी उपयोगी पुस्तक अभी तक मेरे देखने में नहीं आई। इसके द्वारा मांस-भक्षण की भ्रान्ति में ग्रस्त जनता को अपने इस परम्परा-प्राप्त भ्रम के निवारण में सहायता मिले और वह शुद्ध एवं सात्त्विक आहार का सेवन करते हुए अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सके—ऐसी मेरी आन्तरिक आकांक्षा है।

हाथरस (अलीगढ़)
चैत्र शु० ७ सं० २०१६ वि०

शुभैषी,
सनातनदेव

भूमिका

मेरी आयु नौ वर्ष की थो। उन दिनों एक मुसलमान बालक सदरुद्दीन मेरा मित्र था। इस बालक के घर के पास ही एक छोटे से मकान में कसाई बकरों का वध किया करते थे। संयोगवश एक दिन मैं अपने मित्र के साथ उस घर में खेलने गया। वहां दो कसाई बकरे लेकर आये। इससे पूर्व मुझे जीवों को वध होते देखने का कभी अवसर नहीं मिला था। दोनों कसाइयों में से एक ने बकरे की टांगें पकड़ीं और दूसरे ने उसकी आधी गर्दन छुरी से काट दी। तड़पते हुए मृत शरीर को एक ओर रख कर उन्हों ने दूसरे बकरे को पकड़ा। जब पहले बकरे का वध किया जा रहा था तो दूसरा बकरा दु:ख से इस हृदय-विदारक दृश्य को देखता रहा। सम्भवत: वह आने वाले संकट की प्रतीक्षा कर रहा था। किन्तु अत्याचारी के हाथों में फँसकर वह उस की छुरी के प्रहार से कहां बच सकता था। अत: उसकी भी वही दशा हुई जो पहले बकरे की हुई थी। एक घण्टे के अन्दर ही उन्होंने दोनों बकरों का रक्त-पात कर मांस से चमड़ा अलग कर दिया और अपने टोकरों में डालकर चले गये।

मेरे हृदय पर इस दु:खद घटना का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि मैं उसे जीवन भर न भूल सका। इसके पश्चात् जब मेरी आयु १६ वर्ष की थी तो मैंने सपाटू के पास रास्ते में देखा कि एक कुम्हार ने एक ही प्रहार में एक बकरे का सिर धड़ से अलग कर

दिया। इससे भी मेरे हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। मैंने सन् १८६३ से १८६८ तक गुमाश्ते के तौर पर नौकरी की है। इस बीच में सन् १८६४ के अक्तूबर महीने में मैंने सेना के साथ पैदल सपाटू से मियांमीर और वहां से वापिस अम्बाला तक छकड़ों में यात्रा की। इस यात्रा में भी कई बार पशुओं को वध होते हुए देखने का अवसर मिला।

इन घटनाओं के अनुभव से मेरे मन की ऐसी अवस्था हो गई कि मैं हर समय अपने आप से यह प्रश्न किया करता था कि हे ईश्वर ! ये कैसे मनुष्य हैं जो अपनी पेट-पूजा करने और जीवन-निर्वाह के लिये अकारण ही निरपराध और मूक जीवों का व्यर्थ ही रक्तपात करते हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि इन जीवों पर छुरी उठाते समय इन के मन की यह अनुभूति कि इसके प्रहार से बे-समझ और असहाय जीवों को असह्य कष्ट उठाना पड़ेगा, समाप्त हो चुकी है। इस समय के पश्चात् मैं, जीवों के सम्बन्ध में जो-जो सामग्री मुझे जहां-कहीं से भी मिली, एकत्रित करता रहा। यह सब सामग्री जो इस पुस्तक में पाठकों की भेंट की जा रही है प्रायः साठ साल में एकत्रित की गई है।

यह सामग्री बहुत सी पुस्तकों—कुरानशरीफ, बाईबिल, गीता, सत्यार्थप्रकाश, महाभारत, फ़िलसफा-ए-एतदाल, कुलियात-ए-आर्य-मुसाफिर आदि से, तथा समाचार पत्रों से एकत्रित करके लिखी है। मैं ने अपने भी बहुत से विचारों को स्थान-स्थान पर व्यक्त किया है। इस प्रकार मेरी यह पुस्तक बहुत वर्षों के अनुभवों पर आधारित है। अब मैं इस पुस्तक का दूसरा संस्करण हिन्दी अनुवाद के रूप में कुछ परिवर्तनों के साथ, जोकि देश के बटवारे से आ चुके हैं, भेंट करता हूँ। कुछ बातें, जिनकी अब आवश्यकता नहीं है, निकाल दी गई हैं और कुछ नई बातें लिखी गई हैं। उर्दू के अतिरिक्त भारत की

राष्ट्र-भाषा हिन्दी में इसका अनुवाद प्रेमी पाठकों की भेंट है। मैं अपनी आयु के ८३ वर्ष पूरे कर चुका हूँ। चौरासीवें वर्ष के आरम्भ में मैं यह भेंट पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता हूं, जिससे वे इस पर अच्छी तरह सोच विचार कर इसका अध्ययन करें। पं० देवी दयाल साहब, रिटायर्ड प्रशासकीय अफसर, मलेरिया इन्स्टीच्यूट दिल्ली ने इस पुस्तक को ठीक बनाने में मेरी बहुत सहायता की है, जिसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूं।

पाठकों से मेरा यही निवेदन है कि सत्य को खोजने वाले मेरी इस खोज की, जो कि मैं ने विश्वस्त ऐतिहासिक पुस्तकों से निकाली है, ठीक परख करने का प्रयत्न करेंगे। केवल अपने ही धर्म अथवा-रीति रिवाजों और व्यक्तिगत विचारों के आधार पर नहीं, अपितु सत्य को ध्यान में रखते हुए।

पूर्ण मनुष्य वही बन सकता है और कहला सकता है जिसका तन, मन और बुद्धि का एक जैसा विकास हुआ हो। यदि कुछ समय के लिए यह अनुमान कर भी लें (यद्यपि मैं इस पक्ष में नहीं हूँ) कि माँस खाने से शरीर पुष्ट होता है तो मन और बुद्धि का दुर्बल होना आवश्यक है। मांसाहारी प्रायः यूरोपियन लोगों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु चाहे यूरोपियन हों अथवा और कोई जातियां, क्या कोई हृदय पर हाथ रख कर न्यायपूर्वक दृढ़ता से यह कह सकता है कि ऐसी जातियों के मन पवित्र होते हैं ?

आज असंख्य जीव मानव के अपवित्र तथा निर्दयी स्वभाव के कारण हिंसा के शिकार हो रहे हैं। मैंने अपने बहुत वर्षों के विचारों को इस निबन्ध में एकत्रित किया है और इनको अपनी आयु के अन्तिम भाग में सत्य की खोज करने वालों के समक्ष पुस्तक के रूप में भेंट करता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि जहां यह पन्ने उन लोगों के सम्मुख जायें जो मेरी ही तरह इन जीवों के रक्तपात

को देख कर दुःखी रहते हैं वहां मेरे वे भाई भी, जो इस रक्तपात के भागी हैं, पक्षपात को छोड़ कर मेरे इन विचारों का अध्ययन करें।

मैंने मांस खाने की हानियों पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार किया है—आध्यात्मिक, शारीरिक, आर्थिक, स्वास्थ्य, दया, न्याय और समत्व दृष्टि से मांसाहारी जीवों और शाकाहारी जीवों के चरित्र में अन्तर, पशुओं से मानव को लाभ तथा उनके न होने से हानि, बलिदान की समस्या, संसार के आरम्भ काल से महापुरुषों के इस विषय पर विचार तथा आदेश, गणित द्वारा मांसभक्षण की जांच—इन सब बातों को सामने रखते हुए विचार किया गया है। यह सब विशेष तौर पर मांसभक्षण को बुरा समझते हैं। छूतछात की समस्या तथा प्रेम आदि विषयों पर अलग अलग निबन्ध लिखे गये हैं। मुझे मांस खाने में कोई भी लाभ दिखाई नहीं दिया। मैंने इस विषय पर जिस दृष्टिकोण से भी विचार किया इस लोकोक्ति के अनुसार पाया- 'ऊँट रे ऊँट तेरी कौन-सी कल सीधी ?' मानव दृष्टि-कोण से यह सब टेढ़ी ही टेढ़ी दिखाई दी।

पाठकगण जितनी बार इस पुस्तक को अच्छी तरह से पढ़ेंगे, हर बार नई नई बातों का पता लगेगा। इस लिए पाठक-वृन्द से मेरा नम्र निवेदन है कि वह मेरी विचारसामग्री की ओर ध्यान दें और शब्दों तथा लिखाई में जो त्रुटियां हों, उनके लिये क्षमा करें।

मैंने मूल पुस्तक उर्दू भाषा में लिखी थी। उसका हिन्दी अनुवाद मेरे स्नेहभाजन श्री शुकदेव जी धीर ऐम्० ए० ने किया है और अन्त में जो भाषा आदि की त्रुटि थी उस का संशोधन श्रद्धेय स्वामी सनातन देव जी ने किया है। अतः इन दोनों महानुभावों का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

ओ३म् शम्

विनीत

केवलराम

माँसभक्षण की भ्रान्ति

जीवों से लाभ

पेड़ों और पौधों के शत्रु मनुष्य ने आरम्भ से ही संसार की व्यवस्था में बहुत परिवर्तन किये हैं। किन्तु फिर भी संसार में बड़े-बड़े वन पहले जैसी अवस्थाओं में विद्यमान हैं। इस वनों के बहुत से भयंकर शत्रु होते हैं। कई प्रकार के कीड़े आदि इन पौधों की जड़ों में, शाखाओं में और तनों पर रह कर अपना निर्वाह करते हैं। इन वृक्षों का आश्रय लेकर रहने वाले पक्षी उन कीड़ों को मार देते हैं और इस प्रकार वृक्ष की रक्षा करते हैं। यदि वृक्ष और पौधे न होते तो संसार का अस्तित्व ही न होता। ईश्वर ने इस सृष्टि का ऐसा प्रबन्ध किया है कि यहां कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। हर एक दूसरे की सहायता पर निर्भर है। एक का अस्तित्व दूसरे के बिना नहीं रह सकता। पौधों के बीज पृथ्वी पर गिरते ही उन के शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। बीजों के फूटते ही उन में कई कीड़े प्रवेश कर जाते

हैं। उन से भी बचने पर नरम नरम पत्तियों के निकलते ही उन्हें चमगादड़ आदि जीव खा जाते हैं। पेड़ बढ़ते ही उसमें कीड़े अंडे देने लगते हैं। अण्डों से कीड़ों के वंश की वृद्धि होती है और वे पेड़ में छिद्र करके अपना घर बना लेते हैं। इन छिद्रों में हो कर वर्षा का पानी जाता है और धीरे धीरे पौधा सूख कर अन्त में बिल्कुल मर जाता है। दूसरे कई कीड़े इस प्रकार के होते हैं जो छाल के अन्दर का नरम भाग खा कर और रस पी कर पेड़ों का नाश कर देते हैं।

चमगादड़ शाखाओं पर बच्चे देती है, जिससे उनकी उतनी जगह सड़ जाती है। इस प्रकार और बहुत से जीव पेड़ों और पौधों का नाश करने के लिये सदा तैयार रहते हैं। वह छाल में छिद्र करके पेड़ का रस पी लेते हैं और इन छिद्रों के रास्ते से पौधों को बढ़ाने और पोषण करने वाला रस भी बह जाता है।

कई प्रकार की मक्खियों का पालन-पोषण भी पेड़ों और पौधों से होता है। फल लगते ही कई प्रकार के जीव उन में रहने और अण्डे देने लगते हैं। कई प्रकार की टिड्डियां पौधों की पत्तियाँ खाती हैं। यूरोप का सब से प्रसिद्ध वृक्ष 'ओक' (शाहबलूत) है। इसका नाश करने वाले कम से कम पाँच सौ प्रकार के कीड़े हैं।

पौधों और कीड़ों का लाभकारी सम्बन्ध—पेड़ पौधों का नाश करने वाले कीड़ों की ओर यदि ध्यान दिया जाय तो यह समझ में नहीं आता कि इन असंख्य कीड़ों से सृष्टि को क्या लाभ पहुँचता होगा। शायद इन पौधों की काट-छाँट में ही यह लाभकारी सिद्ध होते होंगे। किन्तु कीड़ों का नाश करने वाले जीव भी हैं और ये ही पेड़ों की रक्षा का एक कारण हैं। पत्तियों के द्वारा वृक्ष सांस लेते हैं। इन पत्तियों को यदि टिड्डियां खा जाएँ तो वृक्षों का सांस लेना

बन्द हो जाय और वह मर जाएँ। पत्तियों के न रहने पर जीव भी पौधों पर जीवित नहीं रह सकते। जीवों की अनुपस्थिति से कीड़ों की संख्या में वृद्धि हो जायगी और इस प्रकार मृत्यु के निकट पहुँचते हुए वृक्ष शीघ्र ही सूख कर गिर पड़ेंगे।

इस से यह सिद्ध हो जाता है कि पौधों, कीड़ों और जीवों का परस्पर कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये एक दूसरे पर कितने निर्भर हैं। यदि संसार के सब वन और वृक्ष सूखकर गिर पड़ें और नष्ट हो जाएँ तो वर्षा कम हो जाने के कारण खेतों को तरी नहीं पहुँच सकती और वह भी शीघ्र ही सूख जाएँगे। खेतों के सूखने पर अनाज न मिलेगा और अनाज के न मिलने से मनुष्य जीवित नहीं रह सकते।

पौधों की जड़ों में कई प्रकार की औषधियाँ और एसिड डाल कर आदमी अपने उद्यान की रक्षा कर सकता है। किन्तु इस प्रकार बड़े बड़े वनों की रक्षा करना असम्भव है। हर प्रकार के वन और दूसरे ठिकानों के जीवों की रक्षा करना मनुष्य का परम-कर्त्तव्य है। परन्तु ऐसे लाभकारी जीवों को मानव केवल परों के लालच से मार डालता है। इसे अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

पक्षियों के शिकार के कारण—अब यह प्रश्न उठता है कि जीवों के मारने के कारण क्या हैं। यूरोपियन सुन्दर युवतियों के सिरहाने परों के तकिये रखे जाते हैं। केवल इस कारण से लोग जीवों की हत्या करते हैं। बहुत से लोगों को जानवरों के अण्डों की आवश्यकता होती रहती है। सन् १९१२ में आस्ट्रेलिया के एक व्यक्ति ने इतने अण्डे एकत्रित किये कि वह गाड़ियों में नहीं लादे जा सके और इस कारण कंकड़ पत्थर के समान सड़कों पर उनका ढेर लगाया गया।

जंगलों की रक्षा करना जानवरों का ही काम है । जिस प्रकार मनुष्य ने प्रकृति के कानून को तोड़ने का प्रयत्न किया है उस प्रकार जानवरों ने अब तक नहीं किया । वह सारे दिन परिश्रम करते हैं। किन्तु मनुष्य उनके साथ भलाई के स्थान पर बुराई करता है । अफ़्रीका में पहले जहां जंगल थे वहां अब नगर बस गये हैं। इस लिये वहां जीवों की उन्नति बन्द हो जाने के कारण नगरों के आस-पास फल, सब्ज़ियां आदि नहीं होते। यदि कहीं पौधे पैदा भी किये जाएँ तो कीड़े वहां उनको नष्ट करना आरम्भ कर देते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि जानवर फल खा जाते हैं किन्तु वह सारे फल तो खा नहीं सकते। कीड़ों की अपेक्षा बहुत थोड़ी हानि पहुँचाते हैं। केवल अपने परिश्रम का फल पाते हैं। जहाँ बाग होते हैं वहाँ कीड़े बहुत उत्पात मचाते हैं । एक प्रकार का कीड़ा ऐसा होता है जो दिन भर तो वृक्ष की जड़ के पास भूमि में घुसा रहता है किन्तु सायंकाल से ही बाहर निकल कर घास-फूल खाने लगता है। जानवर उद्यान के चारों ओर घूमकर इन चोरों को पकड़ते और मार कर खा जाते हैं। किन्तु यह दुःख की बात है कि मानव चोर की तरह रक्षक को पकड़ कर फांसी पर चढ़ाता है। नित्य ही अपने प्यारे वृक्षों का नाश होते देखकर आदमी चोर को पकड़ने का प्रयत्न करता है। जब बाग में आकर देखता है कि चिड़ियां इधर उधर घूम रही हैं तो समझ लेता है कि यही इन पेड़ों का नाश करती हैं और तुरन्त ही बन्दूक लेकर चिड़ियों को मारना आरम्भ कर देता है। चिड़ियों के मरते ही चोरों की वृद्धि होने लगती है और सारा उद्यान नष्ट होने लगता है। यदि ईश्वर ने इन कीड़ों को जिह्वा दी होती तो इस अनुग्रह के बदले मानव को धन्यवाद दिये बिना न रह सकते।

चूहों से हानियां:—घास तैयार करने के लिये भी जानवरों

की सहायता की बहुत आवश्यकता होती है। बहुत से जानवर अपने घोंसले घास में ही बनाते हैं और वहीं कीड़ों को खाकर अपना निर्वाह करते हैं, जिस से घास की रक्षा होती है। घास की रक्षा होने से भूमि को खाद मिलती है और बढ़िया खाद मिलने के कारण उपज भी बढ़िया तैयार होती है। आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, न्यूज़ीलैण्ड आदि देशों में जानवरों को नष्ट करने का कार्य आरम्भ होते ही वहां के लोगों को बहुत कष्ट सहन करने पड़े।

यह बड़ी भूल है कि उल्लू, चील, बहरी आदि जीव बुरे और अशुभ समझे जाते हैं। यद्यपि इन से मनुष्य को बहुत लाभ पहुँचता है। जङ्गली चूहों का मारना चील ही का काम है। इन जंगली चूहों के वंश की उन्नति इतनी अधिक होती है कि यदि चील आदि जानवर संसार में न होते तो ये सब पेड़ पौधों को नष्ट कर दिया करते। चूहों की तरह के बहुत से छोटे-बड़े जानवर जंगलों, खेतों तथा बागों में पैदा होते हैं। खेत काटकर फसल को खलिहान में रखने पर वह उस को नष्ट करना आरम्भ करते हैं। वह आलू, शकरकन्द आदि भूमि के अन्दर पैदा होने वाली चीजों को भूमि खोद कर अन्दर ही अन्दर नष्ट कर देते हैं। फल, फूल और तरकारी उनके सामने बचने नहीं पातीं। प्लेग आदि भयंकर रोगों के कीड़े चूहों के कारण ही इधर उधर फैलते हैं। इन चूहों को चील और उल्लू खा जाते हैं। कुछ समय हुआ वाशिंगटन नगर में एक ऊँचे मकान पर दो उल्लू रहा करते थे। बड़े प्रयत्न के पश्चात् उनको वहां से निकाल दिया गया। उनके रहने के स्थान से ४५४ चूहों की खोपड़ियां निकलीं। पता लगाने से हर जगह हर प्रकार के उदाहरण मिल सकते हैं। सन् १८८५ में अमरीका के राज्य पैन्सलवेनिया में सरकार की ओर से यह घोषणा की गई थी कि चील या उल्लू को मार कर लाने वाले को धन की एक निश्चित राशि पुरस्कार के रूप में दी जायगी।

डेढ़ वर्ष के समय में तीन लाख रुपया बांटा गया। चीलों और उल्लुओं के मारे जाने के कारण जंगली चूहों के वंश की इतनी वृद्धि हुई कि एक वर्ष के भीतर उन्होंने एक करोड़ रुपये से अधिक की फ़सल को नष्ट कर दिया। उस के अतिरिक्त बागों की हानि अलग रही। ज़िला मोटाना का हाल भी इसी प्रकार हुआ। चूहे बढ़ जाने के कारण उन्हें नष्ट करने के लिये पुरस्कार रखना पड़ा। अन्त में चील और उल्लुओं का मारना बन्द किया तब कहीं पहले की तरह काम चलने लगा। टिड्डियों और छोटे-मोटे कीड़े-मकौड़ों को मारने में भी चील और उल्लू बहुत सहायता देते हैं।

बगुले से लाभ— एक प्रकार का बगुला होता है। जहां वर्षा का पानी एकत्रित होता है वहां रहकर वह कई प्रकार के कीड़े खाने का हेतु बनता है। वह कीड़ों और मकोड़ों को खा जाता है। विशेष कर धान के खेतों को नष्ट करने वाले कीड़ों का तो बड़ा ही शत्रु है। भारत और चीन आदि देशों में जहां चावल अधिक पैदा होते हैं वहां बगुला भी अधिक होता है। इस बगुले के साफ़ सुथरे सफ़ेद पंख लोगों को बहुत अच्छे लगते हैं। इस कारण आस्ट्रेलिया आदि देशों में इसका नाश अधिक होने लगा। इसके साथ ही चावलों की फसलें नष्ट होने लगीं। मिश्र में नील नदी के किनारे इस प्रकार के असंख्य जानवर वध किये जाते थे। किन्तु सन् १९१२ में लार्ड किचनर ने एक नया नियम बना कर इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। बगुले आदि जीव भारत और चीन में पशुओं के चरने के स्थानों में इनके साथ साथ घूमा करते हैं। वे पशुओं को कष्ट देने वाली मक्खियों और कीड़ों को मार कर खा जाते हैं। पशुओं को इससे बड़ा लाभ पहुँचता है। वे स्वस्थ और बलवान् रहते हैं। कई प्रकार की मक्खियां और कीड़े आदि पशुओं को बड़ा तंग करते हैं। यदि जानवर न होते तो इन की रक्षा भी असम्भव हो जाती। एक प्रकार की मोटी और

नीले रंग की मक्खी होती है; जिस के कारण जानवरों की पीठ पर फोड़ा सा हो जाता है। उससे उनको असह्य कष्ट होता है। इस फोड़े के फूट जाने पर काग आदि जानवर इस में से कीड़े चुन चुन कर खाते हैं जिन से पशुओं को कुछ आराम मिलता है। खेतों में कई प्रकार की घास पैदा हो जाती है जो फसलों को नष्ट कर देती है। ऐसी घास से खेतों को पूर्णतया साफ करना कुदाल अथवा फावड़े का काम नहीं हैं किन्तु बहुत से जीव ऐसे होते हैं जो इन घासों के बीज खाकर फसलों की रक्षा करते हैं। आदमी अपने खाने के लिये जिन जीवों का वध करता है वे अधिकतर अपना निर्वाह घासों के बीजों पर करते हैं। ऐसे जीवों को जीवित रहने देने में मनुष्य का अधिक लाभ है। तीतर और बटेर माँस खाने वालों को बहुत अच्छे लगते हैं, किन्तु कपास, शकरकन्द, आलू आदि बहुत सी उपजों को नष्ट करने वाले कीड़ों को मार कर खा जाना इन्हीं का काम है।

बत्तखों से लाभ—यही हाल बत्तखों का है। मछलियाँ पकड़ने वाले समझते हैं कि हमारी मछलियों को बगुला खा जाता है, किन्तु यह महा भूल है। एक दो मछलियाँ वह अवश्य खा जाता है। किन्तु पानी के उतार के समय बहुत से कीड़े जो भूमि को खोद कर बाहर निकल आते हैं उनको बत्तख ही खाती है। यदि वे सब कीड़े जीवित रहें तो पानी के चढ़ाव के समय एक मछली भी शेष न छोड़ें। सागर के किनारे बत्तखें सफाई रखती है। यदि वे न हों तो कई प्रकार की दुर्गन्ध फैल जाय और लोगों के स्वास्थ्य में विकार आ जाय। सन् १८४६ में अमरीका में स्मिथ नाम के एक व्यक्ति ने विज्ञान के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विषयों की खोज के लिये १६ लाख डालर वहां की सरकार को दिये। इसके नाम पर वाशिंगटन नगर में स्मिथ यूनियन नाम की संस्था है। कई बार और व्यक्तियों ने भी बड़ी बड़ी धन-राशियों से इसकी सहायता की है। अमरीका के प्रधान इस के

कुलपति होते हैं और सरकार के दूसरे अफसर इसके पदाधिकारी। यह संस्था उन्नति की ओर अग्रसर है और इसने बड़े परिश्रम से बहुत सी लाभकारी पुस्तकें तय्यार करवाई है। इस की वार्षिक रिपोर्ट में बहुत से लाभकारी तथा शिक्षाप्रद विषय होते हैं। सन् १६१३ की वार्षिक रिपोर्ट के एक विषय के आधार पर नीचे लिखी बातों का उल्लेख किया जाता है :—

'मनुष्य समझता है कि सृष्टि में उसके समान बलवान् कोई दूसरा जीव नहीं किन्तु उसकी यह धारणा सर्वथा निराधार है। वास्तव में कीड़े बहुत बलवान् हैं। इनकी उन्ननि तथा अधिकता पर दृष्टि-पात करने से बड़ा अचम्भा होता है। मनुष्य ने बुद्धि की सहायता से विविध प्रकार के यंत्र बना कर अपने आपको सृष्टि का नाश करने वाला यन्त्र सिद्ध कर दिखाया है, तथापि इन कीड़ों के सामने इसे भी नतमस्तक होना पड़ा है। इन कीड़ों की ठीक ठीक जानकारी बहुत थोड़े व्यक्तियों को है। मनुष्यो, पशुओं और पक्षियों आदि सें कीड़ों की संख्या अधिक है। इनकी जातियों की गिनती तीन लाख तक हो चुकी है। इस बात का तो अनुमान लगाना कठिन है कि इन कीड़ों के लिये कितने भोजन की आवश्यकता है। विविध प्रकार के जीवों और पेड़ों पर ही इनका जीवन निर्भर है। कई प्रकार कीड़ों को उन्नति भी बहुत अधिक है। रायल नाम के एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि पिस्सू के समान एक प्रकार के कीड़े होते हैं जिनकी एक वर्ष के भीतर तेरह पीढ़ियाँ हो जाती हैं और यदि साथ ही साथ ये नष्ट न होते जायें नो सम्भव है इन की संख्या इतनी बढ़ जाय कि एक पर छत्तीस बिन्दु लगाने पड़ें। अमरीका में आलू में लगने वाले एक कीड़े की संख्या छः करोड़ से अधिक है। टिड्डियों का हाल तो सब को विदित है। यदि इनकी हत्या न हो तो समस्त संसार का ही नाश हो जाय।

दुगनी खुराक खाने वाले कीड़े— जिस प्रकार कीड़ों की उन्नति बहुत अधिक है उसी प्रकार इनकी खुराक भी है। एक प्रकार की टिड्डी होती है जो प्रतिदिन अपने भार से दुगनी घास अथवा पत्ती खा जाती है। यदि घोड़ा या आदमी अपने भार से अधिक खुराक खाने लगे तो क्या अच्छा लगेगा ? इस बात की ओर दृष्टि करने से ऊपर लिखी बात भली प्रकार समझ में आ जाती है। एक प्रकार का मांसाहारी कीड़ा होता है जो २४घण्टे में अपने भार से दुगना मांस चटकर जाता है। रेशम के कीड़े के हाल से तो सब लोग परिचित ही हैं। इसके पैदा होते समय इसका जितना वजन होता है उस से छियासी हज़ार गुनी अधिक वजन की पत्तियां इसे ५६ दिन में खाने को चाहिये। यदि पैदा हो कर इस प्रकार के सब जीव जीवित बचे रहें तो पेड़-पोधों की कितनी अधिक हानि हो— इसका अनुमान भली प्रकार लगाया जा सकता है।

मानव के जीवन का आधार—इस प्रकार के सब कुछ खा लेने वाले कीड़ों को नष्ट करने की व्यवस्था भी ईश्वर ने बहुत विचित्र प्रकार से की है। उसने इसी बात को ध्यान में रख कर पशु और पक्षी उत्पन्न किये हैं और पक्षियों के कारण ही मनुष्य का जीवन संसार में बचा हुआ है। आलुओं और दूसरे प्रकार के फल फूलों पर कीड़ों का इतना आक्रमण होता है कि विविध प्रकार की व्यवस्था करके भी इनकी रक्षा करते करते मनुष्य की नाक में दम हो जाता है। किन्तु बड़े बड़े जंगलों की इस प्रकार रक्षा करना मानव की शक्ति के बाहर है। संसार के समस्त जीवों के कार्य को कुशलता से चलाने के लिये पक्षियों की बहुत आवश्यकता है।

भविष्य में होने वाली नसलों की हानि— पक्षियों से इतने लाभ होने पर भी उनको अकारण ही नष्ट करने की हानि कई वर्षों

से प्रायः हर जगह हो रही है। आदमी की समझ में नहीं आता कि इस प्रकार के काम से आने वाली नसलों की बड़ी हानि हो रही है। पिस्तौल की सहायता से आदमी बहुत दूरी से दूसरे के प्राण ले सकता है। इस शक्ति से शायद वह अपने आपको सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी समझने लगता है, मानो जीवन और मृत्यु के समस्त अधिकार इसने अपने हाथ में ले लिये हैं। किन्तु ईश्वर ने हर जगह उचित व्यवस्था करके जो नियम बना दिये हैं उन को तोड़ने का परिणाम बड़ा भयंकर होगा। यदि उस की व्यवस्था के किसी भाग में थोड़ा सा भी विकार आ गया तो समझ लेना चाहिये कि सब संसार में प्रलय हो जायगा। यदि कीड़ों का नाश करने वाले पक्षियों को मारने का काम जारी रहा तो समझ लेना चाहिये कि सब संसार मेंप्रलय हो जायगा। यदि कीड़ों का नाश करने वाले पक्षियों को मारने का काम जारी रहा तो समझ लेना चाहिये कि कीड़ों की संख्या संसार में इतनी बढ़ जायगी कि कोई भी जीव या पेड़-पौधे संसार में न बचेंगे।

कई देशों के प्रयोग—कुछ समय पहले हंगरी के किसानों को यह ख्याल हो गया था कि चिड़ियां हमारे खेतों को बहुत हानि पहुंचाती हैं। इस ख्याल को ले कर उन्हों ने सब चिड़ियों को मार डालना उपयुक्त समझा और सरकार से आज्ञा ले ली। इस नियम के अनुसार चिड़ियों के मारे जाने के पांच ही वर्ष पश्चात् यह परिणाम हुआ कि सब खेतों में कीड़े लग गये और कुछ भी उपज न हुई। तब इन्हीं किसानों ने उस नियम को रद्द कराया और चिड़ियों की उन्नति की व्यवस्था करने लगे। अन्त में उनके खेतों मे पहले की तरह उपज होने लगी। ऐसा ही बारबो नाम के द्वीप में भी हुआ। वहां पर मार्टिन नामक एक पक्षी था, उसको नष्ट करने की व्यवस्था करते ही टिड्डियों की संख्यां यहां तक हो गई कि लोगों को मार्टिन के वंश को बढ़ाने और उस का पालन-

पोषण करने की व्यवस्था करनी पड़ी। सन् १८६१ में फ़ांस की खेती का भी इसी प्रकार नाश हुआ था। इस का कारण मालूम करने और सोच-विचार करने के लिये उस देश की सरकार ने एक समिति नियुक्त की, जिसने रिपोर्ट दी कि उस देश के पक्षियों को वध करने के कारण विविध प्रकार के कीड़ों की संख्या इतनी बढ़ गई कि खेती नष्ट हो गई। इस रिपोर्ट के अनुसार एक नया नियम बनाया गया, जिस के अनुसार फ्रांस में जानवरों की हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस तरीके से फिर खेतों की रक्षा होने लगी। इस प्रकार कई देशों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध—पक्षियों के पंख बहुमूल्य होने के कारण साइबेरिया के देश से पक्षियों को मार-मार कर और उनके पंखों से रेल गाड़ियां भर-भर कर यूरोप को जाने लगीं। इस के साथ ही टिड्डियों की संख्या भी वहां बढ़ने लगी और दिन प्रतिदिन उपज कम होने लगी। इस कारण भविष्य के लिये नई नई व्यवस्थायें करनी पड़ीं। जैमेका द्वीप का हाल भी इसी प्रकार का है। पश्चिमी अफ्रीका में बत्तखों के मार डालने का भी यही परिणाम हुआ था। अमरीका और न्यूज़ीलैण्ड आदि देशों में जब यूरोपियन लोग पहले-पहल जा कर बसे तो वहां भी असंख्य कीड़े थे। नये खेत कीड़ों को खुराक के लिये मिलने लगे और इससे उन का पालन-पोषण और भी अच्छी प्रकार होने लगा। अब यह प्रश्न हुआ कि इनसे खेतों की रक्षा कैसे हो। उस समय यूरोपियन लोग वहां के पक्षियों को बहुत निर्दयता से नष्ट करते थे। किन्तु जब उन्हें यह बात मालूम हुई तो जीवों का मारना बन्द हो गया और उन की फ़सलें बढ़ने लगीं।

टिड्डियों से हानि—कुछ लोगों को याद होगा कि कुछ वर्ष

पहले दक्षिण की ओर से एक टिड्डी-दल आया था, असंख्य टिड्डियों से आकाश ढक गया था और सूर्य के छिप जाने से पृथ्वी पर अन्धेरा छा गया था। यह दल चार-पांच कोस के पेड़ों और खेतों पर गिर कर उन को थोड़ी ही देर में सफाचट्ट कर डालता था। यहां तक कि किसी जड़ी बूटी की एक पत्ती भी नहीं बचती थी। इन टिड्डियों को पकड़ कर जला देने या इनके बच्चों और अण्डों को नष्ट करने का कार्य आरम्भ हुआ, किन्तु इसका कुछ भी लाभ न हुआ। न्यूज़ीलैण्ड में भी ऐसे टिड्डियों के दल बहुत बार आया करते थे। यह दल इतने बड़े होते थे कि रेल गाड़ी तक चलते-चलते थम जाती थी। इस लिये वहां के लोगों ने यूरोपियन देशों से चिड़ियों को ला कर पालना आरम्भ किया और उस समय से टिड्डियों से होने वाली हानियाँ धीरे धीरे कम हुईं।

पक्षियों की पाचन-शक्ति—सब जीवों में पक्षियों की पाचन-शक्ति बहुत तीव्र होती है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वे पचा न सकते हों। दिन रात वे खाते ही रहते हैं। यही कारण है कि टिड्डियों और कीड़ों को दूर करने के लिये इन से शक्ति-शाली और कोई नहीं है। आस्ट्रेलिया के एक आदमी ने अनुमान लगाया था कि एक पक्षी एक दिन में दो हज़ार चार सौ दस टिड्डियां खा लेता है। यदि पक्षियों की संख्या केवल दो लाख भी हो तो प्रतिदिन कितनी टिड्डियों का नाश हो, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। इसी प्रकार सब पक्षियों को कितने भोजन की आवश्यकता है। आस्ट्रेलिया में जोंकें इतनी लम्बी हो जाती थीं कि उन के कारण हर स्थान में असुविधा हो जाती थी, किन्तु इन जोंकों को भी पानी में रहने वाले जीवों ने समाप्त कर दिया है। इस प्रकार के असंख्य उदाहरण हैं। उन्हें यहां प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं। ऊपर लिखे हाल से यह स्पष्ट है कि मनुष्य के लिये जीव कितने लाभकारी हैं।

पशु और पक्षी

जहां तक अनुभव और भावनाओं का सम्बन्ध है मनुष्य और पशु-पक्षियों में कोई अन्तर नहीं है। मनुष्य को ईश्वर ने बोलने की शक्ति दी है। इसलिये वह इस योग्य है कि अपनी भावनाओं और अनुभवों को दूसरों पर प्रकट कर सके। किन्तु पशु-पक्षी इस विषय में विवश हैं कि वे अपने मन की बात प्रायः अपने तक ही सीमित रखें या अधिक से अधिक चीख़-चिल्ला कर अपना दुःख-दर्द मनुष्य पर प्रकट कर दें।

अपने अनुभव प्रकट करने की विधि—पशु-पक्षी अपने अनुभवों को बोलने की शक्ति न होने के कारण (जिह्वा रखते हुए भी) प्रत्यक्ष तो प्रकट नहीं कर सकते, किन्तु वे इस प्रयत्न में कुछ न कुछ सफल अवश्य हो जाते हैं; जैसे शेर, बिल्ली अथवा चीता, जब क्रोध में होते हैं तो वे अपनी मूँछे आगे को खड़ी कर लेते हैं। उनके कान खड़े हो जाते हैं और वे आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लग जाते हैं। आँखों को पूरी चौड़ाई तक खोल देते हैं। इस समय उनकी आकृति बड़ी भयानक हो जाती है और देखने वाला भयभीत हो उठता है। किसी भावी विपत्ति को अनुभव करते समय उनकी अवस्था ऐसी हो जाती है मानो वे पूछ रहे हैं कि क्या हुआ ?

रोने की अवस्था में भावनाओं को प्रकट करना—कुत्ते भौंक कर किसी अपरिचित व्यक्ति के आने का पता देते हैं। गीदड़ और

कुत्ते रोकर अपने दुःख को प्रकट करते हैं। खड़े कान, सीधी की हुई दुम, शरीर के बाल ऊपर को उठे हुए—ये सब बातें भावनाओं को प्रकट करने से सम्बन्ध रखती हैं। शेर दहाड़ता है। हाथी चिंघाड़ता है। गौएँ माँ माँ करती हैं और बहुत बार बछड़े-बछड़ी के वियोग में या मृत्यु हो जाने पर खाना छोड़ देती हैं, कई दिन चारे और पानी के बिना बिता देती हैं और अपने स्थान से हिलने का नाम नहीं लेती, विस्मित, चुप चाप और स्तब्ध खड़ी रहती हैं; जैसे कुछ खो गया हो। कई बार उनकी आँखों से मोटे मोटे आंसू बहते रहते हैं, जो उनके दुःख और विपत्ति को प्रकट करते हैं।

पक्षी क्या करते हैं ? :— पक्षी भी पशुओं के समान ही अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये विवश हैं। उनके पास भी रोने और चिल्लाने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। जैसे यदि कोई अत्याचारी कागी (कौई) के अण्डे तोड़ दे तो वह काँव काँव करके आकाश सिर पर उठा लेती है। काग भी जब आकर यह परिस्थिति देखता है तो वह भी उसके दुःख का साथी बन जाता है और फिर आस-पास के सब काग एकत्रित होकर उस घौंसले के चारों ओर मंडराने लगते हैं। कभी इधर उड़ जाते हैं और कभी उधर। एक अनुभवी और दयावान् पुरुष के लिये उनकी चीत्कार से दुःखी होना स्वाभाविक ही है।

रक्षा के लिये विलक्षण यन्त्र —पामर (Palmer) नाम के एक पक्षी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि अपनी रक्षा के लिये उसके पास प्रकृति की तरफ़ से दिया हुआ एक अनूठा यन्त्र है। यह हथियार हरे रंग का तेल-सा है जिससे दुर्गन्ध आती है। यदि कोई मनुष्य उसे सतावे अथवा पकड़ने का प्रयत्न करे तो यह उसके ऊपर अति दुर्गन्धित तैल आकाश में ऊँचे उड़ता हुआ फैंक देता है और फिर वह मनुष्य

उन कपड़ों के साथ किसी समाज में बैठने योग्य नहीं रहता। यह पक्षी इस प्रकार किसी मनुष्य को अपने घोंसले के पास भी आने नहीं देता। पशु-पक्षी डर, दुःख, क्रोध, थकावट और अस्वस्थता के कारण शारीरिक कष्ट को व्यक्त करने के अतिरिक्त प्रसन्नता भी बड़ी सुगमता से और भली प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। जैसे कुत्ता प्रसन्नता के समय अपने स्वामी के पैर चाटने लगता है। बार बार उसकी तरफ़ देखता है। उसकी आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक होती है। कभी उठता, कभी बैठता और कभी लेटता है। इस तरह कई प्रकार से अपने प्यार को व्यक्त करता है। गौएँ अपने स्नेह को व्यक्त करने के लिये अपने बछड़े या बछड़ी को चाटने लग जाती हैं और यदि उसका स्वामी उसे तनिक खोल कर थोड़ी सी दूरी पर बांध दे तो वे रस्सा तोड़ कर उसके पास पहुँच जाना चाहती हैं। गाय बच्चों को देखकर बहुत प्रसन्न होती हैं और कई बार ठठोली करते हुए धीरे धीरे उनको सींग भी मार देती है।

पशु-पक्षियों की भावनाएं :—काम वासना की पूर्ति के लिये भावना और इच्छा के विषय में मनुष्य और पशु-पक्षियों में कोई अन्तर नहीं। अन्तर केवल इतना ही है कि पशु-पक्षियों में काम वासना विशेष समय में ही जागृत होती है और मनुष्य में यह इच्छा हर समय रहती है तथा वह इसकी पूर्त्ति का इच्छुक भी रहता है। इस दृष्टि से पशु-पक्षी मनुष्य से श्रेष्ठ हैं। वर्ष के विशेष दिनों में ही पशु-पक्षियों में यह वासना जागृत होती है, क्योंकि उनमें यह इच्छा सीमित है। जहां तक इसकी अधीनता का सम्बन्ध है मनुष्य पशु-पक्षियों की अपेक्षा काम वासना से कुछ कम पराजित नहीं होता। इस अवस्था में दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता और न रह ही सकता है। यदि पशु-पक्षियों में यह भावना मनुष्य की तरह ही,

प्रबल रहती तो वे मानव को इतना अधिक लाभ न पहुँचा सकते जितना कि अब ।

परिणाम—यदि मानव की और दूसरे जीवों की भावनाएँ एक जैसी ही हैं तो जैसा दुःख मानव को होता है वैसा ही अन्य जीवों को भी होना चाहिये । कई बातों में जैसे कि काम वासना के विषय में तो पशु-पक्षी मनुष्य से श्रेष्ठ हैं । अब विचार करने की बात यह है कि क्या मनुष्य को चाहिये कि वह दूसरे जीवों पर इतने अत्याचार करे । अत्याचारी को वह समय स्मरण रखना चाहिये जबकि वह दूसरों के अत्याचार का स्वयं शिकार बनता है ।

———

स्वास्थ्य पर मांस खानेका प्रभाव और मांसभक्षण की हानियां

जहाँ तक रोगों का सम्बन्ध है मेरे विचार में हर मनुष्य पहले अपने आप को देखे कि उसको किसी प्रकार का रोग तो नहीं है। जहां तक मेरा अपना अनुभव है कोई मनुष्य पूर्णतया स्वस्थ नहीं। मनुष्य को कई प्रकार के रोग लगे रहते हैं। ऐसा तो कोई ही व्यक्ति होगा जिसको एक-दो रोग न हों। किसी को पेट की पीड़ा तो किसी को सिर की। किसी को गुप्त रोग तो दूसरे को खाँसी, दमा, दाद, कृमि, पुराना बुखार, गठिया आदि। बीमारियों की संख्या तो सहस्रों तक गिनी जा सकती है। कहां तक उनका वर्णन किया जाय। हां, यह अवश्य कहा जा सकता है कि हरएक मनुष्य को कोई न कोई रोग लगा ही रहता है। मानव के रोगों के विषय में तो जहां तक अनुसन्धान से उन्नति हुई है वह सब वैद्यक पुस्तकों में भी मौजूद है। ज्यों-ज्यों आगे खोज की जाती है नित्य नये नये रोगों का पता लगता रहता है। जब मनुष्यों के रोगों का यह हाल है तो पशु-पक्षियों आदि के रोगों के सम्बन्ध में तो मनुष्य प्रायः पूर्णतया अनभिज्ञ ही है। मछली खाने वालों को बहुधा कुष्ठ रोग हो जाया करता है। बंगाल प्रान्त में मछली अधिक खाई जाती है। वहां दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा यह रोग अधिक है। संसार के दूसरे देशों जैसे ग्रीन-लैण्ड, आइसलैण्ड, फिनलैण्ड आदि के लोग भी मछली बहुत खाते

हैं। इसलिये वहां भी कुष्ठ रोग और त्वचा के दूसरे रोग अधिक होते हैं। गाय का मांस खाने वालों को गठिया, सिल और क्षय के रोग अधिक होते हैं। सूअर और कबूतर खाने वालों को कद्दूदाना का रोग अधिक होता है। इसी प्रकार दूसरे जीवों से भी विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त यदि उन जीवों को कोई विशेष रोग हो तो उस रोग के कीटाणु मांस खाने वाले के शरीर के भीतर अवश्य चले जाते हैं।

दाँतों और आंखों पर प्रभाव—जो रोग मांस खाने वालों को साधारणतया हो जाते हैं वे ये हैं— उनके दाँत पच्चीस वर्ष की आयु में ही बहुत खराब हो जाते हैं। बहुत बार यह देखा गया है कि अंग्रेजों के दांत २० से ३० वर्ष की आयु में ही ख़राब हो जाते हैं। अमरीका में तो यह फैशन सुनते हैं कि युवतियां खराब दांतों को निकलवा कर बनावटी दांत लगवा लेती हैं। इसी कारण से मांस खाने वाले अपने दांतो के स्वयं शत्रु हैं। दांत ख़राब होने से आंखों और पेट पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है इसीलिये मांस खाने वालों की आँखें भी शीघ्र ही ख़राब हो जाती हैं।

कब्ज़ और मियादी बुख़ार—कब्ज़ मांस खाने का एक छोटा सा दुष्परिणाम है। इसलिये कब्ज़ को ब्रिटिश डिसीज़ (British-disease) भी कहते हैं। फ्रन्टीयर प्रान्त के औषधालयों में जितना Castor oil प्रयोग में आता है उतना सारे पंजाब के औषधालयों में भी नहीं आता। पठान लोग दांतों को ठीक रखने के लिये नसवार सूँघते हैं और तम्बाकू चबाते हैं। किन्तु फिर भी दांत शीघ्र ही ख़राब हो जाते हैं। मांस खानेवालों को पेट की अंतड़ियों की बीमारियां बहुत जल्द हो जाती हैं। मेरा अपना अनुभव है कि मैं सन् १८६६में सपाट छावनी में एसिस्टैन्ट पर्वेयर था। वहां साढ़े चार

सौ के लगभग गोरे सिपाही थे उनमें मियादी बुखार फैल गया और इस रोग से ३७ गोरे सिपाहियों की मृत्यु हो गई। शाकाहारियों में इस रोग से बहुत कम लोगों की मृत्यु होती है। मैंने मुसलमानों में देखा है कि पुरानी पेचिश से उनमें बहुत से लोगों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार पेट की अंतड़ियों के रोग मांस खाने वालों में बहुत अधिक होते हैं। किन्तु शाकाहारी उनकी अपेक्षा ऐसे रोगों से बचे रहते हैं।

दिल की धड़कन—मांस खाने वालों का दिल मांस न खाने वालों की अपेक्षा दिन में २०,००० बार अधिक धड़कता है। उन्हें बहुत जल्दी-जल्दी सांस लेना पड़ता है, जिससे उनकी आयु कम हो जाती है। धीरे धीरे सांस लेने वालों की आयु अधिक होती है। मांसभक्षण करने वाले जीवों जैसे शेर, लकड़बग्घा, भेड़िया आदि को मैंने चिड़ियाघर में देखा है। वे हर समय भागते दौड़ते और अशान्त से रहते हैं। चीता जब शिकार के पीछे भागता है तो भागते भागते तीन छलांगें भरता है-पहली, दूसरी और तीसरी। यदि तीन छलांगों में शिकार बचकर निकल जाय तो वह साहस छोड़ देता है। मांस खाने वाले चाहे मनुष्य हों या पशु उनकी साधारणतया घावके कारण मृत्यु हो जाती है। साँप के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यदि साँप को थोड़ा सा भी घाव हो जाय तो उसको चींटियाँ लग जाती हैं और उसे नोच नोच कर मार डालती हैं। इसी प्रकार यदि शेर के घाव हो जाय तो वह भी बच नहीं पाता।

मांस खाने वाले मनुष्य दिन में तीन बार भोजन करते हैं। क्योंकि मांस पेट में जाकर जल्दी समाप्त हो जाता है और मनुष्य को फिर भोजन की आवश्यकता होती है।

महायुद्ध का अनुभव—मांस के विष का प्रभाव तो हर

अवस्था में रहता है। चाहे मांस थोड़ा खाया जाय या अधिक। रूस और जापान के १९१८ के युद्ध में यह सिद्ध हो गया था कि दोनों ओर के जो सिपाही लड़ाई में घायल हुए उनमें रूसियों की अपेक्षा जापानी दुगनी संख्या में अच्छे हुए थे। साधारण अनुभव से भी यह देखा जाता है कि मांसाहारियों के फोड़े फुंसियां शाकाहारियों की अपेक्षा अधिक निकलती हैं, क्योंकि शाकाहारियों का रक्त शुद्ध और स्वच्छ होता है। उनके साधारण घाव तो पानी की पट्टी से ही अच्छे हो जाते हैं। जिन देशों में लोग अधिक मांस खाते हैं अपेक्षाकृत वहां वैद्यों की भी अधिक आवश्यकता पड़ती है।

देश का नाम	मांस का खर्च प्रति मनुष्य	एक मिलियन अथवा १० लाख के पीछे वैद्यों की आवश्यकता
जर्मनी	६४ पौण्ड	३५५
फ्रांस	७७ ,,	३८०
ग्रेट ब्रिटेन	११८ ,,	५७८
आस्ट्रेलिया	२७६ ,,	७८०

ऊपर लिखे विवरण से स्पष्ट है कि आस्ट्रेलिया वाले सबसे अधिक मांस का प्रयोग करते हैं। साथ ही वे सब से अधिक औषधियां खाने के लिये भी विवश हैं।

मांसाहारी जीव—मांसाहारी जानवरों की खुराक का हाल सर्वथा भिन्न है जो मनुष्य की तरह बनावटी मांसाहारो नहीं वे हड्डी, पसली और पेट के दूसरे भाग निकालकर नहीं खाते। किन्तु सारे का सारा ही चट कर जाते हैं और बहुत अधिक खाते हैं। शेर, चीता, सांप, गिद्ध आदि जीव, यदि उन्हें शिकार काफ़ी

मिल जाय तो इतना पेट भरकर खाते हैं कि उन्हें चलना फिरना भी कठिन हो जाता है और फिर वे एक स्थान पर पीठ लगाकर एक एक सप्ताह तक भोजन पचाते रहते हैं। मांसाहारी मनुष्यों का भी यही हाल है। जैसे उत्तरी ध्रुव के अस्कीमो, जिनको मनुष्य की आकृति में पशु ही समझना चाहिये। जब अस्कीमों मछली का शिकार करते हैं तो उसको समुद्र के किनारे लाकर चारों ओर गिद्धों के समान बैठ जाते हैं और फिर उनको एक सप्ताह या इससे अधिक समय तक कुछ खाने की आवश्यकता नहीं रहती। उनके घर भी इस प्रकार के होते हैं कि उनमें भी जाने के लिये रास्ता कठिनता ही से मिलता है और अन्दर जाकर इतनी अधिक दुर्गन्ध आती है कि मानव का वहां ठहरना दुष्कर हो जाता है।

सवा लाख के लगभग किलो (Kilo) मांस में रोगों के कीटाणु- लन्दन पहली फरवरी सन् १९३५। पलवैस के डा० रोलैण्ड ने एक महीने की रिपोर्ट छापी थी कि बहुत से रोग जीवों का मांस खाने से उत्पन्न होते हैं। उन्हों ने लिखा था कि पलवैस में एक महीने में ४६,००० किलो मांस में सिल के कीटाणु और ४५,००० किलो मांस में अन्य रोगों के कीटाणु देखे गये तथा ४२,००० किलो मांस दूसरे रोगों के कारण खाने के अयोग्य बताया गया। इसका आशय यह हुआ कि एक नगर में लगभग सवा लाख किलो मांस, जिसको तीन लाख आदमी खाते हैं, खाने के अयोग्य सिद्ध किया गया। इससे सिद्ध होता है कि मांस खाना कितना अधिक हानिकारक है।

मेरे विचार में मानव यदि ध्यान से सोचे और अपने शरीर की बनावट पर ध्यान दे तो विदित होगा कि जब तक उसका इस भौतिक शरीर से सम्बन्ध है और इसमें सांस आ जा रहा है उस समय तक तो इसका मूल्य कहीं अरबों, कहीं लाखों, कहीं करोड़ों

एवं कहीं हज़ारों गुना होता है और कहीं पर कुछ भी नहीं होता। इसमें राजा, महाराजा, धनी, निर्धन, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कोढ़ी, कलंकी सभी सम्मिलित हैं। किन्तु सांस बन्द होने पर सब का मूल्य शून्य के बराबर रह जाता है। इस शरीर की पांचभौतिक सामग्री विचित्र प्रकार की है, जिसका मूल्य सांस के साथ तो इतना अधिक और उसके बन्द होने पर केवल शून्य। कैसी अद्भुत बात है। इससे तो कच्चे घर की झोंपड़ी अच्छी, जिसकी छत की कड़ियां और चौखट की लकड़ी कम से कम जलाने के काम तो आ जाती हैं। किन्तु शरीर की सामग्री तो बड़ी शीघ्रता से बदलनी आरम्भ हो जाती है। घरवाले चाहे उसको शीघ्र ही जला दें, दबा दें या जीवों को खिला दें। यदि कोई कुछ न करे तो यह शरीर आप ही आप कुछ समय पाकर सड़-गलकर पांच तत्त्वों में, जिनसे यह बना है, मिल जाता है। किन्तु जब तक यह मांस के रूप में रहता है, गलता, सड़ता तथा दूर दूर तक रहने वालों को बेचैन और हैरान किये रहता है। यह अवस्था तो मानव के मृत शरीर की है। अब जीवों को लीजिये कि चाहे जीवित हों या मृत अथवा मार कर मृत किये जायें, तथापि जब मानव के मृत शरीर का कोई मूल्य नहीं रहता तो भला पशु-पक्षियों का शरीर, जिसमें कोई विशेषता नहीं और जो शरीर की गंदगी से पला हुआ है, क्या मूल्य रहेगा? अवश्यही उसका मूल्य मानव के मृत शरीर से भी कम होगा।

हत्या और डाके—विचार करने योग्य बात यह भी है कि मृत शरीर को तो नष्ट हो ही जाना है। उसे चाहे किसी प्रकार भी रोकने का प्रयत्न किया जाय, पर वह निरन्तर घोषणा-सी कर रहा है कि मुझे जाने दो, जाने दो। जो मनुष्य बेसमझी से उसको खींचातानी करके अपने अन्दर ठूँसते हैं यह अपनी खराबियों से, जो

विष के रूप में होती हैं, उनके शरीर में प्रवेश करके शरीर के हर भाग में दुर्गन्ध फैला देता है। इस प्रकार के भोजन का परिणाम सीमा प्रान्त (पाकिस्तान) और पंजाब में देखिये। सीमा प्रान्त में हर वर्ष पाँच छः सौ हत्या हो जाती हैं। पंजाब में भी बहुत हत्या होती हैं और डाके पड़ते हैं। स्त्रियों को उनके पति छोटी छोटी बात पर मार देते हैं। यह सब खुराक का ही प्रभाव है।

मांस से विषैले रोग—शाकाहारियों के मलमूत्र में सैक्रोलाइटिक कीटाणु (Sachrolytic Germs) होते हैं जिसका अधिकतर निर्वाह कारबोहाइड्रेट, स्टार्च (Carbo-hydrate Starch) और उनसे सम्बन्धित चीजों जैसे खांड आदि से होता है। मांसाहारियों के मलमूत्र में अधिकतर प्रोटियोलाइटिक कीटाणु (Proteolytic Germ) होते हैं क्योंकि उनका निर्वाह प्रोटीन अथवा मांस आदि वस्तुओं से होता है। इसलिये जितने रोग लगने का डर मांसाहारियों को होता है उतना शाकाहारियों को नहीं, क्योंकि प्रोटियोलाइटिक कीटाणु कभी भी आंत आदि या उससे सम्बन्धित हिस्सों में किसी प्रकार की कमज़ोरी पाकर एकदम आक्रमण कर देते हैं। सैप्टीसीमिया (Septicaemia) के रोग का जितना भय बच्चा पैदा होने के समय स्त्रियों को पश्चिमी देशों में होता है उतना उन स्थानों में नहीं होता जहां के लोग शाकाहारी हैं। इसी प्रकार और भी आंतों की बीमारियों पर प्रभाव पड़ता है और जितनी बीमारियां कब्ज़ से बढ़ती हैं वह बहुधा मांसाहारियों को होती हैं, क्योंकि शाकाहारियों की भोजन-सामग्री कब्ज़ करने वाली नहीं होती, जिससे उनके शरीर की विषैली चीज़ें साफ़ होती रहती हैं। मांसाहारियों में सदा ही कब्ज़ रहती है, इसलिये उनके शरीर का विष नसों नाड़ियों में जाकर कई प्रकार के रोग आटो इन्टाक्सिकेशन (Auto intoxication) से उत्पन्न कर देता है।

मांस खाने का प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर — डाक्टर एलेग्ज़ैण्डर हेग (Alexander Haig) एम० ए० एम० डी० लंडन अपनी पुस्तक 'भोजन और आहार' में, जो मानव की शारीरिक शक्ति के सम्बन्ध में है, लिखते हैं कि आजकल जो आहार प्रयोग में लाया जाता है उसका हेतु केवल अज्ञान ही है। समय और धन की हानि के अतिरिक्त बहुत से शारीरिक और मानसिक दुःखों का कारण हमारे आहार में निहित है। ऐसी खाद्य सामाग्री न केवल स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती है अपितु आयु को भी कम करती और मानसिक तथा चालचलन की दृष्टि से भी हानिकारक है। मानव कोई कार्य करने से पहले उस पर विचार करता है। सोचना मस्तिष्क का काम है। इस लिए बिगड़े हुए मस्तिष्क का हर प्रकार का विचार भी टेढ़े और बुरे कार्यों के हेतु होता है, जिस से ठीक कार्य नहीं होते। यही कारण है कि नैतिक दृष्टि से जो कार्य संसार में हो रहे हैं वे सब मानवता से गिरे हुए स्वार्थ पर अधारित हैं। आशय यह कि बुरा चरित्र स्वयं एक ऐसे रोग का परिणाम है जिसका हेतु ठीक खुराक न पाना है। यदि हमारी भोजन सामग्री अच्छी होगी तो हम सच्चरित्र होंगे हिन्दुओं का तो यह सिद्धान्त ही है—'जैसा खाय अन्न वैसा बने मन' अर्थात् तुम जैसा अन्न खाओगे उस का प्रभाव पूर्णतया तुम्हारी विचार-शक्ति पर पड़ैगा।

विषैली खुराक —डाक्टर हेग ने लिखा है कि आधुनिक युग में जो असंख्य शारीरिक मानसिक, रोग देखे जाते हैं उन में से बहुत से रोगों के कारण विषैले खाद्य पदार्थों का सेवन करना है। उदाहरणार्थ—मांस, अण्डे, शराब, चाय आदि। वास्तव में इन विषैले पदार्थों का सेवन बन्दकर देने से न केवल संसार के कारागारोंकी आवश्यकता नहीं रहेगी, अपितु कई प्रकार के दूसरे झंझटों—न्यायालय,

युद्ध, पुलिस आदि के खर्च भी बच जाएंगे, क्योंकि वह विषैले पदार्थ जो प्रतिदिन खाने के साथ खाये जाते हैं रक्त में प्रवेश करके दूसरी बीमारियां पैदा करने से पूर्व मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं और बुद्धिमत्ता आदि शक्तियों को नष्ट करके मस्तिष्क के ठीक पालन-पोषण करने में रुकावट पैदा करते हैं, जिससे वे लोग अच्छे कार्य नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त ये लोग अधिक धूप और भूख आदि भी सह नहीं सकते, क्योंकि थकावट के दो कारण हैं। एक तो रक्त में खाद्य पदार्थों को कमी जोकि दूध आदि जल्दी पच जाने वाले पदार्थों के खाने से जाती रहती है। दूसरे यूरिक एसिड (Uric acid) आदि विषों के कारण रक्त-प्रवाह में रुकावट होने से खाद्य सामग्री का मलमूत्र में कम पहुँचना। इसलिये यूरोप के लोगों की अपेक्षा जापानियों को बुद्धि और चरित्र बढ़िया होते हैं और वे अधिक परिश्रम करने वाले होते हैं। उसका कारण यही है कि उनकी भोजन-सामग्री अपेक्षाकृत कम विषैलो होती है। मांसाहारी शाकाहारियों की अपेक्षा न तो धूपकी तपन सहन कर सकता है और न भूख ही, क्योंकि गर्मी की अधिकता के कारण 'यूरिक एसिड' रक्त में मिल जाता है और मनको उचाट कर देता है। एक तो मांस की शक्ति ही भड़क उठने वाली बारूदके समान शरीर में शीघ्र हो प्रज्वलित हो जाती है, दूसरे उसके समाप्त होने पर यूरिक एसिड, उत्तेजना (Stimulation) के समय, शरीर की नस-नाड़ियों में चला जाता है। इसके रक्त में लौट आने के कारण थकावट का अनुभव होता है। किन्तु उसके विपरीत दूध पीने और शाक-सब्ज़ी खाने वाले लोग इन आपत्तियों से बचे रहते हैं। तीसरी बात यह कि मांसाहारी अधिक रात व्यतीत होने तक जागने और दिन निकलने के पश्चात् सोये रहने के कारण दिन के प्रकाश से वंचित रहते हैं और रात्रि के कृत्रिम प्रकाश के बुरे प्रभाव से हानि उठाते हैं।

भोजन क्या है—बाल्यावस्था में शरीर के विविध भागों की रचना के लिए इस के पश्चात् क्षीण अंशों की पुष्टि के लिए और शरीर की उष्णता बनाये रखने के लिए अर्थात् शक्ति और स्वास्थ्य के लिये जो वस्तुएं खायी जाती हैं उन्हें भोजन कहते हैं। दूसरे शब्दों में मानव के खाने में जिन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है वे तीन प्रकार की होती हैं—भोजन, ओषधि और विष। उन में से जो स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं उन्हें भोजन कहते हैं। जो रोग की अवस्था में स्वास्थ्य को ठीक करने का काम करती हैं उन्हें औषधि कहते हैं और जो वस्तुएँ इन दोनों के अतिरिक्त सेवन की जाती हैं, उन्हें विष कहते हैं।

प्रोफ़ेसर फ़ास्टर का मत है कि भली प्रकार चबाकर और अच्छी प्रकार थूक मिलाकर खाने से न केवल साधारण से बहुत थोड़ी खुराक से पेट भर जाता है अपितु समय पर भूख खुलकर लगती है। स्वादुशक्ति तीव्र हो जाती है और सादे भोजन अच्छे लगते हैं। मांस से घृणा हो जाती है, स्वास्थ्य ठीक रहता है और कार्य-कुशलता बढ़ती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए बताया गया है कि एक ग्रास को सौ बार चबाया जाय, क्योंकि इसका अपने विशेष कार्य के अतिरिक्त हर एक अंग के सामान्य विकास (General Metabolism) पर भी प्रभाव पड़ता है। इस लिए अधिक भोजन करने की अवस्था में थूक की शक्ति बहुत अधिक लग जाने पर (जो भोजन को पचाती है) यदि बाहर की चिकनाई कम हो तो अजीर्ण हो जाता है। किन्तु आन्तरिक चिकनाई रक्त में न पहुँचने के कारण मन्दाग्नि (Diabetes) का रोग हो जाता है। घी और शक्कर खाने वाले लोग काम करने में अपने साथियों से जो कि उनका सेवन न करते हों, सर्वदा आगे रहते हैं। वे बिना थकावट के अधिक काम करते हैं।

स्वास्थ्य ठीक रखने तथा बलवान् रहने के लिए रक्त-प्रवाह की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि वह शरीर के सब भागों में 'एलब्युमिन' को भली प्रकार पहुँचा सके और विषैले पदार्थों को निकाल सके। किन्तु 'यूरिक एसिड' रक्तप्रवाह के रास्ते में रुकावट डालती है। इस लिए 'एलब्युमिन' का अधिक प्रयोग बन्द करने के अतिरिक्त ऐसे खाद्य पदार्थों का भी सेवन नहीं करना चाहिये जिन में 'यूरिक एसिड' और इस से सम्बन्धित विषैले पदार्थ मौजूद हों। आशय यह कि 'एलब्युमिन' इतनी खानी चाहिये कि जो प्रतिदिन के यूरिक एसिड' कोबा हर निकालती रहे तथा 'एलब्युमिन' भी ऐसे पदार्थों से ली जानी चाहिये जिन में 'यूरिक एसिड' आदि विषैली चीजें न हों, जैसे (१) दूध अथवा उससे बने हुए पादर्थ, (२) रोटी बनाने के अनाज—मक्की, गेहूं आदि, (३) उद्यानों की सब्ज़ियों आलू आदि (४) और बादाम, अखरोट, चिलगोज़े, अनानास, मूँगफली इत्यादि।

दही और पनीर—हिन्दु लोग तो आरम्भ से ही दूध को 'अमृत' अर्थात् सत्त्वगुणी भोजन तथा माँस-मछली को तमोगुणी तथा विषय वासना बढ़ाने वाला होने से राक्षसी भोजन कहते आए हैं। परन्तु विज्ञान की उन्नति होने पर अब यूरोपियन लोग भी मांस की अपेक्षा पनीर को हर दृष्टि से और विशेषतया गर्म देशों में अच्छा समझने लगे हैं, यहां तक कि डा॰ मैचनिकाफ (Dr: Metchnikoft) (डायरैक्टर पासचर इन्स्टीचूट पैरिस) वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर दही को अमृत सिद्ध करते हैं और कहते हैं कि दही खाने से मनुष्य विना बृद्धावस्था के दुःखों को प्राप्त हुए लम्बी आयु वाला होता है, क्योंकि लैक्टिक एसिड के कीटाणु (जिस के कारण दूध दही बनता है) आंतों में पहुँच कर उन सड़ांद करने वाले कीटाणुओं को नष्ट कर देते

हैं जो बुढ़ापे का कारण बनते हैं। बाज़ार का दही खुला रहने से लैक्टिक बेसिलाई (Lactic Bacilli) के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के कीटाणुओं का घर बन जाता है। इसी लिए बहुत बार रीढ़ आदि की पीड़ा का हेतु बनता है। किन्तु यदि दही को तंग मूँह के बरतन में रखकर और पांच मिनट के लिए उबाल कर केवल 'लेक्टिक एसिड बेसिलाई' को सजीव रखा जाय तो वह अजीर्ण को दूर करने के अतिरिक्त आंतों से खटास और सडांद को भी दूर कर देता है।

छाछ से यद्यपि मक्खन निकाले हुए दूध के समान चिकनाई वाले पदार्थों का लाभ नहीं होता, फिर भी एनीमल प्रोटीन्स (Animal Proteins) और लैक्टिक एसिड के कीटाणुओं के दृष्टिकोण से यह भी गांव के किसानों के लिए एक बहुत उपयोगी खाद्य-पदार्थ है।

बहुत से मांसाहारी मांस खाने के विषय में वैज्ञानिक डाक्टरों की शरण लेते हैं और कहते हैं कि डाक्टर लोग मांस को बहुत बढ़िया भोजन बताते हैं इस लिए वे खाते हैं। इन अधूरे डाक्टरों के विषय में 'नीम हकीम ख़तरा जान' वाली लोकोक्ति का स्मरण करा कर हम इनको आधुनिक युग के प्रसिद्ध डाक्टरों की खोज के परिणामों से सूचित करते हैं, जिनका कहना है कि मांस खाने पर चार प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

(क) **एनिमल पैरासाइट्स** (Animal Parasites)—'सिस्टीसर्कस' नाम का एक विष है जो शूकर, वछड़े और भेड़ में ख़सरा (Mesels) नामक रोग का हेतु होता है। यह मानव में आकर कद्दूदाने का रूप धारण कर लेता है। 'ट्राइकाइना स्पाइरेल्स' नाम के कीटाणु कबूतर और शूकर आदि में काफ़ी पाये जाते हैं और

उनकी थैली के चारों ओर खटिका भरण[1] (Calcification) हो जाता है। इसलिये नमक लगाने पर भी या थोड़ी गर्मी पहुँचाने पर भी ये सुरक्षित रहते हैं, कारण कि ये मांस के भीतरी भाग में होते हैं जहां १५० फारनहीट की गर्मी नहीं पहुंचती जोकि इन्हें नष्ट करने के लिये आवश्यक है।

(ख) पेड़ पौधे—एन्थ्रैक्स(Anthrax) ग्लैण्डर्स (Glanders) और तपेदिक (Tuberculosis) आदि रोगों में जो जीव फँस जाते हैं उनका स्वास्थ्य ख़राब होने पर भी यद्यपि ऊपर से वह रोगी मालूम नहीं पड़ते तो भी उन पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है, जैसे कि गांव के आस-पास के गंदे पानी में से पकड़ी हुई छिलकेदार मछलियां। ये कद्दूदाने और दूसरे विषैली चीज़ों के अतिरिक्त मियादी बुखार की प्रकार के रोग फैला सकती हैं। खरगोश आदि जीव, मारे जाने से पहले जिन बेलाडोना (Belladona) आदि विषैले पौधों को खाते और बड़ी सुगमता से पचा जाते हैं, अपना मांस खाने वालों पर इन विषों का प्रभाव डालते हैं।

(ग) टोमीन (Ptomaine) प्रकार के विष— रोगी जीवों के अथवा दूसरे सड़े हुए मांस से यह हानि होती है कि कीटाणु तो पकाने से मर जाते हैं किन्तु उनसे उत्पन्न हुए विषों पर पकाने का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। कई बार गरम गरम खाने से तो विशेष हानि नहीं होती किन्तु ठण्डा होने तक कीटाणुओं के अवशेष एलब्युमिनोइड्स[2] (Albuminoids) पर अपना प्रभाव डाल कर विषैले रोगों के हेतु होते हैं। पूरी प्रकार न पकाने और शूकर का अचार आदि खाने का परिणाम और भी भयानक होता है। यद्यपि

---

1. चूने का संग्रह।
2. एल्ब्यूमिन रहने का स्थान।

भोजन में नमकों की कमी के कारण 'स्कर्वी'[1] (Scurvey) और मांस-खोरा (caries) आदि दांतों के रोग हो जाते हैं, किन्तु इस बात का काफ़ी प्रमाण है कि वे केवल नीबू के रस से ठीक नहीं हो सकते, क्योंकि वास्तव में उनका हेतु टीनों में बन्द मांस को खाना है।

(घ) **स्वस्थ जीवों का मांस**—ऊपर लिखे तथ्यों के अतिरिक्त स्वस्थ जीवों के मांस और अण्डों से रोग पैदा होने का जो चौथा प्रकार है उसके तीन रूप हैं :—

(१) 'यूरिक एसिड' आदि विषों की मौजूदगी से तथा 'न्यूक्लीन' (Neoclean) और 'लेसीथीन' (Lacithene) आदि पाये जाने से ऐसे विषैले पदार्थ पैदा होते हैं जो रक्त के दबाब (Blood pressure) को बढ़ाते हैं और मानसिक तथा शारीरिक थकावट एवं दूसरे रोगों का कारण बनते हैं।

(२) प्रोटीन के बहुत प्रयोग में आने से भी अनेकों दुष्परिणाम होते हैं, क्योंकि एक तो मांस में ही प्रोटीन काफ़ी होते हैं (२० अथवा २२ प्रतिशत), और इसमें से दो प्रतिशत के अतिरिक्त सब शरीर में समा जाते हैं। आशय यह कि दूध के समान दूसरे सब पदार्थों की अपेक्षा मांस का प्रोटीन पदार्थ शरीर में अधिक समा जाता है।

(३) मांस या अण्डे (यद्यपि इनमें चूने के पदार्थों का होना भी कब्ज़ का हेतु है) मल-मूत्र बहुत कम छोड़ने के कारण कब्ज़ करके (Bacillus Colii) बैसिलस कोलाई आदि बड़ी आंतों के कीटाणुओं के कारण सडाँद एवं विष पैदा करके आन्त्रिक अवरोध

---

1. विटेमीन सी की कमी से उत्पन्न होने वाला दन्तरोग जिस में ममूड़ों से रक्त आता है और बाद में बढ़कर पायोरिया का रूप धारण करता है।

(Intestinal Obstruction) या उलझी हुई आन्त्रवृद्धि (Strangulated Hernia) जैसे रोगों के कष्ट के कारण बनते हैं। आशय यह कि मांस खाने से न केवल विविध रोगों की अपेक्षा शक्ति कम होती है और बुढ़ापा समय से पहिले आना शुरू हो जाता है अपितु पूरी आयु तक पहुँचने से पहले ही मृत्यु आ दबाती है। इससे स्पष्ट हो है कि मांस खाने से व्यक्तिगत दुःखों के अतिरिक्त यह सृष्टि बहुत से योग्य और विद्वान् पुरुषों के अनुभवों से जो उनसे संसार को प्राप्त हो सकते थे, वंचित रह जाती है, क्योंकि अफ़लातू, ग्लैडस्टन आदि कई विद्वानों ने अपनी सब से अच्छी पुस्तकें इस अन्तिम अवस्था में ही लिखी थीं। उस समय उनकी आयु ९० वर्ष से ऊपर पहुँच चुकी थी। किन्तु आज-कल देखा जाता है कि लोगों की आयु साधारणतया साठ सत्तर वर्ष भी कठिनता से ही होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक युग के भोज्य पदार्थ हमारे शरीर को ठीक शक्ति नहीं दे रहे हैं।

योग्य डाक्टरों की खोज—रोग उत्पन्न होने के यह तीन रूप, तीन देशों के बहुत योग्य डाक्टरों के इसी दृष्टिकोण से की हुई वर्षों की खोज के परिणाम हैं। इसलिये पाठकों के लाभ के लिये इनका विस्तृत वर्णन किया जाता है :—

(१) इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध डाक्टर एलेग्ज़ेण्डर हेग एम० ए० एम० डी० अपनी पुस्तक 'डायट ऐण्ड फूड (Diet and Food) में थकावट के कारणों की खोज करते हुए लिखते हैं कि यदि अजीर्ण न हो तो भोजन करने के चार पांच घण्टे पश्चात् तक थकावट इस लिए नहीं होती कि रक्त में 'एल्ब्युमिन' की कमी है, किन्तु उस थकावट का दूसरा कारण होता है। यदि मनुष्य भोजन करके पाचन शक्ति ठीक होने पर भी, थकावट का अनुभव करता है तो इसका आशय यह है कि यद्यपि खाद्य पदार्थ रक्त में काफ़ी मौजूद हैं किन्तु

किसी रुकावट के कारण यदि यूरिक एसिड आदि मल मूत्र तक नहीं पहुँच पाते, तो थकावट अनुभव होने लगती है। ऐसी अवस्था में बहुत बार पेट भर जाने पर भी मनुष्य अपने मेदे के स्थान पर कुछ डूबने की सी स्थिति अनुभव करता है और दिन में चार पांच बार खाने का इच्छुक ही नहीं अपितु मदिरा आदि नशीली वस्तुओं की भी आवश्यकता का अनुभव करता है । शाकाहारियों के लिए न केवल उत्तेजक पदार्थों (Stimulation) की आवश्यकता नहीं होती अपितु भोजन भी दिन में दो बार पर्याप्त होता है ।

यही साहब अपनी दूसरी पुस्तक 'Uric Acid as a Factor in the Causation of Diseases' (यूरिक एसिड ऐज़ ए फैक्टर इन दी काज़ेशन आफ़ डिसीजेज़) में बहुत से रोगों का हेतु 'यूरिक एसिड' को सिद्ध करते हुए इन को दो प्रकार से विभक्त करते हैं : -

(१) **स्थानीय** - जिन को गठिया (Gout) का नाम दिया गया है अर्थात् वह रोग जोकि 'यूरिक एसिड' के विविध स्थानों जिगर, तिल्ली, जोड़ों अथवा सौत्रिक तन्तु (Fibrous Tissue) आदि में नीचे बैठकर पैदा करने से बढ़ते हैं। जैसे (Rhinitis) गठिया और सौत्रिक तन्तुओं की स्थानीय सूजनें, जिन में नीचे लिखी भी सम्मिलित हैं — मस्तिष्क और उसके पर्दे, नाक से लेकर फेफड़े और उसके पर्दे तक सब अंग, पाकाशय, यकृत, उदरावरण (Peritoneum), आंतें, पेडू की सूजन आदि, त्वचा के रोग जैसे चंबल और कई दूसरे अंगों के रोग ।

(२) **साधारण रोग** —जो 'यूरिक एसिड' के खून में अधिक होने के कारण होते हैं—उनको मूत्रविषमयता (Uraemia) भी कहा गया है जैसे मन का आलस्य आवेश, पागलपन, शारीरिक आलस्य और थकावट, सिर दर्द, चक्कर आना, दिल का

धड़कना, रात को नींद न आना, पक्षाघात, दमा, मन्दाग्नि, यकृत में रक्त एकत्रित हो जाना, मधुमेह, मूत्राशय की सूजन, पथरी, अंगों की सूजन, आंखों की खराबी, मस्तिष्क की विकृति, नाड़ी की अपक्रान्ति (Nervous Degeneration), त्वचा के रोग जैसे मांसक्षय (Atrophy), क्षतोत्पत्ति (Ulceration), हाथ पैरों का सुन्न होना (Raynaud's Disease), स्नायु (अरुक) के रोग, जैसे त्वग्गत रक्तस्राव (Perpura), रक्त का जमना (Thrombosis), रक्त का न जमना (Athrombia), खटिकाभरण (Calcification), रक्तवाहिनी नाड़ियों में सूजन (Anorysm), हृच्छूल (Angina Pectoralis), रक्त के रोग जैसे रक्ताल्पता (Anaemia), हलीमक (Chlorosis), मूत्र में रक्त कणों का आना (Haemoglobinuria), श्वेत कणों की बहुलता (Leucocythaemia), कुम्भकामला (Pernaecious Anaemia), घेंघा (Grave's Disease) तथा रक्तप्रदर (Menorrhagia), अर्श (Piles), तीव्रकण्डु (Pruritis) कष्टार्त्तव (Dysmenorrhoea) इत्यादि गुदा और योनि के रोग। इसके अतिरिक्त विविध प्रकार के रोगों के कीटाणु भी केवल इस अवस्था में शरीर पर प्रभाव डाल सकते हैं जबकि यूरिक एसिड' के कारण शारीरिक व्यवस्था बिगड़ चुकी हो।

यूरिक एसिड — ऊपर लिखे गये दो प्रकार के रोगों में से पहली प्रकार के रोगों को तो, डा॰ हेग के अनुसार ऐसी चीज़ों से आराम हो जाता है जो यूरिक एसिड को रक्त में मिला देती हैं; जैसे खारी औषधियाँ (सोडा, पोटाश) पेड़ पौधों से बने हुए खाद्य पदार्थ, सेलीसिलक एसिड आदि। दूसरी प्रकार के रोगों के लिये ऐसी औषधियाँ लाभकारी हो सकती हैं जो रक्त से यूरिक एसिड को दूसरे अंगों की ओर भेज दें; जैसे' एसिडस' अर्थात् तेज़ाब, लोह पदार्थ, पारा आदि। किन्तु दोनों प्रकार के रोगों को रोकने के लिये

इनके दुःख को कम करने के लिये तथा स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये ऐसे भोजन की आवश्यकता है जिसमें यूरिक एसिड न हो, जिस से न यूरिक एसिड शरीर में प्रवेश करे और न उससे सम्बन्धित रोग उत्पन्न हों और यदि इससे पहले यह शरीर में प्रवेश कर चुका हो तो धीरे धीरे बाहर निकला जाय। अब प्रश्न उठता है कि यूरिक एसिड शरीर में एकत्रित क्यों होता है ? इसका उत्तर है कि मांस खाने के कारण, क्योंकि —

(क) रासायनिक क्रिया से यह सिद्ध होता है कि इसमें छः से आठ ग्रेन प्रति पौण्ड के हिसाब से शुद्ध बोरिक एसिड मौजूद होता है इस लिये मांस का प्रयोग करना वास्तव में विषैला भोजन खाना है।

(ख) फिज़ियालोजी से पता चलता है कि जितनी नाईट्रोजिनस खाद्य सामग्री मनुष्य प्रयोग में लाता है उसका तीसरा भाग यूरिया के रूप में निकल जाता है और इस यूरिया का पैंतीसवां भाग 'यूरिक एसिड' बनता है। इसका मतलब यह हुआ कि यदि कोई मनुष्य प्रति पौंड नौ या दस ग्रेन प्रोटीन का प्रयोग करता है तो सब उत्पन हुआ यूरिक एसिड मूत्र के रूप में निकल जाता है। किन्तु यदि अधिक नाईट्रोजन खायी जाये तो इस से उत्पन्न हुआ सारा यूरिक एसिड मूत्राशय द्वारा बाहर नहीं निकाला जा सकता। इस लिए यदि एक दिन में आधी रत्ती भी यूरिक एसिड एकत्रित हो तो एक वर्ष में दो तोले तक एकत्रित होगा, क्योंकि मांस खाने से नाइट्रोजन के पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में शरीर में चले जाते हैं। इस लिये इस दूसरी दृष्टि से भी यह विषैले भोजन के समान ही हो जाता है।

(ग) यूरिक एसिड का प्रति दिन निकलना ख़ून में खारी पदार्थों की अधिकता होने पर निर्भर है और रक्त का खारी होना अधिकतर पेड़-पौधों के नमकों पर आधारित है। इसलिये इस

विष को पूरी तरह से निकालने के लिये सब्जियां खाना आवश्यक है अन्यथा इसके विपरीत मांस खाने से यूरिया के साथ साथ तेजी भी बहुत अधिक पैदा होती है। इस लिये रक्त में यूरिक एसिड को बढ़ने से रोकने के लिये मांस का खाना बन्द करना पड़ेगा। इस तीसरे दृष्टिकोण से भी मांस खाना हानिकारक है। थोड़े में इस का आशय यह है कि मांस खाना एक ऐसा विष समझ कर छोड़ देना चाहिये जिसका प्रभाव कई वर्षों के पश्चात् पड़ता है।

अमेरीकन डाक्टर की राय—अमरीका के योग्य डाक्टर रसल चटंडन (डी० एस० सी०, डी० पी० एच०, एल० एल० डी०) प्रोटीन अधिक प्रयोग में लाने की हानियों का वर्णन अपनी पुस्तक 'फिजियालोजिकल इकोनोमी इन न्यूट्रीशन (Physiological Economy in Nutrition) में इस प्रकार करते हैं—

यदि शरीर के अंगों की शक्ति नाइट्रोजिनस पदार्थों के न खाने से कम हो जाती तब तो वास्तव में इनको भोजन में सम्मिलत करने की आवश्यकता होती, किन्तु जब यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि शक्ति कार्बन के पदार्थों पर निर्भर है तो फिर नाइट्रोजन पदार्थों का अधिक प्रयोग कहां तक ठीक समझा जा सकता है। जहां कार्बोहाइड्रेट की अधिकता केवल आंतों की उत्तेजना का हेतु बन सकती है वहां प्रोटीन की अधिकता कई भयंकर रोगों का कारण बन सकती है। इसके अतिरिक्त यदि कार्बोहाइड्रेट पाचन-शक्ति को खराब करने का प्रभाव एक दम डालता है तो प्रोटीन का बुरा प्रभाव क्रानिक (Chronic) अर्थात् पुराने विष के रूप में इतनी देरी के पश्चात् मालूम होता है जबकि चिकित्सा करने का समय नहीं रहता, क्योंकि शरीर में रच जाने के पश्चात् यह आक्साइडस कुछ ऐसे विषैले पदार्थ बन जाते हैं जो गुरदे (Kidneys) के द्वारा शरीर से बाहर निकलने से पहले सारे अंगों में घूमते हुए

शरीर पर बहुत हानिकारक प्रभाव डालते हैं। अथवा कुछ देर के लिये किसी विशेष स्थान पर एकत्रित होकर किसी ऐसे रोग का कारण बनते हैं जो इनको एक दम बाहर निकालने के लिये रोगी का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं जिसके कारण चिकित्सा के प्रबन्ध में देरी नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त जिगर और गुरदे,-जिन पर विशेषतया इन का अधिक बोझ पड़ता है समय से पहले ही ख़राब हो जाते हैं। यकृत (जिगर), जो कि विषों को तोड़कर उन्हें हानि न करने वाले रूप में बदलता है) के ठीक कार्य न करने की अवस्था में 'एमोनियम कार्बोनेट' के विष आदि पैदा हो जाते हैं, जिनका परिणाम मृत्यु के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। डाक्टर मालट के अनुसार 'क्रियेटीन' और 'क्रियेटिनीन' शरीर के रेशों पर सीधे अपना प्रभाव डालकर दिल के कार्य को बन्द करने का हेतु बनती हैं। मस्तक और दूसरे अंगों में इनके कारण पीड़ा हो जाती है।

'ऐडिनिन' जो बहुत विषैला होता है दिल के कार्य को साधारण से बहुत अधिक तेज़ कर देता है और आँतों के आरम्भिक भाग के म्युकस के परदे में सूजन उत्पन्न करके वमन का हेतु होता है, जिसका उपचार ही नहीं हो सकता। गुरदों पर भी विशेष प्रभाव डालकर उन में 'बोरिक एसिड' और यूरेट्स को बढ़ाकर बहुत सूजन का हेतु होता है, जिससे एकदम मृत्यु हो जाती है। 'ऐलाकमस बोरिक एसिड' बुखार पैदा करता है। 'यूरिक एसिड' का गठिया और नक़रस से सम्बन्ध तो जगत्-प्रसिद्ध है। डाक्टर बाघन और डाक्टर नेबी का कथन है कि यह बात तो सर्वमान्य है कि प्रोटीन के अणु अपने रासायनिक परिवर्तन में यूरिया, एमोनिया, पानी, कार्बन डायक्साइड के रूप में आने से पहले बहुत से विषैले पदार्थ बन जाते हैं। इसलिये प्रोटीन अधिक प्रयोग करने वालों को कई प्रकार के

बुखार 'लैकोमेन' प्रकार के 'इमैक्लाइड' पदार्थों के ही विषों का परिणाम होते हैं । इसी प्रकार प्रोटीन कैटाबोलिज़्म (Proteine Ketabolism) से स्वास्थ्य पर बहुत से हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं ।

क्योंकि प्रोटीन के खुराक में कम प्रयोग करने से प्रोटीन कैटाबोलिज़्म (Protein Ketabolism) कम हो जाता है । इसलिये बहुत से ऊपर लिखे रोगों से सुरक्षित रहने के लिये आवश्यक है कि जहां तक हो सके, इन्हें कम खाया जाय । शारीरिक स्वास्थ्य और लम्बी आयु का भेद इसी सिद्धान्त में निहित है । इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न अंगों में 'यूरिक एसिड' और 'प्यूरिन बेसिलस' के बनने से ही थकावट का अनुभव होता है और यदि प्रोटीन थोड़ी खाई जाय तो यह भी थोड़ी बनती है इसलिये इसके थोड़ा प्रयोग करने वालों में थकावट थोड़ी और सहनशक्ति अधिक होती है । इसलिये मांसाहारी पशुओं की अपेक्षा पेड़ पौधे खाने वाले पशु-बैल, घोड़े आदि अधिक परिश्रम का काम कर सकते हैं और उनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होते हैं । ऐसा इसीलिये है कि इनका रक्त विषैले पदार्थों से बचा रहता है । हाथी, गैंडा, गोरीला और अरना भैंसा आदि शाकाहारियों में बहुत ऊँचे दर्जे के बलवान् पशु हैं, जिनके सामने शेर भी नहीं ठहर सकता । इस बात का वर्णन करना भी अनुपयुक्त न होगा कि प्रोफ़ैसर राममूर्त्ति, जो कि हाथी को अपनी छाती पर उठाते और लोहे की जंज़ीरें आसानी से तोड़ देते थे, मांसाहारी न होकर शाकाहारी ही थे । ऊपर लिखी हुई बातों के अतिरिक्त प्रोटीन जाति की भोजन सामग्री सारे शरीर के 'मेटाबोलिज़्म' को तीव्र करती है, इसलिये भोजन में इसकी अधिकता, शरीर के' नॉन-नाइट्रोजिनस' पदार्थों को भी अनावश्यक तौर पर बढ़ा देती है । इस प्रकार यह शक्ति के उस निधि को नष्ट कर देती है जो सुरक्षित रहकर प्रतिदिन के कार्यों के लिये प्रयोग में

आ सकती थी। संक्षेप में यह कि नाइट्रोजन की एक निश्चित मात्रा शारीरिक नीरोगता और शक्ति के लिये बहुत आवश्यक है। किन्तु शारीरिक आवश्यकता से इसकी थोड़ी सी अधिकता भी दूसरी खाद्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक हानिकारक होती है। पेट भरने के लिये नाइट्रोजन खाद्यसामग्री की जितनी आवश्यकता होती है, उतनी पेड़ पौधों की खुराक में ही पर्याप्त आ जाती है, इसलिये मांस के सम्मिलित करने पर यह आवश्यक है कि उसकी मात्रा बहुत बढ़ जाय। इसीलिये खाद्य पदार्थों के रूप में इसका प्रयोग अनुपयुक्त कहना सर्वथा सत्य है।

★

वृद्धावस्था की ओषधि

वृद्धावस्था में रोगों और कमज़ोरी से बचने की ओषधि—

(१) प्राणायाम करना और बाह्य स्वच्छता के साथ साथ आन्तरिक स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देना अर्थात् प्रतिदिन आंतों को नियमित रूप से ख़ाली करना और कब्ज़ न होने देना और, यदि ईश्वर न चाहे, कब्ज़ हो भी जाय तो जुलाब लेना। (इसी विचार से कुछ शताब्दियों पहले चीन में 'एलूज़' के रस को 'आवे हयात' (अमृत) का नाम दिया जाता था।)

(२) आंतों में सडाँद रोकने वाली ओषधियों का प्रयोग करना—जैसे कैलोमल, काफ़ूर, थायमोल आदि। जिनमें पिछली दो ओषधियों के साथ 'मैंथोल' और एक रंगदार वस्तु मिलाकर बहुत से देशी हकीम आजकल भी 'अमृतधारा' आदि के नाम से बेचते हैं। पुराने युगों में सोमरस (Ephedra Vulgaris) का भी शायद ऐसा ही प्रभाव होता हो।

(३) हर एक वस्तु, यहाँ तक कि फल और पानी को भी उबाल कर प्रयोग में लाना चाहिये ताकि जहां तक हो सके कीटाणुओं को अन्दर प्रवेश करने का समय ही न मिले। (इसीलिये बहुत से हिन्दू लकड़ियां भी धोकर चौके में ले जाते हैं।)

(४) व्रत रखना, ताकि कीटाणुओं को अन्दर पलने के लिये कम सामग्री मिल सके।

(५) भोजन को खूब चबाकर खाना, जिससे खाद्य सामग्री भली प्रकार पच कर एक हो जाय।

(६) 'साइटोटॉक्सिक सीरम' की त्वचा में पिचकारी करना-जिससे उच्चकोटि के सेल्स को शक्ति पहुंचे, क्योंकि जिस प्रकार डिजिटेलिस (हृत्पत्री) नाम की ओषधि अधिक मात्रा में सेवन करने से हृदय पर विषैला प्रभाव डालती है और कम मात्रा में खाने पर दिल को शक्ति प्रदान करती है वैसे ही विशेष प्रकार के सेल्स को नष्ट कर देने वाला 'सीरम' भी थोड़ी मात्रा में सेवन करने से शक्ति प्रदान करता है; जैसे कि 'एनेमिया' में रक्त के लालकणों के लिये 'ऐन्टी सीरम' गुणकारी है।

इन सब उपायों में से कुछ तो बहुत थोड़ा लाभ करते हैं और कुछ से एक दृष्टिकोण में कुछ लाभ पहुंचता है तो दूसरी तरफ़ बहुत परिश्रम अथवा हानि भी होती है। इसलिये अन्तिम किन्तु सबसे अच्छी बात यही होगी कि उपयुक्त भोजन का प्रयोग किया जाय। 'एसिड' के रहते हुए 'ब्युटारिक' प्रकार का अम्ल (खटास) और सड़ाँद उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये भोजन में मांस के बजाय (जो बहुत शीघ्र सड़ जाता है) दूध दही का उपयोग करना चाहिये, जो न केवल 'लैक्टिक' प्रकार का ख़मीर होने से स्वयं ही नहीं सड़ता, किन्तु अपने रहते हुए सडाँद के अन्य कीटाणुओं को भी काम करने से रोकता है।

मांस खाना मांसाहारी पशुओं के लिये भी (जिनमें बड़ी आंतें बहुत थोड़ी लम्बाई रखती हैं) शाकाहारी जीवों की अपेक्षा थोड़ी आयु का हेतु है। ऐसी अवस्था में यदि मानव के लिये (जिसकी आँतें शाकाहारी जीवों के समान ही लम्बी होती हैं) उसको अनुपयुक्त कहा जाय तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

आध्यात्मिक परिपूर्णता

अन्तिम किन्तु सबसे आवश्यक दृष्टिकोण जो मांस खाने को अनुपयुक्त सिद्ध करता है यह है कि मानव जीवन का वास्तविक लक्ष्य आध्यात्मिक निपुणता की प्राप्ति है। जिसका आधार विवेक और जन-सेवा है। मांसाहारियां के लिये शान्ति से बैठना असम्भव है (जेसा कि चिड़ियाघर में मांसाहारी जीवों को प्राय: सारा दिन अपने कठघरे में घूमते सव ने देखा होगा), इसलिये मस्तिष्क के कार्यो में पूर्ण सफलता के रास्ते में यह रुकावट है। इसके अतिरिक्त साधारण प्रकृति का अध्ययन करने से पता लगता है कि केवल वे ही जीव नम्र और मानव-सेवा में लगे रहते हैं जो शाकाहारी हैं, किन्तु मांसाहारीन केवल किसी प्रकार की सेवा करने में असमर्थ रहते हैं अपितु हिंसक और रक्तपात करने वाले होने के कारण दूसरों के भयंकर दुःखों का हेतु बनते हैं, जो सच्चे संन्यास के सिद्धान्त 'अभयदान' के विपरीत होने के कारण आध्यात्मिक परिपूर्णता की प्राप्ति में रुकावट पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त कर्म-शास्त्र के नियम के अनुसार भी इसे बुरे कर्मों के फल मिलने का कारण बताया गया है। इससे यह पता चलता है कि किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाय, मांस खाना मानव के लिये उपयुक्त नहीं है। आधुनिक युग में तो इस सिद्धान्त की और भी अधिक पुष्टि हो सकती है जबकि विज्ञान की उन्नति के कारण पेड़ पौधों में भी विद्युत्शक्ति, रासायनिक खाद या विशेष प्रकार के

कीटाणुओं से नाइट्रोजन प्राप्त की जा सकती है, जो अन्यथा वायु में पर्याप्त मात्रा में होते हुए भी वहुधा वृक्षों के हिस्से में कम आती हैं।

वायोकेमिस्ट्री से भी यह सिद्ध होता है कि पशु-पक्षियों का रक्त मनुष्य के रक्तकणों को नष्ट कर देता है। पशुओं का वध होने पर उनके शरीर के सब जीवाणु एक दम नष्ट नहीं होते अपितु बहुत से जीवित रहते हैं, जो अपने 'मेटाबोलिज़्म के कारण अपने ही उत्पन्न किये हुए रासायनिक तथा विषैले पदार्थों की अधिकता से एकत्रित होने पर ही मरते हैं, क्योंकि रक्त के बन्द हो जाने के कारण इन विषैले पदार्थों के बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं रहता और वे विष मांस खाने वालों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इसलिये जो लोग स्वस्थ रहना चाहते हैं उन्हें मांस का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

डा० जे० ओल्ड फील्ड साहब, सीनियर फिज़िशियन लेडी मार्गरेट अस्पताल लिखते हैं :—

आज यह रासायनिक बातें सब लोगों को विदित हैं और उन्हें कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि पेड़ पौधों में वे सब खाद्य पदार्थ मौजूद हैं जो मानव शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए आवश्यक हैं। मांस एक अप्राकृतिक खाद्यपदार्थ है और इस लिये शरीर में कई प्रकार की ख़राबियां पैदा करता है। आधुनिक युग के सभ्य देशों में, जहां मांस का बहुत प्रयोग होता है, ऐसी भयंकर बीमारियां, जैसे कैन्सर (अंतड़ियों फोड़ा जिसे नासूर भी कहते हैं), यक्ष्मा, ज्वर अंतड़ियों के कीड़े आदि अनेकों रोगों में बहुत बुरी तरह फंसे हुए हैं। इस में आश्चर्य की तो कोई बात ही नहीं कि मांस खाना इन रोगों के सब से बड़े कारणों में से एक है जो कि संसार की ६६ प्रतिशत बीमारियों के लिये उत्तरदायी हैं।

—कल्याण-कल्पतरु वर्ष ५ संख्या ४ पृष्ठ ४४

वीरता तथा मांसभक्षण

मांसाहारी मनुष्य मांस खाने की प्रशंसा करते हुए बड़े गर्व से कहते हैं कि मांस खाने से मनुष्य में बहुत शक्ति पैदा होती है। जितनी जातियां मांस खाती हैं वे सब बलवान् हैं और संसार में उन्हीं का शासन है। मैं इस बात को मानता हूं कि इस युग में मांस खानेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है और मांसभक्षण के लिये इतने अधिक जीवों का वध प्रतिदिन किया जाता है कि यदि इसका अनुमान किया जाय तो वध किये जाने वाले जीवों की संख्या, करोड़ों तक पहुँचती है जिसका विचार करके कलेजा कांपने लगता है। किन्तु इससे यह विचार करना कि मांस खाने से मनुष्य बलवान् बनता है असत्य है। संसार के मांसाहारियों की संख्या पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि सब मांसाहारी शक्तिशाली नहीं होते। भारत में ही देखा जा सकता है कि काश्मीर, बंगाल और मद्रास में रहने वाले मुसलमान दूसरे प्रान्तों में रहने वाले मुसलमानों से अधिक मांस खाते हैं अथवा कम से कम उन जितने ही मांसाहारी हैं, किन्तु शारीरिक शक्ति में दूसरों की अपेक्षा निर्बल कहे जाते हैं और वीरता में अपेक्षाकृत कायर हैं। इस के अतिरिक्त मुसलमानों की कुल जन-संख्या भारत में तीन चार करोड़ है। ये जीवों को केवल अपने लिये ही नहीं मारते किन्तु भारत की बाकी जनसंख्या के मांसाहारियों के लिए

भी मांस का प्रबन्ध करते हैं। इस के अतिरिक्त चीन देश में जहां दो से अढ़ाई करोड़ तक मुसलमान हैं, वे चीन की सम्पूर्ण जन-संख्या के लिये मांस की व्यवस्था करते हैं। अरब, मिस्र, सूडान, तुर्की, ईरान अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान, चीनी तातार आदि देशों की जनसंख्या सात करोड़ के लगभग है और ये सब मुसलमान देश हैं। इन में चौथाई भाग के लगभग दूसरे धर्मों के लोग बसते हैं। इस लिये संसार की एक अरब जनसंख्या के लोगों के लिये, जो संसार की आधी जनसंख्या से अधिक है, यह मांस की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार मुसलमान जाति न केवल मांसाहारी जातियों में सब से आगे है अपितु इसके सम्बन्ध में इसे एक विशेष गर्व का स्थान प्राप्त है, क्योंकि ये संसार की आधी से अधिक जनसंख्या के लिये मांस की व्यवस्था करते हैं।

केवल थोड़े से राज्य—इतना होने पर भी संसार में इन सब से अधिक मांस खाने वालों के केवल थोड़े से छोटे छोटे राज्य हैं जो अपने अस्तित्व के लिये भी दूसरों पर निर्भर हैं। क्या इतने बड़े वधिक होने पर इनमें इतनी वीरता नहीं होनी चाहिये थी जिससे ये संसार के बहुत से भाग को अपने अधीन कर लेते। यदि वास्तव में मांस खाना अथवा जीवों का वध करना ही वीरता की निशानी होती तो मेरे विचार में सारे संसार में इस्लामधर्मियों का ही शासन होता। किन्तु यह वास्तविकता से बहुत दूर है। मांस खाने वाले मुसलमानों की वीरता कभी, कभी भारत के कुछ नगरों में लड़ाई दंगों के रूप में अवश्य देखने में आती है। मार-धाड़ करने के लिये साधारणतया ये ही कारण हुआ करते हैं। मसजिद के सामने बाजे का प्रश्न, झटका, हलाल, मालदार हिन्दुओं को तंग करने के लिये हिन्दू त्यौहारों पर और बहुत से स्थानों पर गौवों का वध इत्यादि आक्रमण अधिकतर व्यापारी लोगों पर होते हैं, जिन्हों ने जन्म से

लेकर मृत्यु तक शस्त्र चलाना एक तरफ़ रहा हाथ में लेना भी नहीं सीखा। गुण्डे, बदमाश और नीच जाति के लोग तो ऐसे अवसर से लाभ उठाते हैं और व्यापारिक जाति के लोगों के रुपये पैसे आदि को हथिया लेते हैं। यदि ऐसा मनुष्य ही वीर कहला सकता है तो ऐसे मनुष्य अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू भले ही बनते फिरें, किन्तु जिस स्थान पर ऐसे बीस बीस हज़ार और कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े बड़े स्थानों पर इससे भी अधिक वीर हल्ला बोल देते हैं तथा लूट-खसूट मचाते हैं, वहां पुलिस और फ़ौज के सिपाही केवल सौ, दो सौ या चार-पांच सौ तक ऐसे वीरों को तित्तर-बित्तर करने और कानून के डण्डे के नीचे लाने के लिये पर्याप्त होते हैं। यदि कहीं एक आध गोली भी चल जाय तो ऐसे बनावटी वीर वहां से घरों में जा घुसते हैं। इस पर भी इनके नेता इनकी वीरता के गुण गाने में और यह बात कहने में तनिक भी नहीं झिझकते कि हमारे लोग जन्म से ही वीर सिपाही और वीर हैं। इसके अतिरिक्त जिन देशों की संख्या करोड़ों में होती है उन पर भी जब कोई शत्रु आक्रमण करता है तो उनकी फ़ौज की संख्या करोड़ों में नहीं होती, किन्तु हज़ारों या लाखों तक ही रहती है। वह सेना अपनी संख्या से सैकड़ों और हज़ारों गुने मानवों पर विजय प्राप्तकर लेती है। मेरा आशय यह है कि जब दो तीन लाख की सेना करोड़ों की जन-संख्या वाले देशों को पराधीन कर सकती है और विजय प्राप्त करने वाला एवं हारने वाला दोनों मांसाहारी होते हैं तो शक्ति का प्रमाण मांसाहार कहां रहा ?

व्यवसाय और धंधों का प्रभाव—वास्तव में बात यह है कि हर व्यक्ति जिस कार्य को बाल्यावस्था से सीखता है और लगातार उस में निपुणता प्राप्त करना चाहता है तो उस कार्य को पूरा करने में उसे दूसरे व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक जानकारी और अनुभव प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ भारत के व्यापारी महाजनों की

ओर ध्यान दिया जाय तो पता चलता है कि ये लोग जन्म से ही व्यापार का काम सीखते हैं। समस्त आयु यही काम करते हैं तथा कई पीढ़ियों से भी ये इसी काम को करते आये हैं। इस लिये इस जाति के बच्चे बच्चे की अपने काम में इतनी प्रवीणता देखी जाती है कि साधारण मुड़िया लिपि जानने वाला महाजन अपने व्यापार को इस सुव्यवस्था से चलाता है कि आजकल के कालेजों में हज़ारों रुपए ख़र्च करके व्यापारिक शिक्षा प्राप्त किये हुए युवक भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते। व्यापार व्यवसाय वाले हिन्दुओं ने शताब्दियों की पराधीनता होने पर भी भारत के व्योपार को सुरक्षित रखा है और इस देश की धन-सम्पत्ति को न केवल बचाया है अपितु बढ़ाया भी है। आजकल तो सरकार व्यापारी लोगों की अपेक्षा ज़मींदारों और किसानों की हिमायत करती है, यह नहीं सोचती कि इन लोगों की भलाई भी व्यापारिक लोगों पर निर्भर है। किसान अपने काम में निपुण हों और व्यापारी अपने व्यवसाय में, इस से ही देश का भला हो सकता है। व्यक्ति हो या जाति, वे जो काम सीखते हैं और उन्हें जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है वे उसी में उन्नति करते हैं। भारत के हिन्दू और मुसलमान एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं, किन्तु मुसलमानों की शिक्षा ने उनको संस्कृति और सभ्यता को बदल दिया है। इसी प्रकार क्या सिख हिन्दू जाति का एक अंग नहीं हैं ? किन्तु देश की आवश्यकताओं ने सिक्खों को हिन्दुओं के साथ अभिन्न होते हुए भी एक युद्ध वीर जाति में परिवर्तित कर दिया है। जिस पुरुष या जाति ने अपने मन और मस्तिष्क को व्यापार में लगा दिया उस ने उसी में प्रवीणता प्राप्त कर ली। मांसाहारी लोग न तो सैनिक काम करने वालों की सहायता कर सकते हैं और न व्यापारिक लोगों के काम आ सकते हैं। यदि वे सच्ची लगन से अपने कर्त्तव्य को पूरा करते

जावें तो वे भी अपने काम में निपुण हो जावेंगे। यह आवश्यक नहीं कि मांस उनके भोजन का अनिवार्य अंग हो। यदि वे कर्त्तव्य-परायण नहीं और मांस दिन में दो की बजाय चार बार खायें तो भी वे निकम्मे ही रहेंगे और शत्रु के सामने अपनी वीरता दिखाने के स्थान पर अपने भइायों को ही दुःख देंगे, चाहे इन भाइयों से इन्हें कितने ही लाभ पहुँचते हों।

नगरों और गांवों में रहने वाले लोग —यदि भारतवर्ष की नगरों और गांवों में रहने वाली जनता की तुलना की जाय तो भी यही परिणाम निकलता है कि शक्ति का आधार मांस नहीं है। भारत की अधिकतर जनता गांवों में रहती है और वहां के लोग मांसाहारी नहीं हैं। या कम से कम नगरों के लोगों की अपेक्षा बहुत कम मांस का प्रयोग करते हैं। इसी पुस्तक में आगे चलकर यह दिखाया जायगा कि यदि गांव के रहने वाले भी ऐसे ही मांसाहारी होते जैसे नगरों के लोग हैं तो भारत के पशुओं की संख्या इस आवश्यकता को पूरी न कर सकती और इस कमी को करने के पूरा लिये पशुओं को बाहर के देशों से मँगवाना पड़ता। किन्तु सम्भवतः यह इस देश का सौभाग्य है और ईश्वर की कृपा है कि गांव के रहने वाले नगर वालों की अपेक्षा बहुत ही कम मांस खाते हैं। अब मांस खाने की इस आदत के साथ यदि शक्ति की तुलना की जाय तो वास्तविकता का पता चलता है कि मांस खाना ही शक्ति का हेतु है या नहीं। दक्षिण में मरहट्टे, पंजाब में सिख, जाट और डोगरे, उत्तर प्रदेश आदि में पूरविये ठाकुर, राजस्थान में राजपूत, पूर्व में गोरखे और गढ़वालिये--यहां तक कि गांव के लोगों की सारी जन-संख्या वीरों से भरी पड़ी है। ये सब अपने काम में निपुण हैं। इनको खेती बाड़ी में बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इतने कठिन परिश्रम के साथ-साथ इनके परस्पर लड़ाई झगड़े भी होते रहते हैं। इन लड़ाईयों

का साहस इन के शरीरों में प्रवेश कर जाता है। इन लोगों की भोजन-सामग्री सादी होती है, जैसे मक्के की रोटी और छाछ तथा सर्दियों में सरसों का साग। किन्तु ये लोग अंग्रेज़ों की सेना को चार चांद लगा देते थे और लड़ाई में गज़नी और अफगानिस्तान के पठानों को पराजित कर देते थे। सीमाप्रान्त के कबाइली बड़े लड़ाके हैं, पर उनको भी ये पराजित कर देते हैं। गांव की जनसंख्या में से भरती की हुई सेना और पुलिस के ये सैनिक नगरों में लड़ाई दंगा करने वालों और आपस में फूट फैलाने वाले गुण्डों को, जिन में माँस खाने वाले अधिक होते हैं नियन्त्रण में लाते हैं। हज़ारों नागरिकों को पीछे हटाने के लिये थोड़े से ग्रामीण पर्याप्त होते हैं। यह बहुत वार सुनने में आता है कि थोड़े से शरारती गुण्डों ने किसी नगर में झगड़ा कर दिया, दूकानों को लूटा, मकानों को आग लगा दी, स्त्रियों की बेइज्ज़ती की, अनजान लोगों पर आक्रमण किये, इत्यादि। किन्तु जब थोड़े से ग्रामीण लोगों की सहायता ली गई तो यह नगरों में रहने वाले गुण्डे ऐसे दुम दबा कर भागे कि कहीं नाम निशान भी दिखाई न दिया। नागरिक और ग्रामीण जन-संख्या की इस तुलना से यह साफ़ पता चलता है कि शक्ति और वीरता का आधार मांस खाना नहीं। कुछ लोग जो यह कहते हैं कि सीमा प्रान्त (पाकिस्तान) के पठान आदि सदा लड़ाई आदि में लगे रहने के कारण मांस अधिक खाते हैं--यह भी ठीक नहीं। संसार में हर धर्म में कई प्रकार के स्वभाव के लोग होते हैं। महाजनों में भी ऐसे आदमी निकल सकते हैं जिन्हें सैनिक नौकरी का शौक हो। इन की संख्या चाहे कितनी ही थोड़ी हो किन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि फ़ौजी शौक रखने वाले बिल्कुल न हों। भारत में मुगलों के शासन के पतन का कारण दक्षिण पूर्व में शिवा जी मरहट्टा और उत्तरपश्चिम में बन्दा वैरागी थे। यह बन्दा वैरागी गुरु गोविन्दसिंह

जी का ही एक वीर साथी था। उस ने हज़ारों नहीं, लाखों आदमियों को मार डाला। यह बन्दा बैरागी राजपूत था। भाई परमानन्द जी ने भी लिखा है कि वह पूंछ रियासत का रहने वाला राजपूत था। उस ने वैरागी धर्म को अपनाया हुआ था। पीछे उसने गुरु गोबिन्द सिंह जी के आदेशानुसार सैनिक धर्म स्वीकार कर लिया था। वैरागी मांस नहीं खाते। अतः समझदार मनुष्य सोचें कि यदि मांस खाने में शक्ति होती तो न खाने वाले खाने वालों पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते।

कुछ शासकों के उदाहरण—राजा अशोक जैसा वीर आज तक भारत में नहीं हुआ और उस जैसी शान्ति भी किसी ने स्थापित नहीं की। राजा चन्द्रगुप्त ने चौबीस वर्ष के लगभग राज्य किया। वे मांसाहारी नहीं थे। अकबर बादशाह ने मांस खाना बिल्कुल छोड़ दिया था। उसने ५१ वर्ष तक शासन किया। उस की समता कोई मुसलमान बादशाह नहीं कर सका। वीरता के लिए साहस और वीर हृदय होना चाहिए न कि पट्ठों की दृढ़ता अथवा चर्बी और मांस की अधिकता—जो कि मांस खाने का फल है।

जापान देश में रहने वालों की मांस खाने में इतनी रुचि नहीं है जितनी कि यूरोपियन और मुसलमानों की है। किन्तु लड़ाई के लिए इनकी सेना सर्वोत्कृष्ट है। उसने सन् १९०४ में रूस जैसे महान् देश को पराजित किया था। पीछे तो अपने पड़ोसी और सहधर्मी चीन को भी, जो इस से सात गुना बड़ा है, कई बार पराजित किया। नाज़ी डाक्टरों का कहना है कि मांस और श्वेत डबलरोटी खाना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। सफलता के लिए वीर हृदय, सहनशीलता, साहस, अच्छे अस्त्र शस्त्र, युद्ध में प्रवीणता और चातुरी, दृढ़ता, ब्रह्मचर्य और सुव्यवस्था की आवश्यकता है।

वीर पुरुष अपने शस्त्रों का अपने जीवन से भी अधिक मान करते हैं

महा भारत में लिखा है कि जब पाण्डव वन को चले गये तो विदुर जी धृतराष्ट्र के व्यवहार से असन्तुष्ट हो कर पाण्डवों से वन में मिलने गए। इस समय राजा युधिष्ठिर काम्यक वन में ठहरे हुए थे। जब उन्हों ने विदुर जी को आते हुए देखा तो बहुत घबरा गये। उन्हें वह डर हुआ कि चाचा राजा धृतराष्ट्र ने अब क्यों याद किया। राज गया, पाट गया, वनों और उपवनों में फिरना और सब प्रकार के दु:ख सहना, अब यहां क्या रखा है जो कोई जूआ खेलेगा। गाण्डीव धनुष की चिन्ता हो तो उसे हम देने वाले नहीं। यही तो एक चीज़ बाकी रह गई है, जिसपर भविष्य की आशाएँ निर्भर हैं। आशय यह कि वीर पुरुष अपनी जान से अधिक अपने शस्त्रों को समझते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के उदाहरण :— हनुमान जी, जिनके नाम से सम्पूर्ण भारत में महावीर दल बने हुए हैं, मांसाहारी नहीं थे। हज़रत अली जिनकी वीरता पर मुसलमान धर्मवालों को गर्व है, मांस खाने की निन्दा करते हैं और कहते हैं कि अपने पेटों को जीवों की कब्रें न बनाओ। आधुनिक युग के महात्मा गांधी, जिन्हें 'अहिंसा के अवतार' कहा जाता है, जिन्होंने भारत वर्ष को निद्रादेवी की गोद से जगाया और इसको स्वतन्त्र कराया, महात्मा तिलक, वल्लभ भाई पटेल, पण्डित मदन मोहन मालवीय, जो वहुत योग्य और महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति हुए हैं और असंख्य लोग जो इनके अनुयायी हैं इनमें से कोई मांसाहारी नहीं। अब तो हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी मांस खाना छोड़ दिया है। ये बड़े से बड़े थोड़े महानुभावों के उदाहरण हैं। दूसरी हज़ारों लड़ाइयों में हज़ारों मांसाहारियों की विजय के उदाहरण होंगे। किन्तु ऊपर लिखे उदाहरण यह सिद्ध करने के लिये प्रस्तुत किये गये

हैं कि मांस न खाने वालों में भी ऐसे वीर पुरुष उत्पन्न हुए हैं जिनके नाम आकाश में तारागणों के समान चमकते रहेंगे और आधुनिक तथा भविष्य में होने वाले मानव को प्रकाश प्रदान करते रहेंगे। आधुनिक युग के उदाहरण समझदार मनुष्यों को शिक्षा ग्रहण करने के लिये काफ़ी से अधिक है।

★

वीरता और संकल्पशक्ति

प्रकृति ने मानव को परिश्रम करके रोटी खाने के लिये पैदा किया है, न कि हिंसक जीवों की तरह ईश्वर के बनाये हुए जीव-जन्तुओं को सताने, समाप्त करने और उनके रहने के स्थानों पर अकारण ही अपना प्रभुत्व जमाने के लिये। वीरता तो निर्बलों की रक्षा करने में है, उनको मारने में नहीं। यदि कोई बलवान् मनुष्य किसी निर्बल को मार रहा हो तो हर एक मनुष्य बलवान् को निर्बल पर हाथ न उठाने के लिये कहता है और कमजोर को बलवान् से बचाता है। दूसरे जीवों का मारना मानव के लिये किसी प्रकार भी उचित नहीं, क्योंकि जब तक समान जीवों का सामना न हो, न मानव शक्तिशाली बन सकता है और न वीर ही। मूक पशुओं को मारने में न कोई परिश्रम करना पड़ता है और न उसमें वीरता ही है। हां, वधिक के कार्यों से कायरता, निर्दयता और मूर्खता टपकती है। वीरता बिना दृढ़ संकल्प के नहीं होती और इस प्रकार व्यक्त होती है कि यदि एक मनुष्य समझता है कि जो बात या आदेश उसकी अन्तरात्मा के विपरीत है उसका विरोध करने के लिये वह अपने विश्वास पर अटल रहे। चाहे संसार इधर का उधर हो जाय किन्तु वह अपने रास्ते से, जिसको वह ठीक मानता है, विचलित न हो। वीरता, वास्तव में इसी का नाम है। ऐसा एक आदमी बहुत से विरोधियों के दांत खट्टे कर सकता है। संकल्पशक्ति मांस और

चरबी बढ़ाने और पट्ठों को दृढ़ करने से नहीं आती, अपितु अपनी आन्तरिक शक्तियों को ठीक तरीके से शक्ति-शाली बनाने से आती है और इन आन्तरिक शक्यियों को ठीक प्रकार से विकसित करने के लिये पहली सीढ़ी है—'सादा जीवन और उत्कृष्ट चिन्तन' (Simple living and high thinking), जिसका आधार सादा और शुद्ध भोजन एवं अच्छे विचार हैं।

बूँदी के राजा किशनसिंह की वीरता की एक विचित्र घटना ('प्रताप' ५-११-५६ में से)— राजा किशन सिंह को शिकार का बहुत शौक था। इसका उसे ऐसा चाव था कि जब वह सैर और शिकार के लिये जाता था तो कई लोग उसके साथ रहते थे। वह घने जंगलों में शिकार के लिये जाता था। उसे शेर के शिकार का विशेष शौक था। जितने दिन तक वह रियासत से बाहर रहता था प्रतिदिन सिंह का शिकार किया करता था और जब तक वह शेर को मार नहीं लेता था शिविर या महल में लौटकर नहीं आता था।

किशन सिह के विषय में कहा जाता है कि उसने मृगया में बहुत ही भयानक सौ शेरों को मारा था। बाकी छोटे शेरों और चीतों का तो अनुमान लगाना ही असम्भव है। उसने सैकड़ों शेरों को अपनी बरछी से मार डाला। शेर की मृगया अपने जीवन को ख़तरे में डाल कर ही की जा सकती है। यह एक बहुत भयानक प्रकार का मनोरञ्जन था।

एक बार किशनसिंह ने एक सिंह का पीछा किया और एक विशेष स्थान पर पहुंचकर उसने उससे सामना करना आरम्भ कर दिया। दोनों काफ़ी देर तक गुत्थमगुत्था होते रहे। अचानक इसी समय राजा के कुछ साथी भी आ गये। एक मन्त्री ने किशन सिंह को

सहायता करने का निश्चय किया ही था कि किशनसिंह ने ज़ोर से कहा—'खबरदार, यदि तुम में से किसी ने शेर को हानि पहुंचाई तो मैं उसे समाप्त कर दूँगा। मंत्री को उस पर बहुत क्रोध आया। उसे राजा की बात बहुत बुरी लगी, और कहने लगा, "इसमें नाराज़ होने की कौन सी बात थी। राजा साहब ! मैं ने तो इसलिये आपकी सहायता करने का निश्चय किया था कि यह दुष्ट जीव आपको हानि न पहुँचावे।" किशनसिंह शेर का मुकाबला भी कर रहा था और इन लोगों की बातों का उत्तर भी देता जा रहा था जो उसकी सहायताके लिये आये थे।

उसने मंत्री की बात सुन कर कहा—"इसमें नाराज़ होने की कोई बात नहीं है। मैं जानता हूं कि आप लोग मेरे लाभ के लिये ही शेर को मारना चाहते हैं। किन्तु मैं इस चीज़ को मानता हूँ कि एक का मुकाबिला एक ही करे। यह कहाँ का न्याय है कि एक शेर पर कई आदमी टूट पड़ें। यदि मैं इसका मुकाबिला कर रहा हूँ तो इसमें किसी को दखल देने की आवश्यकता नहीं है। यदि मैं इस मुकाबिले में मर भी गया तो लोग कहेंगे, "यह शेर था, क्योंकि शेर के समान शेर का मुकाबिला करके शेर की मौत मरा है।" "किन्तु मैं जानता हूँ कि सिंह मेरा मुकाबिला कदापि नहीं कर सकेगा। मेरी तलवार जब भी इसके पेट में घुसेगी इसे समाप्त कर देगी।" "आप अन्याय कर रहे हैं," एक मन्त्री ने कहा। किशनसिंह अब भी सिंह से मुकाबिला कर रहा था। वह अपना खूनी छुरा उस भयंकर जीव के पेट में घोंपना चाहता था। किन्तु शेर उसके हाथों को काबू में किये हुये था। मुकाविला बहुत सख्त था। किशनसिंह मंत्रियों की बातों का उत्तर भी देता जा रहा था। "हां", "अन्यान्य मन्त्री कहने लगे, "महाराज हमें आप जैसे वीर से ऐसे अन्यान्य की कदापि आशा नहीं थी।" "किन्तु मैं क्या अन्याय कर रहा हूं ?" किशनसिंह ने कहा। मन्त्री

ने कहा, "क्या यह अन्याय नहीं कि एक निःशस्त्र जीव से आप कटार लेकर मुकाबिला कर रहे हैं। आप अपनी कटार फैंक दें या उसके हाथ में भी कटार दे दें।" महाराज ने यह सुना तो अपनी कटार पृथ्वी पर फैंक दी। उन्हों ने पकड़ को ढीला किया और कटार भूमि में आकर जम गई। जिस मंत्री ने ये शब्द कहे थे उसे दूसरे मंत्रियों ने बहुत बुरा-भला कहा। किन्तु उसने कहा—"ऐसे हठी राजा के साथ ऐसा ही वर्त्ताव होना चाहिये।"

राजा के स्वामिभक्त साथियों ने कहा-"महाराज। शेर जैसे भयंकर जीव को निःशस्त्र समझना ही मूर्खता है। इसके एक एक पंजे के साथ पांच पांच कटारे हैं। यदि आप कहें तो अब भी कटार आपको दे दी जाय।" राजा ने कहा—"नहीं, कदापि नहीं, मैं फैंका हुआ शस्त्र उठाना भी अपनी पराजय समझता हूं, मैं ऐसे ही मुकाबिला करूँगा।" लड़ाई होती रही, अन्त में राजा किशनसिंह ने शेर को जबड़े से पकड़ लिया और दोनों हाथों से उसका जबड़ा चीरकर रख दिया। शेर इस प्रकार तड़फने लगा जैसे मछली पानी के बिना तड़पती है। इस अवसर पर शेर के मुंह से ऐसी गर्जना हुई की सारा वन काँप उठा। देखते ही देखते यह गर्जना सुनकर एक शेरनी दौड़ती हुई आई और उसने आते ही किशनसिंह पर आक्रमण कर दिया। फिर मुकाबिला होने लगा। शेरनी ने आते ही किशनसिंह की जाँघ तोड़कर रख दी। राजा ने बहुत प्रयत्न से शेरनी को भी जबड़े से काबू कर लिया। ज्यों ही वह उसका जवड़ा फाड़ने लगा। मंत्री ने कहा, "महाराज, आप एक बार फिर अन्याय कर रहे हैं।" "कैसा अन्याय ?" राजा ने कहा, "महाराज, स्त्रियों पर हाथ उठाना राजपूतों को शोभा नहीं देता। आप ने शेर नर को मार कर अपनी वीरता दिखाई है। अव इसकी स्त्री को मार कर आप अपनी कायरता कदापि प्रदर्शित न कीजिये।" इस समय यदि किशन सिंह

चाहता तो उसे भी शेर के पास पहुँचा देता, किन्तु मंत्री की बात का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने शेरनी को अपने कमर बन्द से कसकर बाँध दिया और उसका जीवन समाप्त न किया।

सब ने राजा किशनसिंह की प्रशंसा की। जब वह अपने राज्य में पहुँचा तो बहुत खुशियां मनाई गईं। शेरनी ने जो राजा की जांघ तोड़ी थी, बहुत प्रयत्न और दवा दारू करने पर भी ठीक न हो सकी। सब हकीमों ने बहुत प्रयत्न किए किन्तु किशन सिंह की जांघ ठीक न हुई।

राजा किशनसिंह एक तो पहले ही छोटे क़द के थे और अब जांघ टूट जाने से और भी छोटे हो गये। जब वह पैदल चलते थे तो बहुत भद्दे और कुरूप से मालूम होते थे। इस लिए राजा किशनसिंह ने घोड़े पर ही जाना आरम्भ कर दिया और जहां कहीं भी जाते, घोड़े पर चढ़ कर ही जाते, कभी पैदल नहीं चलते थे।

राजा किशनसिंह घोड़े पर सवार बहुत सुन्दर और प्रभावशाली मालूम होते थे। उन्हें घोड़े पर चढ़े देख कर बड़े बड़े वीर भी पानी-पानी हो जाते थे और जब शस्त्र उन के हाथ में होते थे तो वह पूरी सेना का सामना कर सकते थे। एक साधारण सेना की टुकड़ी तो उनका सामना करने का विचार तक नहीं कर सकती थी।

राजा किशन सिंह के जीवन की और भी बहुत सी उत्साहपूर्ण घटनाएँ हैं जो बूँदी राज्य के इतिहास में पढ़ी जा सकती हैं। मैंने उन की वीरता के कार्यों का केवल एक अंश यहां उद्धृत किया है। सत्य को जानने वाले लोग सोचें कि जहां रानी झांसी की अंग्रेजों के साथ स्वतंत्रता की लड़ाई में बहुत से अंग्रेज़ सिपाहियों में से एक ने पीछे से रानी के सिर पर आक्रमण करके उसे सख़्त घायल किया और रानी ने अपना बलिदान दे दिया, वहां राजा किशनसिंह ने

कैसे साहस का प्रमाण दिया कि एक मंत्री के कहने पर शेर के साथ बिना शस्त्र के लड़ाई की, अपने दोनों हाथों से शेर का जबड़ा चीर दिया और फिर शेरनी के अचानक आक्रमण करने पर भी अपने जीवन को ख़तरे में डालकर उसे मारने से इन्कार कर दिया। समझदार लोग दोनों बातों की तुलना करें। ऐसा कोई उदाहरण इतिहास में शायद ही मिले।

★

रानी झाँसी जिस ने अंग्रेज़ों की सेना के छक्के छुड़ा दिये

मई सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध का हाल

रानी ने नगर परकोट पर खड़े होकर झांसी पर दृष्टि दौड़ाई। चारों ओर वरबादी के भयानक दृश्य दिखाई दे रहे थे। ठीक इस समय उसने दक्षिणी दरवाज़े पर अंग्रेज़ सैनकों को बढ़ते हुए देखा। वह बिजली के समान उन पर जा टूटी। दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरे से जा भिड़ीं। तलवारें चलनी लगीं। असंख्य अंग्रेज़ मारे गए और बाकी नगर की ओर भाग गए। फिरंगियों का इस प्रकार रक्तपात होने से रानी को थोड़ी सी ढाढ़स हुई। रानी की इस वीरता को देखकर सारा नगर एक वार फिर अंग्रेजों से लड़ने को तैयार हो गया। नगर में फिर एक वार रक्त के फव्वारे फूट निकले। शस्त्र छोड़ कर हार मानने की वात तो मानो उनको ज्ञात ही नहीं थी।

कालपी की लड़ाई में भी रानी वड़ी वीरता से लड़ी। उस की तलवार जहां भी गिरी बिजली के ससान गिरी। बाईस वर्ष की यह लड़की शत्रु के लिये काल के समान थी। रानी की वीरता को देख, कमज़ोर से कमज़ोर सैनिक भी लड़ने-मरने को तैयार हो गये। कुछ देर के पश्चात् रानी ने शत्रुओं के तोपखाने पर आक्रमण किया। अंग्रेज़ तोपची तोपों को छोड़ कर भाग निकले। सर ह्य-



रानी झांसी

वेलर आक्रमण से घवरा उठा और इसी अवस्था में उसने अपने रिज़र्व (Reserve) सैनिकों को युद्ध में झोंक दिया। एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि रानी को पंद्रह मिनट और मिल जाते तो वह हमारी धज्जियां उड़ा देती। अंग्रेज़ों का साथी सिन्धिया पेशवा की सेना का मुकाबिला करने के लिए आगे वढ़ा। पेशवा ने समझा कि सिन्धिया सलामी देने के लिये आ रहा है। किन्तु रानी भांप गई कि उसकी नीयत साफ़ नहीं है। इस लिये वह अपने तीन सौ अश्वारोही सैनिकों

को ले कर आगे बढ़ी। विद्रोही सिन्धिया को देखकर रानी में सिंहनी की सी शक्ति उत्पन्न हो गई और उस ने उसे पुकार कर कहा— "रनवास में रहनेवाली एक २२ वर्षीय कन्या तुम्हें ललकार रही है, आओ, युद्ध में दो दो हाथ हो जायें।" सिन्धिया की सेना ने तांतिया को देखा तो फिर उस के साथ आ मिली। विद्रोहियों की शक्ति के आगे सिन्धिया न ठहर सका और अपने मंत्री दिनकर राव समेत ग्वालियर से भाग कर आगरा चला गया। जनरल स्मिथ जैसा वीर सैनिक रानी पर आक्रमण करता रहा। सारा दिन लड़ाई होती रही। सायंकाल को अंग्रेज़ों ने बड़ा भयंकर आक्रमण करने का निश्चय किया। उन्हों ने चारों ओर से दुर्ग पर धावा बोल दिया। सर ह्यू वेलर भी इस अवसर पर मौजूद था और रानी झांसी की सेना पर आक्रमण कर रहा था। युद्धक्षेत्र में रानी की वीरता से प्रभावित हो कर एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि रानी ने सर ह्यू वेलर का डट कर मुकाबिला किया। यद्यपि रानी की सेना की संख्या प्रतिक्षण कम होती जा रही थी फिर भी रानी सब से आगे आ कर लड़ती रही। अचानक रानी के कान में आवाज़ आई— "बाई साहिबा। मैं मर रही हूं।" उसने मुड़ कर देखा कि उसकी सहेली मुन्दर को एक अंग्रेज़ ने गोली मार दी है। क्रोध में आ कर रानी ने उसे एक ही बार से मृत्यु के घाट उतार दिया। सामने एक नाला था। थके हुये घोड़े ने छलांग मार कर नाला पार करने से इन्कार कर दिया। इस दौड़-भाग में एक अंग्रेज़ सैनिक रानी के सिर पर आ पहुंचा। किन्तु रानी ने साहस न छोड़ा। अकेली ही अंग्रेज़ सैनिकों से लड़ने लगी। एक अंग्रेज़ सैनिक ने रानी के सिर पर पिछली ओर से आक्रमण किया। रानी के सिर का कुछ दायां भाग और एक आंख उड़ गई। किन्तु फिर भी रानी ने इस सैनिक को मृत्यु के घाट उतार दिया। एक तो अकेली स्त्री पर इतने अंग्रेज़

सैनिकों का आक्रमण करना ही कायरता थी, फिर आक्रमण भी पीछे से किया गया था।

रानी झांसी और उस की सहेली की वीरता भारत के इतिहास में सदा सुनहरी अक्षरों में लिखी जाती रहेगी।

अन्त में सुप्रसिद्ध कवयित्री स्वर्गीया श्री सुभद्रा कुमारी चौहान के शब्दों में उस वीर बाला का स्मरण करते हुए हम अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं :—

'सिंहासन हिल उठे राज-वंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सब ने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।

बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

★

मांसाहारी और शाकाहारियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति की तुलना

(पण्डित यशपाल सिद्धान्तालङ्कार की पुस्तक से)

(१) डाक्टर हेग अपनी पुस्तक (Diet and Food) में लिखता है कि चौदह मांसाहारी तथा आठ शाकाहारियों में सत्तर मील चलने की दौड़ लगी। सारे शाकाहारी अपने निर्दिष्ट स्थान पर अच्छी अवस्था में पहुँच गये। पहला शाकाहारी चौदह घण्टे और पन्द्रह मिनट में पहुँच गया। इसके एक घंटा पश्चात् दूसरा मांसाहारी बहुत थका हुआ पहुँचा। शेष सब मांसाहारी पैंतीस मील ही चले और थककर बैठ गये।

(२) सन् १९०२ में ड्रेसडन से बर्लिन तक अठारह शाकाहारी और चौदह मांसाहारियों ने प्रस्थान किया। पहला शाकाहारी कार्लमैन पहले मांसाहारी के पहुँचने से सात घंटे पहले पहुँचा। दस शाकाहारी तथा तीन मांसाहारी अपने निश्चित् स्थान पर पहुँचे।

(३) सवा सौ मील की इण्टर नैशनल वाकिंग रेस (International Walking Race) में एफ़० नेवल और एच्० एच्० आइगैनो दोनों शाकाहारियों ने क्रमशः एक सौ साढ़े अठानवे और एक सौ तिरानवे मील साइकिल द्वारा बारह घंटे में पूरे किये।

(४) मिस रोजा खानमेज़ ने सन् १९०४ में लैण्ड्स एण्ड

(Lands End) से जॉन ऑफ ग्राण्ट (John of Grant) तक लंदन होते हुए साइकिल से यात्रा की। उसको आने-जाने में पन्द्रह दिन इक्कीस घण्टे बत्तीस मिनट लगे। यह रिकार्ड है कि किसी स्त्री ने इतने समय में इतनी लम्बी यात्रा नहीं की। यह लड़की शाकाहारी थी। संसार का इतिहास भी इस परिणाम पर पहुंचता है कि शाकाहारी जातियाँ मांसाहारी जातियों से सदा शक्ति-शाली होती हैं।

(५) अफ्रीका के तट पर रहनेवाली जातियां बड़ी बलवान् हैं। इनका भोजन बहुधा कई प्रकार की सब्जियां होती हैं। साथ में थोड़ा बहुत दूध भी पीते हैं। इस सारे प्रदेश में इन्हीं दो वस्तुओं पर निर्वाह किया जाता है। दुरा (Dura) दो पत्थरों से पीसा जाता है। यह बात प्रोफैसर राबर्टसन की पुस्तक से ली गई है।

(६) किसी सहायता के बिना अरब लोग हमारा सामान बंदरगाह से उठा कर ले जाते थे। इतने बड़े बोझ को इतनी दूर अकेले उठा कर ले जाते देखकर हमें बड़ा अचम्भा होता था। यह जानकर आश्चर्य होता है कि यह लोग चावल, आटा और फलों पर निर्वाह करते हैं। यह घटना 'आर्टसर ऐण्ड ऐब्राविस' नामक हैनरी क्लैकबरन की पुस्तक से लिया गया है। सन् १८६५ में बहुत थोड़े लोग फुर्ती, सहन-शीलता और वीरता में अरबों का मुकाबिला कर सकते थे। इस पर भी इनका निर्वाह दूध और खजूरों पर होता है। कई कई महीने ये दूसरी कोई वस्तु नहीं खाते।

The Food Journal 1872, Lieutenant Law (दी फूड जरनल १८७२ लैफटीनेण्ट ला)

(७) ब्राज़ील के दास बड़े शक्तिशाली और स्वस्थ होते थे। ये अधिकतर चावल, फल, और मोटे आटे की रोटी पर निर्वाह करते थे। बहुत कठिन कार्य करने से भी ये नहीं थकते थे और मीलों १४०

पौण्ड तक बोझा अनायास ही कहीं विश्राम किये बिना उठा कर ले जाते थे, इनको कभी किसी प्रकार का ज्वर और कोई दूसरा रोग नहीं होता था।

Janesco (दरा उल् बूखबीरो) के निवासी संसार में सबसे सुन्दर माने जाते हैं और वे शाकाहारी होते हैं। (Lagvaria) लैगवायरिया के श्रमिक बहुत बलवान् और स्वस्थ होते हैं। वे मांस का बिल्कुल सेवन नहीं करते। बड़ी वड़ी ऊंची चढ़ाइयों पर वे वहुत बोझा उठाकर ले जाते हैं।

(८) (Canary Island) कैनरी द्वीप। श्री जवैट कहते हैं कि कैनरी द्वीप से एक वायुयान बेरेला से भरा हुआ पोर्टलैण्ड आया। वह पास खड़ा था। उसने देखा कि जिस बोझ को चार अमरीकन भारवाहक उठाने में असमर्थ थे उसे अकेला एक आदमी स्टोर पर से जहाज़ तक उठाकर लाया था। इस बात को शपथ खाकर जहाज़ के कप्तान ने कहा कि वे लोग केवल रोटी, सब्ज़ी और फलों पर निर्वाह करते हैं।

—From Smith's Fruits and Farenacia) (स्मिथ्स फ्रूट्स एण्ड फैरीनेशिया)

(९) मध्य अफ्रीका के लोग केवल सब्ज़ियों पर ही निर्वाह करते हैं और उनमें अचम्भे में डालने वाली शारीरिक शक्ति होती है। लैंदरस कहता है कि (Genna) जेन्ना के लोगों को मांस खाना अधिक रुचिकर नहीं। वे अधिकतर भारतीय अनाज याम (Yam) पर निर्वाह करते हैं। इन जैसी शक्ति-शाली और बलवान् शायद ही कोई और जाति होगी। इनकी स्त्रियां भी इतना बोझ उठा लेती हैं जितना एक खच्चर भी न उठा सके।

—Smith's Fruits &Farenacia

(१०) मध्य चिली में तांबे की खानों में कार्य करने वाले

भारवाहक दिन में बारह बार से अधिक दो सौ पौण्ड से ऊपर बोझ एक दम उठाते हैं। वह केवल सब्जियों और फलों पर अपना निर्वाह करते हैं। प्रात.काल १६ अंजीरें और दो छोटी छोटी रोटियां ही उनका भोजन है। दोपहर को उबली हुई फलियां और सायंकाल को भुना हुआ गेहूं खाते हैं। वे कभी मांस नहीं खाते। इस पर भी वे आश्चर्यजनक कार्य करते हैं।

—Sir Francis Head (सर फ्रान्सिस हैड)

(११) चीन—सर मोहन डेविस कहते हैं कि कैंटन के सुन्दर कुली बहुत बलवान् होते हैं। इन कुलियों और भारवाहकों के मुकाबिले में और कोई अच्छी जाति नहीं है। एक बांस के सहारे दो भारवाहक जितना बोझ उठा लेते हैं उतना दूसरों के लिये उठाना कठिन है। चीनी लोग बहुधा चावल, फल और कन्फैक्शन (Confection) पर अपना निर्वाह करते हैं।

—Smith's Fruits and Farenacia

(१२) **साइप्रस ट्रोडीटस्सा** (Cyprus Troditussa) के संन्यासी फलों और जौ के आटे पर अपना निर्वाह करते हैं। वे कभी मांस नहीं खाते। मौनेस्ट्री का कुलपति ७० वर्ष की आयु का था, किन्तु वह युवकों के समान स्वस्थ और बलवान् था।

—Sir Samual Bakers Cyprus 1879

सर सेम्युअल बेकर्स साइप्रस १८०९

साइप्रस के लोग वर्ष का तीसरा भाग व्रत में ही बिता देते हैं। रोटी और सब्ज़ी ही खाते हैं। दूध और किसी प्रकार के तेल का भी सेवन नहीं करते। मछली और मांस का तो वे बहुत थोड़ा प्रयोग करते हैं। यहां के लोग स्वस्थ तथा प्रसन्नचित्त मालूम होते हैं।

—The Standard (दी स्टैण्डर्ड)

(१३) **मिश्र**—Edvin Deleon (एडविन डीलियन) अपनी पुस्तक में लिखता है कि मिश्र के लोगों का भोजन बड़ा सादा है। वे रोटी और सब्ज़ियां खाने के लिये और नील नदी का पानी पीने के लिये प्रयोग करते हैं। 'तेराजैट' पुस्तक में लिखा है कि मिश्र के ग्रामीण इतना सादा भोजन करते हुए भी बहुत स्वस्थ होते हैं और कठिन से कठिन काम कर सकते हैं। 'फ्रूट्स और फरनेसिया' में लिखा है कि इसको देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि मिश्र के किसानों का भोजन कितना सादा है, फिर भी वे कितने स्वस्थ्य होते हैं और बहुत परिश्रम का कार्य कर सकते हैं। नील के नाविक बहुधा बलवान् होते हैं। उनका भोजन मोटे आटे का होता है। साथ में खजूर आदि कुछ फल होते हैं।

—Smith's Fruits and Fernacia.

(१४) **इंग्लैंड**—पहले इस देश के लोगों के भोजन में मांस मदिरा का प्रयोग नहीं होता था। हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि यहां के भारवाहकों में जो शक्ति पाई जाती है वह इनके पूर्वजों के सादा भोजन का शुभ परिणाम है, जो विना मांस के होता था। अब कई वर्षों से यहां के भारवाहकों ने मांस खाना आरम्भ किया है और उस समय से इनकी शक्ति घट गई है। इनके बच्चों की शक्ति तथा स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन कम हो रहे हैं।

—King's Ford (किंग्स फोर्ड)

(१५) **पुराना ब्रिटेन** (Old Britain)—यहां के लोग फुर्तीले, बलवान् और हृष्ट-पुष्ट थे। शारीरक व्यायाम, और मल्लयुद्ध आदि में वे सबसे बढ़-चढ़ कर थे। कई प्रकार की विपत्तियों को सहने की विचित्र प्रकार की शक्ति रखते थे। थकावट और सर्दी गर्मी को सहन करने की भी आश्चर्यजनक शक्ति रखते थे। वे १२०

वर्ष की आयु में वृद्ध होने लगते थे (Henry हैनरी) प्लोटार्क लिखता है कि उन का भोजन अन्न था।

—Gold Smith (गोल्डस्मिथ)

(१६) **फ्रांस के नगर मेन**—(Maine) के निवासियों ने मुझे बताया कि पहले के मज़दूर आज कल के मज़दूरों से अधिक स्वस्थ थे। इस का कारण यह था कि अधुनिक मज़दूरों ने सादा भोजन छोड़ कर मांस और मदिरा का सेवन आरम्भ कर दिया है।

—King's Ford (किंग्स फोर्ड)

(१७) **पुरानी ग्रीस** (यूनान) के लोग बहुधा फलों और सब्ज़ियों पर निर्वाह करते थे। Prophery Platonie Philosopher of the 3rd Century) प्रोफेरी प्लेटोनी, जो तीसरी शताब्दी का दार्शनिक था, लिखता है कि जब से ग्रीस के पहलवानों में मांस खाने की प्रथा आरम्भ हुई है तब से इनकी शारीरिक शक्ति भी घटनी शुरू हो गई है (Rolnis Ancient History रोलनिस ऐनशेंटन्ठ हिस्ट्री डायगनीज़ का कथन है कि जब से ग्रीस के पहलवानों ने मांस खाना आरम्भ किया तब से वे मन्द-बुद्धि और मुर्ख हो गई।

—E. W. Forward

(१८) **आधुनिक ग्रीस**—ग्रीस के नाविक कट्टर संयमी होते हैं। वे संसार की सब जातियों से अधिक सुन्दर, स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट होते हैं। उन के खाने में मोटे आटे की रोटी, अंगूर, किशमिश या अंजीरें होती हैं। वहां के जहाज़ों पर कार्य करने वाले मज़दूर भी इतने बलवान् प्रसन्नचित्त और फुर्तीले होते हैं। मेरा अनुमान है कि इंग्लैण्ड का एक धनी मनुष्य एक दिन में उतना भोजन खा जाता है जितना छः युनानियों का एक परिवार।

—Judge Woodrupps (जज वूड्रफ्स)

(१९) **आयरलैण्ड के** मज़दूर बहुत बलवान् होते हैं और वे अधिकतर आलूओं पर निर्वाह करते हैं (Smith's Wealth of Nations (स्मिथ्स वेल्थ आफ नेशन्स) । श्री स्मिथ कहते हैं कि मैंने आयरलैण्ड से बढ़कर बलवान् मनुष्य संसार में और कहीं नहीं देखे । उन्हों ने मांस कभी चखा भी नहीं है । (रैवरैण्ड हावर्ड मैल्कम ऑफ बोस्टन Revd. Howard Malcum of Boston)

(२०) **इटली**—यहां के कृषक बहुत हृष्ट-पुष्ट होते हैं । वे केवल रोटी और चैनेट के आटे और आटे की रोटी पर ही निर्वाह करते हैं ।

—Private Letters from Lucca (प्राइवेट लेटर्स फ्राम ल्यूका)

(२१) **जापान**—जापानी न केवल मांस से दूर रहते हैं अपितु दूध और उससे बनी हुई वस्तुओं का भी प्रयोग नहीं करते । इनका सबसे बड़ा भोजन चावल, दाल, फल और कन्द-मूल है । किन्तु ये चावल अधिक खाते हैं । —Modern Universal History (मोडर्न यूनिवर्सल हिस्ट्री) । चावलों की रोटी सब जापानियों का भोजन है । जापानी बुद्धिमान्, फुर्तीले और अपने काम में निपुण होते हैं । स्मिथ (Smith) के अनुसार, जापान के पैदल सिपाही संसार के दूसरे देशों के सैनिकों की अपेक्षा अधिक बोझ उठाकर अधिक दूरी तक जा सकते हैं । ६० पौण्ड तक का सामान साथ लेकर जापानी सैनिक बड़ी तीव्र गति से चल सकते हैं । (Colonel Murrey in Imperial Outposts कर्नल मरे इन इम्पीरियल आऊट-पोस्ट्स) । जापानियों और इनके सैनिकों का भोजन बड़ा सादा होता है । चावल इनका सबसे बड़ा भोजन है (War Correspondant of the Daily Chronicle वार कॉरेस्पौण्डेंण्ट आफ दी डेली क्रॉनिकल)

(२२) **नॉर्वे**—यहां के निवासियों का सब से बड़ा भोजन राई ब्रेड (Rye Bread), दूध और पनीर है। मांस बहुत थोड़ा खाया जाता है। नॉर्वे के लोगों की आयु बहुत अधिक होती है। (Dr. Capell Brooke डाक्टर कैपेल ब्रुक)

नॉर्वे के बहुत से भागों में मांस बिल्कुल नहीं खाया जाता, तो भी वे अधिकतर लम्बे और सुन्दर होते हैं। बहुधा पहाड़ों पर चढ़ने से उनको इस बात का अभ्यास हो जाता है कि वे दस बारहमील तक घोड़े गाड़ी के साथ दौड़ सकते हैं।

—(टिवनिंग Twining)

(२३) **फिलस्तीन**—यहां के लोग मांस नहीं खाते, किन्तु तेल में डूबी हुई रोटी, चावल, अगूर और दूसरे फल खाते हैं। इस खाने के कारण उनके दांत सफेद और शरीर बलवान् होते हैं।

—C. R. Conder R. F. Tentwork in Palestine 1878 (सी० आर० कौण्डर, आर० एफ० टेण्टवर्क इन पैलेस्टाइन १८७८)

(२४) **पोलेन्ड और हंगरी** के किसान ओटमील (Oat Meal) ब्रैण्ड और धातुओं पर निर्वाह करते हैं और बड़े बलवान् होते हैं।

—Smith's Fruits and Farnescia स्मिथ्स फूट्स एन्ड—फरनेशिया)

(२५) **रोम**—जब से रोम के सैनिकों के भोजन में मांस सम्मिलित हुआ तब से रोम की शक्ति घटनी प्रारम्भ हो गई। जब से इन्हों ने भोजन की सादगी को छोड़ा तब से इनकी वीरता और शक्ति भी कम हो गई।

—**Graham Lectures ग्राहम लेक्चर्स**

रोमन ग्लैडियेटर (तलवार चलाने वाले) का सबसे बड़ा

भोजन जौ की रोटी और तेल था। हिप्पोक्रेटस का कथन है कि पट्ठों की दृढ़ता और सहन-शक्ति बढ़ाने के लिये यह सदा लाभकारी है।

—King's Ford (किंग्स फोर्ड)

(२६) एशिया के लोग बहुधा मोटे काले राई ब्रेड (Rye Bread) और लहसुन पर निर्वाह करते हैं। मैंने कई बार इन्हें काम के लिये कहा। ये प्रातःकाल आध सेर के लगभग रोटी और एक बड़ी लहसुन खाकर काम करने आ जाते थे और इतने भोजन के सहारे सोलह या अठारह घण्टे तक काम कर सकते थे। ८०, ६० वर्ष के कई मज़दूर इतना काम करते थे कि मेरे जहाज़ पर लगे हुए कई युवक भी इतना कार्य नहीं कर सकते थे .... (Capt C. S. Houl-and of New Bedford कैप्टन सी० एस० हौलैंड ऑफ न्यू बेड फोर्ड)

(२७) **स्पेन**—स्पेन के मुसलमान मज़दूरों के काम देख कर मैं चकित रह जाता था। उनका आहार रोटी और अंगूर था।

—(Capt. C. F. Chase कैप्टन सी. एफ. चेज़)।

(२८) **टर्की**—कुस्तुनतुनिया के नाविक और कहार संसार की सब जातियों के लोगों से शारीरिक शक्ति में बढ़े हुये होते हैं। वे पानी पर निर्वाह करते हैं और कभी कभी थोड़ी शराब भी पी लेते हैं। वे अधिकतर रोटी और वहाँ पर उत्पन्न होने वाले खजूर, अंगूर आदि फलों पर अपना निर्वाह करते हैं। कभी कभी मछली भी खा लेते हैं।

—Sir William Fair Bairn's Report on Sanitary Conditions (सर विलयम फेयर बेयरर्न की सैनिटरी कन्डीशन्स पर रिपोर्ट)

इसके अतिरिक्त भारत वर्ष के प्राचीन ऋषि, पाइथागोरस, प्लैटो, अरस्तू, सुकरात, प्लूटार्क, सैंका, वजोरुस्टर, न्यूटन, गोल्डस्मिथ,

वाल्टेयर, स्वीडनवर्ग आदि सभी महापुरुष शाकाहारी थे। लार्ड हैल्थफील्ड जिसने जिब्राल्टर के दुर्ग की रक्षा अपने धैर्य और बुद्धिमत्ता से की थी मांस और मदिरा का तनिक भी सेवन नहीं करता था। उसका साधारण भोजन रोटी और सब्ज़ी था। आधुनिक युग का बर्नार्ड शा भी मांस नहीं खाता था।

श्री जैटसन जोकि अंग्रेज़ों की सेना में प्रसिद्ध सर्जन थे, अपने विषय में लिखते हैं :—

"मेरे स्वास्थ्य की सब प्रकार से, सब ऋतुओं में और सब देशों में परीक्षा की गई। मैं ने संयम और कड़ा परिश्रम करके दो युद्ध बड़ी सफलता से लड़े। अभी प्रायः एक और युद्ध भी कर सकता हूं। मैं जीवों का मांस नहीं खाता, मदिरा नहीं पीता, न कोई नशीली वस्तु प्रयोग में लाता हूं और न किसी प्रकार का मसाला। में फ़लालैन नहीं पहनता। मैं वायु, वर्षा, गर्मी, सर्दी की कोई परवाह नहीं करता। वह जीवन नष्ट न करो जो तुम दे नहीं सकते। सब जीवों को जीवित रहने का समान अधिकार है।"

आना किंग़्फोर्ड लिखती है 'कि फ्रांस के एक निवासी ने मुझे बताया कि उसके दादा के समय के किसान आधुनिक किसानों से अधिक स्वस्थ और बलवान् थे, क्योंकि आधुनिक किसानों ने सादा भोजन छोड़ कर मांसभक्षण और मदिरा का प्रयोग आरम्भ कर दिया है।''

(२९) एलेग्ज़ैण्डर वौन हम्बोल्ट (Alexander Von Humbolt) का कथन है कि भूमि का एक टुकड़ा जिसमें एक शिकारी का पालन पोषण होता है दस किसानों और सौ शाकाहारियों के लिये पर्याप्त है। फ्रांसिस न्युमेन प्रोफ़ेसर युनिवर्सिटी कालेज लंदन लिखते हैं कि सौ एकड़ भूमि, जिस पर पाली हुई भेड़ों के मांस से ४२ मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है यदि डेरी फार्म के काम लाई

जाएं तो उस से २५० मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है और यदि उस पर आलू की खेती की जाय तो उसी से ६४३ मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है। यदि इंग्लिश द्वीप समूह में साढ़े तीन करोड़ एकड़ भूमि में केवल दो करोड़ एकड़, जो पशु चराने के लिये प्रयोग में लाई जाती है, अन्न उत्पादन करने के काम में लाई जाय तो चार करोड़ मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है। यदि ये लोग शाकाहारी हों तो पर्याप्त भोजन उत्पन्न कर सकते हैं।

क्या मांस मानव का प्राकृतिक भोजन है ?– यद्यपि आधुनिक युग में सब देशों और सब धर्मों के लोगों में मांस खाने की प्रथा साधारणतया पाई जाती है; किन्तु हिन्दू और बौद्ध धर्म के अनुयायी, जो संसार की जन-संख्या में लगभग आधे हैं, सिद्धान्त रूप में मांस खाना महापाप मानते हैं।

पहले तो वेद भगवान्, जो संसार के पुस्तकालयों की सबसे प्राचीन पुस्तक मानी जा चुकी है, मांस खाने की आज्ञा नहीं देता। इतना ही नहीं किसी को किसी प्रकार का भी कष्ट न देना, सब से बड़ा धर्म बतलाता है :—

(यजुर्वेद, अ० १३, मंत्र ५१; अथर्ववेद काण्ड ९८ राग ६ मंत्र १३; तथा मनुस्मृति अध्याय ५, श्लोक ५३ से ५५)

इन में किसी सृष्टि के जीव को मारना तो एक ओर, रहा शारीरिक अथवा मानसिक दु:ख देने को भी पाप बताया गया है। किसी को न मारना और दु:ख न पहुँचाना सब से बड़ा धर्म बताया गया है। इसके पश्चात् बुद्ध भगवान् ने भी ऊपर लिखे सिद्धान्तों को लेकर बौद्ध धर्म की स्थापना की, जिस के अनुयायियों की संख्या आज भी संसार की जन-संख्या का तीसरा भाग है। स्वामी शंकराचार्य, भक्त कबीर दास जी और गुरु बाबा नानक देव जी और उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े विद्वान् स्वामी दयानन्द-

सरस्वती आदि महापुरुषों ने भी मांस खाने का निषेध किया है। अब हमको यह मालूम करना है कि मानव का प्राकृतिक आहार क्या है ?

जीवों का आहार—खुले और स्वतन्त्र जीव जिन को अभी तक मानव के सम्पर्क में रहने का अवसर नहीं मिला, साधारणतया स्वस्थ होते हैं। जैसे वायु में उड़ने वाले पक्षी, नदियों के कछुवे और जंगल में चरने वाले जीव—ये सब समान रूप से स्वस्थ रहते हैं। और ये सभी अपनी निश्चित आयु तक जीवित रहते हैं। यदि अकस्मात् होने वाली घटनाओं का कुछ विचार न किया जाय तो इन को अपने ढंग की पूर्ण स्वस्थता के नमूने समझना चाहिए। इसके विपरीत मानव में अपनी निश्चित आयु तक जीवित रहने वाले पूर्णतया स्वस्थ मनुष्य बहुत कम देखने में आते हैं। मनुष्य और उसके पालतू जीव ऐसी रुग्ण अवस्था में क्यों पाये जाते हैं ? क्या वास्तव में मनुष्य का शरीर इतना कमज़ोर और इतनी बीमारियों का घर बनने के लिये ही बना है ? और क्या प्रकृति ने जंगली जीवों के शरीर में कोई ऐसी विशेषता रखी है कि उनको मनुष्यों के समान रोग लग ही नहीं सकते ! नहीं, कदापि नहीं।

ऐसा अन्तर क्यों ? यह अन्तर केवल हमारे भोजन और रहने-सहने के तरीके से पड़ गया। वनों के स्वतन्त्र जीव अपने आहार में कोई अप्राकृतिक या कृत्रिम वस्तुओं की मिलावट नहीं करते। वे सदा अपने दाने पानी में जो प्रकृति ने उनके लिए नियत कर रखा है, प्रसन्न रहते हैं। उनका अपना सादा भोजन उनके लिये वर्षों के लिये काफ़ी है।

यदि संयोगवश इन जीवों को कहीं अपना प्राकृतिक आहार नहीं मिलता तो ये उस जगह को छोड़ देते हैं और ऐसा स्थान ढूँढ़ लेते हैं जहां इन्हें अपनी प्रकृति के अनुसार भोजन मिल सके।

वे रोगों को जानते ही नहीं, केवल एक निरन्तर प्रसन्न और स्वस्थ जीवन को जानते हैं।

मानव का स्वाभाविक आहार में असन्तोष—मानव, विशेषतया सभ्य मनुष्य अपने स्वाभाविक आहार पर बहुत कम सन्तोष करते हैं। वे अपने प्राकृतिक भोजन को गर्व से सदा अच्छा बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं और उसमें बहुत सी अनुपयोगी वस्तुओं को सम्मिलित करते जाते हैं। मानव अपना सादा भोजन वनाने के सादा तरीकों को भी छोड़ता जाता है, जिससे भोजन के बहुत से लाभकारी तत्त्व प्रायः नष्ट हो जाते हैं। यही नहीं, वह उल्टा हानिकारक बन जाता है। भोजन का बहुत सा भाग ऐसा बन जाता है जिसे पचाने में हम असमर्थ हो जाते हैं। आजकल मानव कई बार यह बिल्कुल भूल जाता है कि उसका स्वाभाविक आहार क्या है। लगातार बहुत समय से अस्वाभाविक भोजन करते रहने के कारण उसकी ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह अपने स्वाभाविक भोजन को भय और संशय से देखने लगता है। वह प्राकृतिक अवस्था में पके हुए और हर प्रकार से स्वादु तथा स्वास्थ्य प्रदान करने वाले अनाज, फल एवं मेवों को भी निम्न कोटि का आहार बताने का दुःसाहस कर बैठता है।

वे भोजन, जो आज-कल बड़े गर्व के साथ 'पूर्ण आहार' के नाम से स्मरण किये जाते हैं, बहुधा गली-सड़ी नीरस वस्तुओं से मिल कर बने होते हैं। जो न केवल हमारे शरीर में थकावट आदि के कारण होने वाली कमी को पूरा करने में असमर्थ हैं, अपितु हमारे शरीर में बहुत से ऐसे पदार्थ भर देते हैं जो किसी न किसी बड़े रोग या आकस्मिक मृत्यु का कारण बन जाते हैं। प्रकृति का अध्ययन करने से पता चलता है कि सब जीव चार प्रकार से भोजन सेवन करते हैं :—

चार प्रकार के जीव

(१) फलाहारी जीव—जो फल, मूल एवं अनाज खाते हैं; जैसे बन्दर, गोरिल्ला आदि।

(२) बनस्पति खाने वाले जीव—जो घास-फ़ूस आदि बनस्पति खाते हैं, जैसे गाय, भैंस एवं घोड़ा आदि।

(३) मांस खाने वाले जीव—जो केवल मांस खाते हैं, जैसे-शेर, भेड़िया आदि।

(४) दोनों प्रकार का मिला-जुला भोजन खाने वाले जीव जैसे कुत्ता, बिल्ली आदि।

अब इस बात की खोज करने के लिये कि मनुष्य इनमें से किस जाति से सम्बन्ध रखता है, हमें यह देखना चाहिए कि मनुष्य की शारीरिक व्यवस्था किन जीवों से मिलती जुलती है और किन से नहीं मिलती। हर एक प्रकार के जानवरों के शारीरिक संगठन के विषय में कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं।

फलाहारी जीव—

(१) दांत चपटे, एक दूसरे से मिले हुए और जाड़ें पिसाई का कार्य करने के योग्य।

(२) जबड़ें छोटे, तीनों ओर हिल सकने वाले अर्थात् ऊपर, नीचे और इधर उधर हिलने वाले।

(३) पानी पीने का तरीका—घूँट भर कर।

(४) शरीर के भाग—हाथ पैर में गोल नखों वाली अंगुलियों।

(५) अंतड़ियों की लम्बाई—शरीर की लम्बाई से बारह गुणी।

बनस्पति खानेवाले जीव--

(१)दांत चपटे, मिले हुए किन्तु थोड़ी थोड़ी दूरी पर लगे हुए। जबड़े पिसाई-कुटाई का कार्य करने के अयोग्य।

(२) जबड़े लम्बे तथा ऊपर, नीचे और इधर-उधर तीन ओर हिल सकने वाले।

(३) पानी पीने की विधि—घूँट भर कर।

(४) शरीर के भाग—गोल नखदार खुर।

(५) अंतड़ियों की लम्बाई—अपने शरीर की लम्बाई से तीस गुना।

मांस खाने वाले जीव—इनके दांत लम्बे, नोकवाले, थोड़ी थोड़ी दूरी पर, दाढ़ें आरे के समान चीरने वाली और जबड़े लम्बे तथा एक ओर (आगे को कैंची के समान) हिलने वाले होते हैं। ये पानी लप-लप करके पीते हैं। इनके हाथ पांव लम्बे, पंजे नोकदार नखों वाले और अंतड़ियां अपने शरीर की लम्बाई से तीन गुनी।

आगे केवल दो प्रकार के जीवों की तुलना की जायगी।

फलाहारी जीव—इनका पक्वाशय (मेदा) चार खाने वाला और बहुत हल्के भोजन को धीरे धीरे पचाने के योग्य होता है। यकृत अपने शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। मुख में लार की थैलियां होती हैं। लार बहुत रस-दार और जिह्वा स्वच्छ होती है। इनकी छाती पर बच्चों को दूध पिलाने वाले स्तन होते हैं और ये केवल आगे को देखते हैं। इनको पसीना आता है।

मांसाहारी जीव—इनका पक्वाशय (मेदा) बहुत सादा और बहुत तेज़ भोजन को शीघ्रता से पचाने के लिये होता है। यकृत अपने शरीर के अनुपात से बहुत बड़ा होता है, इसमें पित्त भी बहुत अधिक होता है। इनके मुख में थूक की थैलियां होती हैं। इनका थूक रस दार और जिह्वा स्वच्छ होती है। इनके बच्चों को दूध पिलाने के थन पेट पर होते हैं। ये सामने और इधर उधर भी देख सकते हैं। इन्हें पसीना नहीं आता।

ऊपर लिखी बातों से यह प्रत्यक्ष विदित हो जाता है कि मनुष्य मांसाहारी जीवों से किसी बात में नहीं मिलता, और न यह हर प्रकार का आहार करने वालों से मिलता है। किन्तु जब हम फलाहारी जानवरों के दांतों की संख्या, आकृति और व्यवस्था तथा इनके जबड़े आदि से तुलना करते हैं तो उन में और मनुष्यों के दांतों की बनावट में बहुत समानता पाई जाती है। इस लिये मनुष्य हर प्रकार से फलाहारी सिद्ध होता है, किन्तु बहुत अवस्थाओं में इसने ग़लती में पड़ कर बहुत सी स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली आदतें डाल ली हैं, जिनको दूर करने के लिये शिक्षा के अतिरिक्त सन्तोष और सहन-शक्ति की आवश्यकता है। जिस प्रकार अफ़ीम भांग, चरस, हुक्का आदि मादक वस्तुओं के लगातार प्रयोग से एक आदत पड़ जाती है, जो एक दम नहीं छूट सकती, उसी प्रकार विपरीत आहार अर्थात् मांस आदि के बहुत देर तक प्रयोग में लाने से जो आदत पड़ गई है उसको यदि हम एक दम छोड़ नहीं सकते तो धीरे धीरे छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि किसी प्रकार की बुरी आदत से स्वास्थ्य को अन्त में हानि ही पहुँचती है। अधिक जानकारी के लिये इंगलैण्ड की 'गुड हैल्थ लीग' आदि सोसाइटियों के कार्यकर्त्ता अंग्रेज़ डाक्टरों की पुस्तकों का अध्ययन कीजिये।

मनुष्य की शारीरिक बनावट—एक शताब्दी पहले साधारणतया यह अनुमान किया गया था कि मनुष्य और अन्य पशुओं के शरीरों की बनावट में किसी प्रकार की समानता नहीं है किन्तु १८०३ में क्युवर नामक एक फ्रैञ्च डाक्टर ने सबसे पहले अपना यह विचार प्रकट किया कि इस जीते-जागते संसार में मनुष्य दूसरे जीवों से अलग नहीं है। अपितु जिस प्रकार पशुओं में बहुत से प्रकार के जीव हैं उसी प्रकार मनुष्य भी एक प्रकार का पशु है। क्युवर के इस विचार की पुष्टि में कई पुस्तकें लिखी गईं। अन्त में १८६५ में श्री डारबिन और प्रोफेसर हक्सले ने बड़ी बुद्धिमत्ता से भली प्रकार यह सिद्ध कर दिया कि मानव भी रीढ़ की हड्डी वाले पशुओं में से एक है।

केवल यही नहीं अपितु माइक्रो-स्कोप ने जीवों के शरीर के छोटे छोटे अणुओं की जांच से यहां तक सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक जीव के अणु एक ही प्रकार की बनावट के होते हैं। बढ़िया प्रकार के जीव चार प्रकार के हैं :—

(१) दूध पीने वाले जानवर।
(२) पक्षी।
(३) जल और स्थल दोनों स्थानों में रहने वाले जीव।
(४) मछलियां।

घटिया प्रकार के जीवों में वह सब जानवर सम्मिलित हैं, जिनके रीढ़ की हड्डी नहीं होती, जैसे—चींटी, कीड़े, मकोड़े आदि।

बढ़िया प्रकार के जीवों में से मनुष्य भी एक है। उनकी शारीरिक बनावट एक दूसरे से मिलती जुलती है। सब के भीतरी भाग में हड्डियां और पसलियां एक ही जैसी होती हैं। इनका पिंजर भी एक ही प्रकार का है, जिसमें रीढ़ की हड्डी और खोपड़ी वास्तविक वस्तु है। मछली से लेकर बढ़िया प्रकार के जानवरों तक

में मस्तिष्क और रीढ़ की ही को हड्डी केन्द्र समझा जाता है। इनके मस्तिष्क की ऊँचाई निचाई में चाहे अन्तर हो किन्तु आन्तरिक बनावट में कोई अन्तर नहीं होता। इसी प्रकार इनके केवल पिंजर और दूसरे भागों में ही समानता दिखाई नहीं देती अपितु प्रत्येक भीतरी और बाहरी भागों में समानता दिखाई देती है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि मनुष्य भी रीढ़ की हड्डी वाले दूसरे जानवरों के समान है।

क्या मानव चौपाया है ?—पक्षी और मनुष्य इन दोनों के पैर होते हैं। बढ़िया प्रकार के सब प्रकार के जानवरों में पैरों की बनावट एक सी है। जिनमें कुछ विशेष हड्डियां होती हैं। पक्षियों की भुजाओं की हड्डियां मनुष्य की भुजाओं से मिलती जुलती हैं। अथवा यों कहना चाहिये कि इन सब की बनावट में तनिक भी अन्तर नहीं है। जब तक लोग मनुष्य को दूसरे जीवों से पृथक् समझते रहे उस समय तक वे दूसरे जानवरों को चौपाया अथवा चौहत्था कहते थे। पुराने विचार के मनुष्य आज-कल भी बन्दर को चौहत्था समझते हैं। प्रोफैसर हैकल का कथन है कि यदि हम सब बढ़िया प्रकार से जानवरों के पैरों की हड्डियों की तुलना करने लग जावें तो सिद्ध होगा कि सब हड्डियों की बनावट में एक बाल बराबर भी अन्तर नहीं है। एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि पांच अँगुलियां जो जानवरों में कई पीढ़ियों से चली आ रही हैं, मनुष्य में भी आज तक मौजूद हैं। केवल हड्डियाँ ही नहीं, अपितु जोड़, पट्ठे और इस प्रकार की दूसरी चीज़ें जो चौपाये जानवरों में पाई जाती हैं, मनुष्य में भी मौजद हैं। इन युक्तियों से यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है कि मनुष्य भी चौपाया है। इस पर व्योरेवार विचार करना यहां असम्भव होगा, क्योंकि इसके लिये तो एक पृथक् ग्रन्थ की आवश्यकता होगी। किन्तु जो महानुभाव इस सिद्धान्त के विषय

में अधिक जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हों वे उन पुस्तकों का अध्ययन करें जिन में इस सिद्धान्त पर तर्क किया गया है।

बढ़िया प्रकार के जानवरों में मनुष्य की गिनती दूध पीने वाले जीवों में हो सकती है। मानव ने यह विधि जानवरों से सीखी है। मनुष्य और इन जानवरों के बाहरी तथा भीतरी अंगों में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। बाहरी अन्तर यह है कि इनके शरीर पर बाल होते हैं और इनकी त्वचा में दो प्रकार की गिल्टियां होती हैं जिनमें से एक से पसीना बनता है और दूसरी को 'सिबेसियस ग्लैण्डस (Sebaceous Glands)' कहते हैं। इन से मोम-जैसी चिकनाई उत्पन्न होती है। जिन जानवरों में यह दूसरी प्रकार की गिल्टियां पाई जाती हैं उनके पेट की त्वचा में एक विशेष परिवर्तन होता है। हमारा आशय स्तनों से है। जिन से यह प्राणी अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। इसी से इनकी गणना दूध पिलानेवाले जीवों में होती है। स्तनों की बनावट छोटी छोटी गिल्टियों से होती है और ऊपर चमड़े की एक थैली चढ़ी रहती है। अन्दर के अंगों में यह अन्तर है कि इनकी छाती और पेट के बीच में एक पर्दा होता है जो फेफड़ों को यकृत पक्वाशय, मूत्राशय आदि से पृथक् करता है। यह अन्तर केवल मनुष्यों में ही नहीं, अपितु सब दूध पीने वाले प्राणियों में पाया जाता है।

अब हम यदि मांसाहारी और शाकाहारी जीवों के स्वभावों की तुलना करें तो स्पष्ट जान सकते हैं कि मनुष्य उन दोनों में से किस कोटि के जीवों में गिना जा सकता है। आगे इस प्रकार की तुलना की जाती है :—

शाकाहारी जीव और उनके गुण	मांसा हारी जीव और उनके गुण
(१) दांत चपटे और मिले हुए जोकि पिसाई करने और कुतरने के योग्य होते हैं।	(१) दांत लम्बे और नोकीले अलग अलग आरे के समान जो चीरने फाड़ने के ही काम आ सकते हैं।
(२) जबड़े छोटे और ऊपर-नीचे हिलने वाले।	(२) चार मसूढ़े-दो ऊपर और दो नीचे। ऊपर और नीचे के लम्बे लम्बे मसूड़े के बीच में छः छः मोटे दांत विशेषतया ग्रास भरने और फाड़ने के योग्य। मसूड़ों के पीछे अन्दर की ओर चीरने वाली दाढ़ें।
(३) पानी घूँट भर कर पीते हैं	(३) पानी चाट कर लप लप करके पीते हैं
(४) हाथों और पैरों में गोल नाखून वाली अंगुलियां होती है।	(४) शरीर के ये भाग लम्बे और पंजे नोकीले नाखूनों वाले होते हैं।
(५) रात को विश्राम करना और दिन को जागना।	(५) रात को जागना और दिन में छिप रहना।
(६) तेज़ी और बेचैनी का न होना।	(६) तेज़ी और बेचैनी का होना।
(७) अपना भोजन चबा-चबा कर खाते हैं।	(७) अपना भोजन बिना चबाये निगल जाते हैं।
(८) दयाभाव और दूसरों पर कृपा करना।	(८) दूसरों को सताना और मार कर खाना।

(९) संतोष, सहनशीलता और परिश्रम से कार्य करना। जैसे घोड़ा, ऊँट, हाथी आदि बहुत अच्छा काम करते हैं।	(९) अधिक परिश्रम के समय थकावट शीघ्र और अधिक अनुभव होती है।
(१०) मनुष्य दिन में कई वार खाता है। घास और सब्ज़ी खाने वाले प्राणी दिन भर चरते, चुगते और जुगाली करते रहते हैं।	(१०) मांसाहारी एक बार पेट भरकर खा लेते हैं, फिर सात सात दिन अथवा इससे भी अधिक समय तक कुछ नहीं खाते।
(११) अनाज और सब्ज़ी खाने वालों को पसीना आता है।	(११) मांसाहारी प्राणियों को पसीना नहीं आता।
(१२) अनाज और घास खाने वालों के चलने से आहट होती है।	(१२) मांसाहारी जीवों के चलने से आहट नहीं होती।
(१३) अनाज और घास खाने वालों को रात को अंधेरे में दिखाई नहीं देता।	(१३) मांसाहारी प्राणियों को रात के अंधेरे में दिखाई देता है।
(१४) फलाहारी जीवों की अंतड़ियों की लम्बाई अपने शरीर की लम्बाई से बारह गुनी तथा वनस्पति (घास फूँस) खाने वाले प्राणियों की अंतड़ियों की लम्बाई अपने शरीर से तीस गुनी तक होती है।	(१४) अंतड़ियों की लम्बाई अपने शरीर की लम्बाई से केवल तीन गुनी होती है।

(१५) पक्वाशय (मेदा) चार खानों वाला, जिसमें बहुत हल्की खुराक को धीरे धीरे पचाने के गुण हैं। जिगर अपने शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा और मुंह में बहुत छोटी थूक की थैलियाँ, थूक बहुत रसदार, जिह्वा स्वच्छ, बच्चे को दूध पिलाने वाले स्तन छाती पर। यह प्राणी साधारणतया आगे को देखते हैं और बिना गरदन मोड़े इधर उधर नहीं देख सकते।	(१५) मेदा बहुत सादा जो बहुत तेज़ भोजन को बड़ी शीघ्र पचाने के योग्य होता है। जिगर अपने शरीर के अनुपात से बहुत बड़ा और इसमें पित्त बहुत अधिक होता है। मुंह में थूक की थैलियां बहुत छोटी, स्वच्छ जिह्वा, बच्चे को दूध पिलाने के स्तन पेट में। देखना आगे को और सब ओर।
(१६) दौड़ने से भी नहीं हांपते।	(१६) चलने फिरने में जल्दी हांपते हैं।
(१७) अन्न और हरियाली खाने वालों के घाव बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं और मांसाहारियों की अपेक्षा घाव से कम मरते हैं।	(१७) मांसाहारियों के घाव देरी में अच्छे होते हैं और ये अन्न खाने वालों की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में घाव से मरते हैं।
(१८) अन्न और हरियाली खाने वालों के वीर्य में साधारणतया अधिक दुर्गन्ध नहीं होती।	(१८) मांसाहारियों के वीर्य में बहुत अधिक दुर्गन्ध होती है।
(१९) अन्न और हरयावल खाने वाले प्राणियों के बच्चे	(१९) मांसाहारी प्राणियों के बच्चों की आँखें पैदा होते

खुली आँखें लेकर पैदा होते हैं।

समय बन्द होती हैं।

(२०) सब्ज़ी खाने वाले प्राणी, चाहे मनुष्य हों अथवा पशु-पक्षी, भूख से तड़प कर भले ही मर जावें किन्तु अपने बच्चे की ओर कभी बुरी दृष्टि से नहीं देखते।

(२०) मांसाहारी जीव अधिक भूख लगने पर अपने बच्चों को भी खा जाते हैं। फिर मांसाहारी मनुष्य इस कुप्रवृत्ति से कैसे बच सकते हैं ?

(क) सांपनी, जो बहुत से अण्डे देती है अपने बच्चों को अण्डों से निकलते ही खा जाती है। जो बच्चे अण्डों से निकल कर भाग दौड़ कर और छिप-छिपाकर बच जायँ उनसे ही सांपों का वंश चलता रहता है।

(ख) बिल्ली बिलाव से छिपकर बच्चे देती है। यदि बिलार बच्चों पर पहुँच जाय तो नर बच्चों को मार डालता है, मादा बच्चों को कुछ नहीं कहता। वह स्वाद का पुजारी जड़-मूल से ही सब पर अपना अधिकार समझता है।

	(ग) पक्षियों में तीतरी भी छिपकर अण्डे देती है। यदि नर तीतर अण्डों पर पहुँच जाय तो नर बच्चों के अण्डों को तोड़ डालता है। मादा अण्डों को रहने देता है। (घ) ऐसे भी उदाहरण हैं कि बच्चे माता को खा जाते हैं। जैसे बिच्छू के बच्चे माता की पीठ पर चढ़े रहते हैं। माता मर जाती है और बच्चे पल जाते हैं।
(२१) चरने वाले प्राणी और मनुष्य साधारणतया नमक खाये बिना जीवित नहीं रह सकते।	(११) मांसाहारी पशु पक्षियों को नमक की तनिक भी आवश्यकता नहीं होती।

परिणाम—ऊपर कुछ उदाहरण दिये गये हैं जो अन्न, फल, फूल, दाल, और हरयावल खाने वाले प्राणियों और मांस खाने वाले जीवों में अन्तर बताते हैं, न मालूम प्रकृति ने और कितनी ऐसी सृष्टि उत्पन्न की होगी, जिसका जानना मानव की शक्ति से परे है। फिर भी ये उदाहरण बुद्धिमान् पुरुषों के लिये पर्याप्त हैं। इस प्रकार यदि हम खोज की दृष्टि से देखते चले जाएं तो स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांस कदापि नहीं हो सकता। मनुष्य की शारीरिक बनावट भी उन प्राणियों से मिलती है जो

मांसाहारी नहीं हैं, जैसे बन्दर आदि। ये मनुष्य की बनावट और रूप के बहुत निकट हैं। हाथ पैरों की समता और शरीर के दूसरे अंग, विशेषतया अंतड़ियाँ पूर्णतया मनुष्य के समान हैं। मनुष्य की अंतड़ियों की लम्बाई जिसमें से होकर भोजन पचते समय जाता है, घुमाव खाती हुई ३३ फुट के लगभग होती हैं। यद्यपि मांसाहारी जीवों की अंतड़ियों में घुमाव तनिक भी नहीं होता। उनकी अंतड़ियां लम्बी अथवा सीधी थैली सी होती हैं।

★

क्या मांस मनुष्य का प्राकृतिक भोजन है?

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांस कदापि नहीं हो सकता। हर प्रकार के मांसाहारी प्राणियों पर दृष्टिपात करें तो जल, स्थल, वायु, यहाँ तक कि मांसाहारी पेड़ और पौधे तक अपने भोजन को समूचा ही खाते हैं। वे उसे बिना चबाये निगल जाते हैं और पचा लेते हैं। जैसे पानी में रहने वाले जीव सब के सब अपने से निर्बल दूसरे जीवों को निगल जाते हैं। हड्डी, पसली, कुछ शेष नहीं छोड़ते, पृथ्वी पर मांसाहारी पशु-पक्षी अपने से छोटे प्राणियों को तो निगल ही जाते हैं। बड़े मांसाहारी जैसे शेर, चीता आदि जब जीवित जीवों पर आक्रमण करते हैं तो पहले गरदन से पकड़कर रक्त चूस जाते हैं। मरने वाले जीवों का शेष रक्त शरीर में ठण्डा होकर जम जाता है और वे उसको खुरच कर खाते हैं। यहां तक कि मोटी-मोटी हड्डियों के अतिरिक्त, पसलियों की हड्डी तक भी सब चट कर जाते हैं। इसी प्रकार बिल्ली चूहे को नोच-नोच कर निगल जाती है। जहां कहीं मांसाहारी जीव अपना भोजन मारकर खाते हैं, वहां जाकर देखो, रक्त गिरा हुआ कभी ही दिखाई देगा। घास और हरियाली खाने वाले पशु पक्षी अपना भोजन सारे का सारा चबाते और खाते हैं। कुछ बाकी नहीं छोड़ते। प्रकृति ने पेड़ और पौधे तक मांसाहारी उत्पन्न किये हैं। वे भी अपने भोजन को सारे का सारा ही पचा जाते हैं। कई प्रकार के पौधों में जब उनकी पंखड़ियां

निकलती हैं, मक्खी और भुनगा आदि जीव उनकी सुन्दरता देखकर भोजन के लिये उन पर बैठते हैं। उनकी पंखड़ियां इनके बैठते ही बन्द हो जाती हैं और जब तक अपने शिकार को सारे का सारा न पचा लें नहीं खुलतीं। इसी प्रकार का एक विचित्र पेड़ अफ्रीका में होता है। यदि कोई मनुष्य या पशु-पक्षी उसकी छाया में बैठ जाय तो उसकी शाखाएँ झुक कर उससे चिपट जाती हैं और वह शिकार उनमें इस प्रकार फँस जाता है जैसे मक्खी या भुनगा मकड़ी के जाले में। थोड़ी देर में मांस, त्वचा, रक्त आदि पचकर हड्डियां वृक्ष के नीचे गिर जाती हैं। आशय यह कि बड़े और छोटे सब प्रकार के प्राणियों के लिये जो भोजन सामग्री प्रकृति ने उत्पन्न की है वह पर्याप्त मात्रा में है। आप तुलना करके देखें, जिस बन में ५-७ चीते अथवा भेड़िये होंगे वहाँ घास और हरियावल खाने वाले असंख्य जीव होंगे। मांसाहारी पशुओं की तुलना मांसाहारी मनुष्यों से कीजिये। वधिक जिन जीवों का वध करते हैं उनका रक्त, त्वचा और पेट के अंग, या यों कहिये कि शरीर का दो तिहाई भाग, निकल जाता है। केवल तीसरा भाग शेष रह जाता है अथवा एक मन जीवित प्राणी का मांस केवल दस सेर बनता है। यदि वास्तव में मांस मनुष्य का आहार होता तो उसका इतना भाग क्यों नष्ट किया जाता? मांसाहारी पशुओं के समान मनुष्य भी जीवों का सारे का सारा भाग ही क्यों न हड़प कर जाता। क्या प्रकृति ग़लती करती है या कि मानव। यह बड़ी विचित्र बात है कि असंख्य प्राणियों का आहार तो सब का सब खाने वाला बनाया गया है, किन्तु मानव का एक मन में दस सेर ही। फिर मांस खाने वाले पशुओं के झुण्ड के झुण्ड पृथ्वी पर दृष्टिगोचर नहीं होते। जल में रहने वाले जीवों के अतिरिक्त, जिनको प्रकृति एक दूसरे को खाने वाला बनाती है, बड़े जीव छोटे को जीवित ही निगल जाते हैं तथा छोटा बड़े को मरने के पश्चात् खा

जाता है । क्या कहीं किसी ने शेरों, चीतों या भेड़ियों के झुण्ड देखे हैं ? अथवा बाज़ आदि की पंक्तियां देखी हैं फिर मानव अपने साथियों को देखे । जिस गांव में सौ पचास की जनसंख्या हो, कहते हैं कि यह छोटा गांव है । उनको छोड़कर बड़े गांवों में हज़ारों की तथा नगरों में पांच, दस, पचास हज़ार और लाखों की जन-संख्या होती है । संसार की जनसंख्या तो अरबों तक पहुँचती है । क्या मांसाहारी मनुष्य पृथ्वी में कोई ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं कि प्रकृति ने इतने निर्दयी, और दुःख देनेवाले पशुओं के झुण्ड के झुण्ड यहां छोड़ रखे हों ।

प्रकृति ने जो मांसाहारी जीव उत्पन्न किये हैं, यदि ध्यान से देखा जाय तो उनके बहुत लाभ भी हैं, क्योंकि जल, स्थल तथा वायु में दुर्बल और रोगी जीव खाये पीये जाते हैं। जो मर जाते हैं उन्हें प्रकृति के भंगी गिद्ध और दूसरे मृत जीवों को खाने वाले प्राणी मौजूद हैं। जो इनको खा कर इनके दुःख का अन्त एक दम कर देते हैं । वन में जिस जीव को देखो, बलवान् और अच्छा पला हुआ होगा । निर्बलों का वहां क्या काम ? निर्बल तो दिन रात हर समय नष्ट होते रहते हैं । जो जीव आहार बनते हैं उन को उन जीवों की अपेक्षा, जिनको मनुष्य मारता है, कुछ भी कष्ट नहीं होता, क्योंकि जिन जीवों को निगला जाता है वे मुँह में गये और गड़प। एक दम दिल का चलना बन्द हो जाता है । शेर आदि का सामना होने पर दूसरे जंगली जीव पहले ही भागने लगते हैं । फँस जाने पर फिर उनको अपनी सुध नहीं रहती, जैसे क्लोरोफार्म सुंघा दिया हो । यह मृत्यु मरने वाले के लिये उतनी दुःखदायी नहीं होती जितना कि मनुष्य के हाथों से वध होना । मनुष्य तो प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है । जीव इस से हिल जाते हैं और प्यार करते हैं । यदि जीवों को वध करने के लिये ले जाया जावे तो वे समझते हो नहीं हैं कि उन के साथ क्या होने

वाला है। वे वधिक को अपना मालिक और रक्षक समझ कर आगे आगे जाते हैं और नहीं समझते कि वे जिस के प्यार पर भूले हुए हैं वही उनके साथ धोखा करेगा। अन्त में वह मूक जीव घोखे में आ ही जाते हैं और अपने आपको सर्वोत्कृष्ट कहने वाला दुष्ट मनुष्य उस पशु के साथ विश्वास-घात करते हुए तनिक भी नहीं लजाता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। स्नेह, सहानुभूति और दूसरों का हित-सब धर्मों का चरम लक्ष्य है। इस सहानुभूति और पर-हित को चरम लक्ष्य तक पहुँचाना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है, जिससे कि विविध प्रकार के लोग और कई प्रकार के धर्मों के अनुयायी बिना एक दूसरे को घृणा किये स्वयं जीवित रहें और दूसरों को भी जीवित रहने दें।

इस विचार को पैदा करने और उत्पन्न करने के लिए भी आवश्यक है कि जहां तक सम्भव हो मनुष्य के आहार में मांस का भाग न हो। सहानुभूति तथा प्रेम के लिये कोमल और संवेदनशील हृदय की आवश्यकता है। मांस खाने से और मांस प्राप्त करने के लिए जीवों को मारने से हृदय निर्दयी और कठोर हो जाता है।

मनुष्यों में मांस खाने वालों की अपेक्षा मारने वाले बहुत कम हैं; क्योंकि जिन नगरों में २५, ३० हज़ार लोग रहते हैं, वहां वधिकों की दुकानें २५-३० के लगभग ही होती हैं, जिसका अर्थ यह हुआ कि एक हज़ार की जन-संख्या के लिये एक वधिक होता हैं। इस लिये सब मांसाहारियों को यह विदित नहीं होता कि वे जो कुछ खा रहे हैं वह किस कठोर कृत्य का दुष्परिणाम है। कई बलवान् पशुओं का मांस वध होने, चमड़ा उतारने और पेट से सब अंग निकाल देने के पश्चात् भी बहुत देर तक धड़कता रहता है। वास्तव में वध होने का दृश्य बहुत थोड़े लोग सहन कर सकते

हैं। कई लोग बेसुध हो जाते हैं और बहुत से देख नहीं सकते। ऐसे समय में भाग जाते हैं। एक बार की बात है करनल डैनीज़ कैण्टोनमेण्ट मैजिस्ट्रेट, कसौली (Col. Dennys Cantt. Magistrate, Kasauli) छावनी में बूचड़ खाने देखने गए। यह बात सन् १९०४ की है। संयोगवश बूचड़ खाने में जानवर वध करने के लिये अन्दर लाये गये। साहिब बहादुर भाग कर एक दम बाहर आ गये। इस दृश्य को देख न सके और भविष्य के लिये यह व्यवस्था की कि बूचड़ खानों के बाहर लकड़ी के जंगले वध होने वाले जीवों को बन्द करने के लिए बनवा दिये जाएं जिससे कि हर एक जीव को एक एक करके एक के पश्चात् दूसरे का वध होने से पहले कोई डर अथवा दुःख न हो, क्योंकि यह तो उन की सामर्थ्य से बाहर था कि वे भविष्य के लिये जीवों का बध बन्द कर देते; तथापि वे इनके वध को जितना सरल बना सकते थे, उतना बना दिया। इस लिए मांस खाना और बात है तथा जीवों का वध करना दूसरी बात है। जब मांस बाज़ार में बिकता है तो वह एक मृत शरीर या मिट्टी के रूप में होता है और खाने वालों के सामने कष्ट एवं वेदना का दृश्य प्रस्तुत नहीं करता। यह कार्य वही करते हैं जिनका हृदय अत्यन्त कठोर और मृतप्राय हो जाता है।

बुद्धिमत्ता—सृष्टि की विविध प्रकार की वस्तुओं में जीवों को पेड़-पौधों की अपेक्षा उत्कृष्ट कोटि का गिना जाता है। फिर ऐसे जीवों को, जो बुद्धि रखते हैं और सर्वोत्कृष्ट प्राणी कहलाते हैं, केवल अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये दूसरे जीवों का वध करना महापाप का भागी बनना है। इससे कई प्रकार की असंख्य बीमारियों में फंस कर मनुष्य ने केवल अपने आप को विपत्ति में फँसाना है, अपितु अपने रोगों का प्रभाव फैलाकर अपने सगे सम्बन्धियों और साथियों को भी दुःख में फँसाना है। इस लिये

जो कार्य पेड़ पौधों से भली प्रकार पूरा हो सकता है उस के लिये लगातार ऐसी बुरी परम्परा को जीवित रखना इनकी निर्दयता का जीता-जागता प्रमाण नहीं तो और क्या है ? यही नहीं, मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये तो पेड़-पौधों का उपयोग विशेष महत्त्व भी रखता है और ये मांस की अपेक्षा प्रत्येक दृष्टि से अधिक गुणकारी और सुलभ होने के कारण अधिक लाभदायक हैं ।

मनुष्य का प्राकृतिक आहार—जन्म के समय प्रकृति ने मनुष्य के लिये दूध का प्रबन्ध किया । मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क का ठीक ठीक पालन-पोषण करने के लिये जिन Vitamins की आवश्यकता है वे सब सर्वोत्कृष्ट रूप में सबसे अधिक दूध में पाये जाते हैं, जो शरीर के प्रत्येक भाग अर्थात् रक्त, मांस और हड्डी को अलग अलग शक्ति पहुँचाते हैं । यह गुण दूध के अतिरिक्त और किसी आहार में नहीं पाये जाते । यह आहार खाने में इतना मृदु और गुणों में इतना अधिक है कि बच्चा एक से दो वर्ष तक माता का दूध पीता रहता है । इससे उस समय वह जितना बढ़ता और बलवान् बनता है उतना यदि अपनी आयु के शेष भाग में पचास साल तक भी बढ़ता रहे तो न मालूम कितना लम्बा और कितना शक्ति-शाली हो जाय । माता का दूध छोड़ने के पश्चात् मनुष्य अपनी आयु के शेष भाग में पशुओं का दूध पीता है, जो उसके भोजन का बड़ा भाग और सबसे अधिक शक्ति प्रदान करने वाला होता है । दूध न केवल स्वादु और शक्ति-प्रद होता है अपितु मनुष्य के दूसरे प्रकार के आहार –मिठाई, नमकीन, पकी हुई चीज़ों और रोटी आदि को भी स्वादु बनानेवाला तथा शक्ति प्रदान करने वाला होता है । वास्तव में यदि जीवों का दूध न होता तो मनुष्य मिठाइयां और नमकीन आहारों के स्वाद से वंचित रह जाता,

क्योंकि घी जो दूध की आत्मा है, एक ऐसी अमूल्य वस्तु है जो इन सब आहारों को स्वादिष्ठ बना देती है। आधुनिक युग के डाक्टर दूध और अण्डे इन दो वस्तुओं में ही अधिक पोषक तत्त्व बताते हैं। दूध तो जिस मात्रा में मनुष्य के काम आता है उसका क्या ठिकाना। गांव में, जंगल में, नगरों में—इसका हर स्थान पर प्रयोग होता है। अमीर, ग़रीब, सभी अपनी योग्यता के अनुसार इसका प्रयोग करते हैं और प्रकृति की इस सबसे बड़ी अमूल्य वस्तु से लाभ उठाते हैं।

अण्डों में जीवन विद्यमान होने के विषय में सर्वसाधारण जनता को भी संदेह हो जाता है। इसलिये इनमें जीवन की परख करने की विधि नीचे लिखे अनुसार दी गई है, जो सुगमता से समझ में आ सकती है :-

(१) गिलास में जल भर कर अण्डा उसमें डाल दें—जीवित अण्डा पानी की तह में लेट जायेगा।

(२) यदि अण्डे में मरने के प्रारम्भिक चिन्ह उत्पन्न हो जायँ तो अण्डा पानी के नीचे की तह पर खड़ा हो जायगा।

(३) जीवन समाप्त होने पर अजीवित अण्डा ऊपर की तह पर तैरने लगेगा, जैसे कि मनुष्य अथवा पशु का शव।

अण्डा और उसके गुण—यद्यपि आंतों में कीटाणुओं के प्रभाव के कारण लेसीथीन (एक रासायनिक पदार्थ जो अण्डों की ज़र्दी में पाया जाता है) के टूटने पर "कुनीन" और "न्यूरीन" उत्पन्न होते हैं जिनमें दूसरा पहले से सौ गुण विषेला है और प्रोटीन के सड़ने पर 'एमीन' 'फिनाइल' आदि बनते हैं और इनके मिल जाने से सिर दर्द और बेचैनी के अतिरिक्त 'क्रानिक फंकशनल' अंगों के रोग जैसे न्यूरेस्थिनिया Neuraesthenia) आदि होते हैं—यह बात तो हर एक फिजियालोजिस्ट मानता है। किन्तु फैगोसाइट्स थ्योरीका आविष्कारक रूस का प्रसिद्ध जीव शास्त्री (Ziologist) पशु

पक्षियों के विज्ञान का डाक्टर प्रोफेसर मैचिनकाफ, डायरेक्टर पाश्चर इन्स्टीट्यूट, पेरिस बुढापे में दुःख देने वाले रोगों को और स्वाभाविक मृत्यु से पहले चल बसने को भी इन्हीं विषों के प्रभाव से बताते हैं। यह विष वृद्धावस्था में अधिक प्रभाव डालते हैं। ये रीढ़ की हड्डी को कठोर करके कुबड़ापन के हेतु बनते हैं। इन से 'एथरोमा' हो जाता है, जिसके कारण त्रुटियां आकर लेन्स में चर्बी भर जाने से मोतिया बिन्द आदि हो जाते हैं। इसका विष बहुत से रोगों का कारण होता है।

मांस और घी के गुणों की तुलना—मक्खी ऐसा जीव है जो अधिकतर कई प्रकार के भयानक रोगों को फैलाने का हेतु होती है। यह हर प्रकार की गंदगी, हैज़े, चेचक आदि के रोगियों के मल, मूत्र, वमन, थूक आदि पर बैठकर अपनी टांगों और परों को इन रोगियों के कीटाणुओं से भर लेती है और फिर मनुष्य के भोजन पर बैठती है। हलवाई की दुकान में मिठाइयों पर, कसाई की दूकान में मांस पर, जहां भी उसे स्थान मिले यह किसी भी अवसर को हाथ से नहीं जाने देती, किन्तु मांस और जीवों के घावों से तो इसे विशेष आसक्ति है। प्रकृति भी ऐसे अवसर पर इसकी सहायता करती है, क्योंकि रोगों के कीटणु मांस और घावों पर दूसरे स्थानों की अपेक्षा शीघ्रता से और अधिक संख्या में बढ़ते हैं। मक्खी को 'सरभंग' भी कहते हैं। जिसका अर्थ है संसार की हर प्रकार की गंदगों को पसन्द करने और शुद्ध चीज़ों से घृणा करने वाली। घी एक पवित्र वस्तु है, किन्तु मक्खी इससे घृणा करती है। यह घी पर नहीं बैठती, इसलिये हिन्दू घी को 'अमृत' कहते हैं। घी सब धर्मों के अनुयायियों के भोजन का एक विशेष अंग है। घी में असंख्य गुण हैं। घी के बिना शुद्ध भोजन खाने वाले किसी आहार को पसन्द नहीं करते और न कोई अच्छी वस्तु इसके बिना बन सकती है। मांसाहारी घृत के स्थान में चर्बी

खाते हैं। गाय का मांस खाने वाले देशों में वहां के लोगों ने उन्हें मार मार कर समाप्त कर दिया अथवा बहुत कम कर दिया है। जैसे पाकिस्तान के सीमाप्रान्त में बहुत कम गाय मिलती हैं। वहां पठान मोटी पूंछवाले दुंबे की चर्बी खाते हैं। अरब आदि मुसलमान देशों में गौयें बहुत कम हैं। वहां भी लोग चर्बी खाते हैं। घो के मुकाबिले में चर्बी दुर्गन्धवाली वस्तु है। खाते समय गले में चिपट जाती है। चर्बी से कई प्रकार के रोगों का डर है, किन्तु घी कई रोगों की ओषधि है। घी में इतने गुण होते हुए यदि घृत को स्वर्ग और चर्बी को नरक कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा।

मांस और अनाज की तुलना—मांस खाने वाले अपना मलतव सिद्ध करने के लिए बहुधा अनाज और मांस को एक समान सजीव सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु वास्तविकता को समझने का प्रयत्न नहीं करते और बिना समझ के मनुष्य ठोकर खाता है। मैं मानता हूं कि अनाज भो जानदार है। किन्तु उस में हृदय, मस्तिष्क और दूसरे अंग कुछ भो नहीं होते। प्रश्न दुःख और सुख पहुंचने का है। स्वर्ग और नरक क्या वस्तु है ? वहां भी प्रश्न सुख और दुःख का है। स्वर्ग में सुख और नरक में दुःख है। यदि प्रकृति ने जानवरों के लिये कोई ऐसा ढंग रखा होता जिस से उनको मरने और बीमारी के समय कोई दुःख न होता तो ईश्वर की स्तुति कोई न करता। संध्या, उपासना या नुमाज़ की आवश्यकता न रहती। दुःख ही एक ऐसा वस्तु है जो उस सर्वशक्तिमान् की याद दिलाती है और उस की स्तुति करने के लिये विवश करती है। नहीं तो मनुष्य किसी ऐसी वस्तु के आगे, जो अदृश्य है, कब झुकने वाला था। इस लिये मैं बार २ कहता हूं कि मांसाहारियों को जब अपने आप को दुःख पहुँचे तो आकाश सिर पर उठा लेते हैं और दूसरों के दुःख पर हंसी उड़ाते हैं। यह कार्य मूर्खों के नहीं तो और किस के हैं।

अनाज जानदार वस्तु है—इस के अतिरिक्त अनाज यद्यपि जानदार वस्तु है तथापि यह बिना आहार के वर्षों तक जीवत रहता है। मेरे पूज्य पिता जी का २३.४.१९२३ को स्वर्गवास हुआ। मृत्यु से पहले प्राय: ३ वर्ष वे घर पर रहे। पुराना मकान गिराकर नया बनवाया गया। कसौली आते समय वह घर में कुछ चावल और उड़द टीनों में डालकर छोड़ आये थे। यहां आ कर तीन महीने के भीतर ही उन का देहांत हो गया। उन की मृत्यु के पश्चात् घर की मरम्मत तो प्रति वर्ष होती रही किन्तु स्त्रियों को घर जा कर रहने का अवसर नहीं मिला। बारह वर्ष सात महीने के पश्चात् अर्थात् नवम्बर सन् १९३५ में मुझे वह कमरा यहां उड़द और चावल रखे थे खोलने का अवसर मिला। मैंने चावल तथा उड़द टीनों में देखे। उन की वास्तविक अवस्था को देख कर मेरे और दूसरे लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यद्यपि अनाज के स्वाद में कुछ अन्तर आ गया था फिर भी सब चीज़ें प्रयोग करने योग्य थीं। हम ने चावल और उड़द स्वयं खाये, कछ दे दिये और कुछ बेच दिये। गेहूं को भी यदि सुरक्षित रखा जाय और सुसरा न लगे तो दस साल अथवा इस से भी अधिक समय तक बोने के योग्य रहता है। बहुत समय तक निराहार जीवित रह कर प्राणियों को जीवन प्रदान करता है। इस का पिसा हुआ आटा भी कई महीनों तक खाया जा सकता है और यही इस के जीवित रहने का प्रमाण है। इस की उत्पति वीर्य से नहीं इस लिए यह पवित्र है। मनुष्य को अनाज से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये जो स्वयं आहार बन कर दूसरों जीवन प्रदान करता है। जो मनुष्य पशु, पक्षियों का मांस खा कर अपने अन्दर वैसे ही अवगुण उत्पन्न कर लेते हैं, उन से असंख्य बुरे कार्य हो जाते हैं। ये स्वयं अशान्त रहते हैं और दूसरों को अशान्त रखते हैं।

माँस में सड़ जाने का गुण—ज्यों ही कोई जीव मरता अथवा मारा जाता है उसका शरीर स्वयं विगड़ना आरम्भ हो जाता है। मृत शरीर में दुर्गन्ध और बिगड़ने में समय के अनुसार चाहे चौबीस घण्टे लगें या इस से अधिक किन्तु वह उसी अवस्था में नहीं रह सकता। चाहे उस को जलायें या पकायें, दुर्गन्ध अवश्य देगा। यदि भूमि में दबाया जाय तो उस के अन्दर ही सड़ता रहेगा और भूमि उस की सड़ांद को नष्ट करके मिट्टी बना देगी। मांसाहारी व्यक्ति यदि अपने पसीने को सूंघे तो उसे पता चले कि उस में कितनी अधिक दुर्गन्ध होती है। ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न करने वाला आहार शरीर के प्रत्येक भाग में रचकर वीर्य तक को दुर्गन्धित कर देता है।

ऊपर लिखे हुए कारणों को ध्यान में रखते हुए क्या मांस मनुष्य का आहार कहलाने योग्य हो सकता है ? कदापि नहीं ?

★

वायु सेवन अर्थात् भ्रमण

प्रकृति ने हर एक बात के लिए इतनी उचित व्यवस्था की है कि मनुष्य उसे देख कर चकित रह जाता है और उस के मुख से स्वयं ही परामत्मा की महिमा का गान होने लगता है। वायु की पवित्रता पर तनिक विचार किया जाय तो इस व्यवस्था की महत्ता का पता चलता है। प्राणी जिस वायु को अपवित्र कर देते हैं, पेड़-पौधे उस को पवित्र बनाते हैं। प्राणी अपनी श्वास के साथ आक्सीजन खींचते हैं और कार्बोनिक एसिड गैस बाहर फैंकते हैं, जो एक बिषैली गैस होती है। यदि यह प्राणियों के अन्दर से निकलती हुई गैस इस संसार में मौजूद रहती तो आज तक जीवों का जीवित रहना असम्भव हो गया होता। किन्तु प्रकृति का ढंग देखिए। कार्बोनिक एसिड के विषैले पदार्थों को पेड़-पौधे अपने अन्दर खींचते हैं और यह उन के जीवन का आधार बनता है। शेष शुद्ध भाग फिर जानदारों के काम आता है। पेड़, पौधे और पशु-पक्षियों को अपने अपने जीवन के लिए एक ही वायु के अलग अलग भागों की आवश्यकता है। बस्तियों में रहने वाले मनुष्य इस विषैली कार्बोनिक एसिड गैस के प्रभाव से बचने के लिए बाहर खुले स्थान में, जिसे पेड़-पौधे शुद्ध कर देते हैं, जा कर प्रसन्न होते हैं। यही कारण है कि मनुष्य को स्वास्थ्य के लिए नगर से दूर बाहर खुली हवा में भ्रमण करना अत्यन्त आवश्यक है।

किन्तु इस खुली वायु के भ्रमण से वे लोग क्या लाभ उठा सकते हैं जिन को गंदा करनेवाले जीव उन के भोजन का एक भाग हैं। पेड़ पौधों और पशु-पक्षियों से बने पदार्थों में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि प्राणियों का शरीर जीवन में और मृत्यु के पश्चात् भी सड़ांद उत्पन्न करता है। किन्तु पेड़, पौधों से बने पदार्थ वायु को दुर्गन्धित नहीं करते। सड़ांद पैदा करने वाले पदार्थों को खाने वाले के अन्दर प्राकृतिक तौर पर अशुद्धता अधिक होगी। यदि एक जंगल में हज़ारों पेड़ काट कर सूखने को फेंक दिये जाएँ तो वहां की वायु किसी प्रकार भी अशुद्ध नहीं होगी। किन्तु एक भी पशु का शरीर मृत्यु के पश्चात् वहां रह जाय तो सारी वायु को अशुद्ध और दुर्गन्धयुक्त कर देगा।

जो महानुभाव अशुद्ध वायु सेवन करने के लिए बस्तियों से बाहर जाते हैं उन के पेट यदि ऐसी सड़ांद पैदा करने वाले आहार से भरे हुए होंगे तो खुली हवा से उन्हें क्या लाभ हो सकेगा। क्या ही अच्छा होता यदि मनुष्य प्रकृति के इस रहस्य को समझता कि पशु-पक्षी तो उस विष को पैदा करते हैं जो जीवन को हानि पहुंचाते हैं किन्तु पेड़-पौधे उसे जीवन प्रदान करते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि मनुष्य अपने आहार का प्रयोग करने में इस सिद्धांत से सहायता लेता और समझता।

★

मांस खाना और धर्म

हिन्दू धर्म असाम्प्रदायक धर्म है—हिन्दू धर्म कोई मत अथवा पन्थ नहीं; यह एक धर्म है जो मानव-जीवन और मानवता का आधार है। मानवता की उन्नति मनुष्य को अपने विचारों और सिद्धान्तों के अनुसार पूरी स्वतंत्रता मिलने से ही हो सकती है। अपने विचार और विश्वासों को प्रकट करने की पूरी स्वतंत्रता संसार में केवल हिन्दू धर्म में ही है।

संसार भर के मत-मतान्तरों के कुछ विशेष सिद्धान्त हैं, जो एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, किन्तु हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों में परस्पर अन्तर है; जैसे एक मनुष्य ईश्वर को मानता है तो दूसरा उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, तीसरा मूर्ति-पूजा करता है तो चौथा मूर्ति-पूजा का खण्डन करता है। किन्तु हैं सब हिन्दू ही। ऐसे ही विविध प्रकार के सिद्धान्त हिन्दू शास्त्रों में पाये जाते हैं। जैसे कि सांख्य, न्याय और वेदान्त के सिद्धान्तों में काफ़ी अन्तर पाया जाता है, किन्तु हिन्दू इन सभी ग्रन्थों का आदर करते हैं और इन्हें लिखने वालों को महर्षि समझते हैं।

इसके अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों में कहीं 'हिन्दू' नाम नहीं पाया जाता और न कहीं हिन्दू कह कर सम्बोधित किया गया है। किन्तु यह एक तथ्य ही है कि प्राचीन ग्रन्थ हिन्दुओं के ही हैं, क्योंकि वे इनकी पूजा करते है। हिन्दू धर्म दूसरे धर्मों के समान

सीमित नहीं है, इसलिए कि हिन्दुओं ने कुछ सिद्धांतों और विश्वासों से आत्मा को दूसरे मतों के समान सीमित नहीं रखा है। हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति का आविष्कार नहीं है, अपितु ईश्वरीय धर्म है और ईश्वर के समान ही अनन्त है। इसी कारण से हिन्दू धर्म सारे संसार का धर्म हो सकता है। यह धर्म इतना विशाल और सहनशील है कि एक कट्टर ईश्वर-भक्त और एक कट्टर नास्तिक दोनों हिन्दू कहलाते हैं और भाइयों के समान बड़े प्रेम से रह सकते हैं। हिन्दू धर्म में हर व्यक्ति अपने विश्वास के अनुसार स्वतन्त्र अध्ययन और अनुभव से आध्यात्मिक शान्ति पाने का प्रयत्न करता है। उसे कोई अपने विचार बदलने पर विवश नहीं कर सकता।

हिन्दू धर्म वह है जिसमें मनुष्य अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को रखते हुए आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करता है। हिन्दू संसार भर के धर्मों और उन के विश्वासों को सहन कर सकता है, किन्तु किसी प्रकार की हिंसा को सहन करना उसके लिए सम्भव नहीं है। जिस धर्म के अनुयायी मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नष्ट करके उसके विचारों को बदलने का प्रयत्न करें अथवा ऐसे प्रयत्न में हिंसा से काम लेने को पुण्यकार्य समझें, ऐसे मनुष्यों से हिन्दुओं का हर समय कोई न कोई झगड़ा रहा है और रहेगा भी। आज भी भारत पंचशील (जो कि इन प्राचीन हिन्दुओं के सिद्धान्त हैं) के आधार पर चलने के लिए संसार का मुँह मोड़ रहा है। भारत का पंचशील, दासता का नाम संसार के इतिहास से मिटाना चाहता है और संसार में स्वतन्त्रता और शान्ति चाहता है। भारत अपने प्राचीन सिद्धांतों को कभी नहीं छोड़ेगा। जिन सिद्धान्तों को संसार के बड़े से बड़े देश स्वीकार कर चुके हैं, वही उनका लक्ष्य है। भारत का यह संग्राम उन लोगों से सदा होता

रहेगा जो एक दूसरे का अधिकार छीनना चाहते हैं। संसार को अपना दास बनाना चाहते हैं और दूसरों की स्वतन्त्रता नष्ट करने पर कटिबद्ध हैं। हिन्दू इतिहास में ऐसे अत्याचारी मनुष्यों को राक्षस कहा गया है और राक्षसों के ऐसे अत्याचारों के विरुद्ध भारत का हिन्दू सदा लड़ता रहा है। एक सच्चा भारतीय ही हिन्दू कहला सकता है। भारत का हितैषी अपने आप को हिन्दू कह सकता है। प्राचीन ग्रन्थों में 'हिन्दू' कह कर इसी लिए सम्बोधित नहीं किया गया, क्योंकि —

हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थ किसी जातिविशेष का ध्यान रख कर नहीं लिखे गये, अपितु वे मानवता के सिद्धांत हैं, जिनकी हर एक मनुष्य को आवश्यकता है। इसी लिये इन ग्रन्थों में ही किसी न किसी रूप में मनुष्यमात्र को ही सम्बोधन किया गया है। हिन्दू धर्म, इतना उत्कृष्ट है कि उसके ग्रन्थ भी विश्व-कल्याण के लिए ही लिखे गये हैं। किसी जातिविशेष के लिये नहीं। इन ग्रन्थों पर हिन्दू जाति गर्व कर सकती है कि संसार में मानवता का अभ्युदय करने वाले जितने भी सत्य हैं वे सभी इन्हीं प्राचीन ग्रन्थों से लिये गये हैं। हिन्दुओं ने अपने परिश्रम और तपस्या द्वारा जो कुछ भी प्राप्त किया, उसे संसार के हितार्थ सम्पूर्ण विश्व को मुक्त-हस्त से दे डाला है।

हिन्दुओं ने अत्याचार का मुकाबिला करके विश्व को अत्याचारियों के पंजे से छुटकारा दिलाया, किन्तु स्वयं किसी जाति पर विजय प्राप्त करके भी न तो उस पर अत्याचार किया और न ही उसे अपना दास बनाया, क्योंकि हिन्दू का यह सिद्धांत है कि मानवता की उन्नति स्वतन्त्रता में ही हो सकती है और ऐसी स्वतंत्रता और मानवता की उन्नति पर ही विश्व की शान्ति निर्भर है।

आज संसार के बड़े बड़े राजनीतिज्ञों का यह विश्वास है कि जब तक हिन्दू धर्म के स्वाभाविक और ईश्वरीय सिद्धान्त के सामने संसार न झुकेगा तब तक संसार में वास्तविक शान्ति की स्थापना असम्भव है। हिन्दू धर्म का सिद्धान्त एक ऐसा सूर्य है जो जब चढ़ेगा तब ही वह दिन होगा जब संसार में पूर्ण शान्ति होगी।

आध्यात्मिक तथा राजनैतिक शान्ति के लिये अहिंसा का पालन करते हुए संसार के सब प्राणियों को पूर्ण स्वतन्त्रता देनी पड़ेगी और हिंसा पर विश्वास रखने वाले मनुष्यों और जातियों को सदा के लिए संसार से मिटा देना होगा, जिससे मनुष्य अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये स्वतन्त्रता के वातावरण में काम करता हुआ आध्यात्मिक उपरामता का अनुभव कर सके। ऐसा होने पर मनुष्य स्वयं सूर्य की ज्योति बन जायगा। पानी का बिन्दु समुद्र में पड़ स्वयं सागर रूप हो जायगा अर्थात् मनुष्य आध्यात्मिक उपरामता को प्राप्त हो कर ईश्वर में मिल जायगा। हिन्दू हर एक की आत्मा को एक अखण्ड ब्रह्म ही समझता है। हमारी वेदान्त यूनीवर्सिटी का अन्तिम कक्षा का कोर्स भी यही सिखाता है कि केवल एक ही ब्रह्म है जो सर्वव्यापक है। यही वेदान्त हिन्दुओं का आदर्श है। हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में जितने सिद्धान्त हैं वे सब विश्व-कल्याण के लिये हैं। हिन्दू ऋषि मनुष्य की कमज़ोरी को समझते थे कि वह कभी कभी किसी ऐसे सत्य को भी ग्रहण नहीं करता जिससे वह नष्ट हो सकता है। इसी कारण उन्हों ने जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है उनमें किसी मत, जाति अथवा सम्प्रदायविशेष की छाप नहीं लगाई है, जिससे दूसरे धर्म वाले केवल संकुचित भावनाओं के कारण इन सच्चाइयों का त्याग न करें, अपितु वह सिद्धांत और सच्चाइयां सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण करने का हेतु बनें। इसी का यह परिणाम है कि प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों

के वह सिद्धांत संसार भर के उच्च आदर्श और सभ्यता का आधार बने हुए हैं, क्योंकि जब ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन विश्व सिद्धांतों के विषय में खोज करते हैं कि सब से पहले यह सिद्धांत कौन से ग्रन्थों में पाये जाते हैं तो मानना पड़ता है कि संसार में सब से प्राचीन ग्रन्थ वेद ही हैं, जिनमें सबसे पहले इन सिद्धांतों का उल्लेख है। विश्व को स्वतंत्रता, सच्चाई और शान्ति का मार्ग दिखाने वाले सब से प्राचीन ग्रन्थ हिन्दू शास्त्र ही हैं।

अतः यह सिद्ध हो गया कि सम्पूर्ण विश्व की सच्चाइयों का स्रोत हिन्दू ग्रन्थ ही हैं। संसार की सब से पहली भाषा संस्कृत है। संसार का सब से पहला सभ्य देश भारतवर्ष है और यही मानव संस्कृति का आदि स्रोत है। इस देश की हिन्दू जाति लाखों वर्षों से चली आई है। इसकी गोद में पलने वाली कुछ जातियों का तो नाम भी इतिहास से मिट चुका है किन्तु यह जाति अभी तक करोड़ों की संख्या में जीवित है। इसका मूल कारण है 'स्वयं जियो और दूसरों को जीवित रहने दो''। यह सिद्धांत - अर्थात् विचारों की स्वतंत्रता। यही सुनहरी सिद्धांत हिन्दू जाति के न समाप्त होने वाले जीवन का भेद है और यही इसका वह अटल सिद्धांत है जिसके लिये यह जाति मानवता के शत्रु राक्षसों से लड़ती रही है। हिन्दू धर्म का ऐसा स्वरूप है जिसमें एक विश्व तो क्या कई विश्व समा सकते हैं। आज संसार के विद्वान् इस बात को मानते हैं कि संसार में वास्तविक स्थायी शान्ति केवल हिन्दू संस्कृति के प्रचार से ही स्थापित हो सकती है। मानवता का ही दूसरा नाम हिन्दू संस्कृति है। हिन्दुओं की सहनशीलता और असाम्प्रदायिकता के उदाहण का एक पक्ष यह है कि जब मुसलमानों ने पारसियों को मुसलमान बना कर ईरान देश से निकाल दिया तो इन दुःखी और देश से निकाले हुए लोगों को

हिन्दुओं ने स्थान दिया और अब एक हज़ार वर्ष से ऊपर हुआ वे भारत में बड़ी स्वतंत्रता से अपने धर्म पर दृढ़ रहते हुए जीवन निर्वाह करते रहे हैं। इतना ही नहीं वे बड़े धनी हैं और जमशेदपुर में टाटा का लोहे का कारख़ाना इन्हीं का है।

आज अमरीका और दूसरे देशों में भी हिन्दुओं के प्राचीन राजनैतिक और आध्यात्मिक ग्रन्थ श्री गीता जी को संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में मानते हैं और इस का आदर करते हैं। इसी प्रकार हमारे दूसरे महान् ग्रन्थों का भी कई दूसरे देश आदर सत्कार करते हैं, जिन ग्रन्थों मे लोगों ने वैज्ञानिक निपुणता प्राप्त की है।

आज संसार के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ, जो संसार के कर्त्ता-धर्त्ता हैं एक-दूसरे को हड़पना चाहते हैं, एक दूसरे की स्वतन्त्रता को समाप्त करना चाहते हैं। उनकी राजनीति संसार को नाश की ओर ले जा रही है। इस युग में बड़ा परिवर्तन आ रहा है। जैसे जैसे विज्ञान की उन्नति हो रही है वैसे ही दूसरों की स्वतन्त्रता को नष्ट करने का प्रयास बढ़ता जाता है और अशान्ति का वातावरण उपस्थित हो रहा है। मानवता उस आदर्श को पाने के लिये भटक रही है जिसकी कल्पना आज स्वतन्त्र भारत पंचशील के आधार पर कर रहा है। समय आ रहा है कि संसार स्वतन्त्रता का मार्ग ढूँढने को भटकेगा और भारत के प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ पथ-दर्शक होंगे, जिनके सिद्धाँतों को अपना कर संसार स्वतंत्रता और शान्ति का सूर्य उदय होता देखेगा और उस सूर्य का प्रकाश सारे विश्व में छा जायगा।

हिन्दू धर्मशास्त्र— अब हमें देखना यह है कि धर्म ग्रन्थों में कहां तक मांस खाना उचित ठहराया गया है। वैदिक धर्म जो प्राचीन काल में सम्पूर्ण विश्व का धर्म था मांस खाने को सबसे बड़ा

पाप बताता है। यूरोप के बड़े विद्वान् और संस्कृत के पण्डित प्रोफेसर मेक्समूलर कहते हैं 'Rigveda is the most ancient book in the library of the world' अर्थात् ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय की सबसे प्राचीन पुस्तक है।"

हिन्दू शास्त्रों में जहां कहीं मांस की चर्चा है वहां निषेध करने के अभिप्राय से है। जैसे मनुस्मृति अ० ५ में इस पर बहुत विचार किया गया है। अन्त में-"निवृतिस्त महाफला" ही कहा गया है।

मनु ३-२६७-२७२ में मांस-श्राद्ध विषयक प्रकरण के अन्त में कहा गया है।

"आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वश :"

अर्थात् मुनि-अन्न नीवार (तिन्नी के चावल) आदि अन्नों से पितर अनंत काल तक तृप्त रहते हैं। इसका आशय यह है कि अन्नाहार मांसाहार से बहुत अच्छा है। अतः मांसाहारियों को मांस छोड़कर अन्न ही खाना चाहिये। मनु सृष्टि के आदि में हुए हैं, पहले लोग अन्न के गुण एवं उत्पादन न जानते हुए मांस भी खाते थे। मनु ने उन्हें इस प्रकार मांस छुड़ा कर अन्न खाने में प्रवृत्त करने की चेष्टा की है।

'यज्ञ-विधि में मांस खाना ग्राह्य है' कुछ लोगों की ऐसी धारणा है। अतः इस पर भी कुछ विचार करना है। वेदों में इस प्रकार के यज्ञों के विधान हैं। पर विचार करने से इन यज्ञों के बहिरंग-भाव से भी मांस त्याग की ही शिक्षा मिलती है। जैसे कि एक वर्ष अश्वमेध यज्ञ करने में कई लक्ष मुद्रा के विविध दान करने पर वह यज्ञ सम्पन्न होता है। तब यजमान को थोड़ा यज्ञावशिष्ट मांस मिलता है। तात्पर्य यह है कि इतने दान आदि पुण्य करने पर उतना मांस खा सकता है, अन्यथा मांस त्याज्य ही है। इस प्रकार

विचारने पर ये यज्ञविधान मांस छुड़ाने के ही उपाय सिद्ध होते हैं।

महाभारत आदिपर्व में लिखा है कि महाभारत का रहस्य चारों वेदों से भी अधिक है। उस का निर्णय भी देखिये। महा० शान्ति० अ० २६५ में अहिंसा प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट कहा गया है, यथा—

'अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता।
सुरा मत्स्या मधु मांसमासव कृसरौदनम् ॥
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्।
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत् प्रकल्पितम् ॥
विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः।
पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम् ॥

अर्थात् प्राणियों की हिंसा न करना ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है। मद्य, मांस, मछली, मधु, आसव और तिल मिले हुए चावलों का भक्षण धूर्तों के द्वारा प्रचलित किया गया है। यह सब वेदों में नहीं कहा गया है। ब्राह्मण लोग सब यज्ञों में विष्णु (व्यापक परमात्मा) को ही जानते हैं 'यज्ञो वैः विष्णु' यह कहा ही गया है। उनकी पूजा तो दूध और फूलों से कही गई है। महा० अनुशा० अ० ११५—११६ में उक्त रीति से ही अहिंसा का प्रतिपादन और मांसभक्षण का खण्डन विस्तृत रूप से किया गया है। अतः शास्त्रदृष्टि से मांसाहार मनुष्यमात्र के लिए त्याज्य है।

बौद्ध तथा जैन धर्म—बौद्ध तथा जैन धर्म का तो अस्तित्व ही 'अहिंसा परमोधर्मः, सिद्धांत पर है। जैन मत भी बौद्धमत के इस सिद्धांत को अक्षरशः सत्य मानता है कि संसार के छोटे से छोटे प्राणी से ले कर हाथी आदि बड़े से बड़े जीव को भी दुःख नहीं

पहुँचाना चाहिये । बौद्धधर्म का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस के अनुयायियों के राज्य में पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों के लिए एक समान औषधालय थे । इसी एक बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस दया की शिक्षा ने कहां तक जनता को प्रभावित किया हुआ था ।

ईसाई धर्म के आदेश—यीसू मसीह (Jesus Christ) अपने अनुयायियों से कहते हैं कि तुम स्वयं दया करना सीखो, जिस से वह सब से बड़ा दयावान् ईश्वर तुम पर दया करे । क्या कभी यह भी संभव हो सकता है कि किसी को दया की शिक्षा देने का आशय यह हो कि केवल जिह्वा के स्वाद के लिए दूसरों का गला काट कर अपना पेट भरो । इस का यह आशय कदापि नहीं हो सकता । दया के लिए प्रार्थना करने का अधिकार केवल उसे है जो दूसरों पर भी दया करता हो । १३५३ वर्ष हुए उससे पहिले न हज़रत मुहम्मद साहब थे और न कोई मुसलमान इस सृष्टि में थे । इसी प्रकार १६५८ वर्ष हुए जब हज़रत ईसा संसार में उत्पन्न हुए । इस से पूर्व न कोई ईसाई था न ईसाई धर्म । इसी प्रकार २५०० वर्ष हुए जब महात्मा बुद्ध पैदा हुए । इस से पहले न कोई बौद्ध था और न बौद्ध धर्म ही । इसी प्रकार महावीर के अस्तित्व से पहले न कोई जैनी था न जैन धर्म ही । जब इन धर्मों का कोई अस्तित्व नहीं था तो उस समय कौन सा धर्म था, यह प्रश्न उठता है ? ऐसा कौन-सा धर्म इन सब से पहले था जिसको संसार मानता था । वे कौन से सिद्धांत थे जिन पर सम्पूर्ण विश्व चलता था । इतिहास से इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि इस से पहले वेद थे और वैदिक धर्म । इस के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं था । वेदों की शिक्षा के केवल एक एक सिद्धांत को ले कर दूसरे धर्मों की स्थापना हुई है । पारसियों का धर्म केवल वेद के हवन-यज्ञ को ले कर खड़ा हुआ है । यहूदी केवल

गाय को पवित्र समझना ही सब कुछ समझ बैठे । हज़रत ईसा ने भी भारत में आ कर शिक्षा पाई थी ।

बौद्ध धर्म का आदेश है कि मैं प्रण करता हूं कि मैं किसी प्राणीको न मारूँगा—न मनुष्य को और न किसी पशु-पक्षी को ही । प्रत्येक प्राणी पर दया करूँगा और सहानुभूति रखूँगा । बुद्ध ने एक बार देखा कि कुछ छोटे लड़के मछलियों को सता रहे हैं तो आप ने उनसे पूछा कि तुम्हें पीड़ा से डर लगता है या नहीं ? उन्हों ने कहा, 'हां' । इन लड़कों को महात्मा बुद्ध ने इस प्रकार आदेश दिया कि जब तुम्हें पीड़ा से डर लगता है तो फिर तुम किसी को क्यों सताते हो ? कभी भी किसी छोटे से छोटे प्राणी को भी न सताओ । बौद्ध धर्म अपना जीवन निर्वाह करने के लिए ऐसा काम करने की आज्ञा नहीं देता जिस से दूसरों को दुःख पहुंचे, जैसे वध करना, शिकार खेलना, मांस बेचना आदि ।

बाइबिल (२१ । १८ व ३) में प्राणियों के विषय में कहा है कि क्या ही अच्छा होता यदि ईश्वर की कृपा से मानव जाति को यह विदित होता कि जो मनुष्यों पर बीतती है वही पशु-पक्षियों पर भी । दोनों का एक ही प्रकार का सुख-दुःख होता है । दोनों की मृत्यु एक ही प्रकार से होती है । सब में एक ही सांस चलती है । मनुष्य पशु-पक्षियों से उत्कृष्ट नहीं है, क्योंकि सब के सब एक ही स्थान पर जाते हैं और एक ही स्थान पर मिल जाते हैं । मनुष्यों की आत्मा ऊपर को जाती है और पशु-पक्षियों की नीचे को—यह कौन जानता है ?

सिक्ख धर्म में गुरु ग्रन्थ साहब का कथन है—

'जे रत लागे कपड़े जामा होवे प्लीत ।
जो रत पीवे मानसा तिन क्यों निर्मल चीत ।।
खूब खाना खिचड़ी जामें अमृत लूंण ।

हेर रोटी के कारणें गला कटावे कौन ॥
मांस मछली सुरा पान जो जो प्राणी खाये ।
यज्ञ दान जितने किये छोड़ रसातल जाये ॥'

सत्य को न मानना—यदि यह मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्राणी होने के लक्ष्य को समझता और सच्चे दिल से इस महापुरुष के आदेशानुसार चलता तो संसार में आधुनिक अशान्ति, लड़ाई, झगड़े, शत्रुता, वैर, विरोध तथा दूसरों के अधिकारों का अपहरण न होता और संसार में समझदार, सत्यवादी, दयावान् एवं सुखी मनुष्य दृष्टिगोचर होते। रोना तो केवल इसी बात का है कि हम जान-बूझ कर केवल कायरता से आसुरी गुणों से सम्पन्न होकर पूर्ण मनुष्य होने का गर्व करते हैं और संसार की आंखों में धूल डालने का प्रयत्न करते हैं। मनुष्य के इन बुरे कर्मों से संसार भरा पड़ा है। किन्तु हम वास्तविकता को अपने पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हुए केवल मांस खाने की हानियों का वर्णन करेंगे। इस प्रयत्न में हमारा लक्ष्य, जो मांस खाने को शारीरिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से ठीक समझते हैं उन लोगों के भ्रान्त मत को छुटाना है। इस लक्ष्य को सामने रखते हुए हम ने इस संशय को चार भागों में बांटा है। कहने को तो मनुष्य सब जीवों से उत्तम है। कुछ विशेषताओं में ठीक ही वह अपने आप को इस नाम से पुकारे जाने में ठीक अधिकार रखता है; परन्तु जब वह इच्छा रखता हुआ ठीक मार्ग पर चलने के लिए कठिनाईयों से घबरा कर अपने अभिप्राय को प्राप्त करने के उद्देश्य से बहाने बनाने के लिए तत्पर होता है तो पशु-पक्षी क्या वह राक्षस से भी अधिक असभ्य, लड़ाका और स्वार्थी सिद्ध होता है, इस लिए 'खूये बदरा बहाना बस्यार' को अपनाता हुआ केवल अपने मांस के टुकड़े के स्वाद और मानव इच्छा की पूर्ति के लिए मांसभक्षण के लिए प्रेरित होता है। इसी से आज लगभग हर देश

की समाज ने मांसभक्षण को समाजिक रूप से चलाना आरम्भ कर दिया है। मांसभक्षण के दोष अध्यात्मिक, धार्मिक, शारीरिक तथा आर्थिक दृष्टि से दिन के प्रकाश की भांति देदीप्यमान हैं। पर मनुष्य अपने स्वार्थ के कारण उन दोषों की ओर से सर्वथा अचेत है। कौन नहीं जानता कि

'रास्ती मूजब रज़ाये खुदा अस्त,
कस न दीदम कि गुमशुदा अज़ राहे रास्त ।

किन्तु लालची, कायर मनुष्य जान-बूझ कर इस ओर से आंखें मूँद लेता है। प्रादेशिक तथा धार्मिक दृष्टि-कोण की ओट में वह ऐसे काम कर बैठता है कि जिनका वर्णन करना भी कठिन है। ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि में प्राणियों के भेदों की संख्या हिन्दू शास्त्रों के अनुसार चौरासी लाख मानी जाती है और हिन्दुओं को इस मत पर पूरा विश्वास है। वे इक्कीस लाख स्थलचर, इक्कीस लाख जलचर, इक्कीस लाख नभचर (आकाश में उड़ने वाले) और इक्कीस लाख वनस्पतियां- इस प्रकार कुल चौरासी लाख योनियां मानते हैं। प्रकृति ने इतने प्रकार के जीव, अलग अलग रंग, रूप और स्वभाव के उत्पन्न किये हैं। कई तो दूरदर्शी यंत्रों के बिना दिखाई ही नहीं देते। हिन्दू जो चौरासी लाख योनियां मानते हैं, उन्हें योगविद्या, जप-तप, शौच, सत्य, शुद्ध बुद्धि और ईश्वरप्राप्ति के बिना जानना असम्भव है। किन्तु इस वैज्ञानिक युग में भी वैज्ञानिकों ने कई लाख प्रकार के प्राणी मालूम किये हैं। इस लिए जो धर्म चौरासी लाख योनियों पर विश्वास नहीं करते उन को यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिन प्राणियों को विज्ञान ने माना है वे ठीक हैं। दिन-प्रतिदिन नये नये प्रकार के जीवों का पता लगाया जा रहा है। इस लिए इन खोजों के अनुसार असंख्य प्राणी सृष्टि में रहते हैं। इन असंख्य प्राणियों में से मनुष्य अपने आप को सर्वोत्कृष्ट समझता है। अब प्रश्न यह होता है

कि इन विविध प्रकार के प्राणियों में क्या अन्तर है ? सब खाते-पीते हैं और अपने भोजन को पचाने के पश्चात् मल-मूत्र बाहर फेंक देते हैं। सब सांस लेते हैं। चलने, फिरने, विषयभोग, वंशवृद्धि में भी एक जैसे हैं और सब की इच्छा है कि अधिक समय तक जीवित रहें। आशय यह है कि किसी में रत्ती भर भी अन्तर नहीं। तो फिर मनुष्य सब से श्रेष्ठ किस कारण से है ?

यदि ध्यान से विचार किया जाय तो उत्तर मिलता है कि बुद्धि ईश्वर ने सबको एक समान नहीं दी है। मनुष्य पशु-पक्षियों से इसी बात में श्रेष्ठ है कि इसको ईश्वर ने बुद्धि प्रदान की है। यद्यपि इस में संशय नहीं कि बहुत से मनुष्य अपनी बुद्धि का दुरुपयोग भी करते हैं और उन के कार्यों से यह विदित होता है कि उन की बुद्धि पशु-पक्षियों से भी गई-बीती है। किन्तु प्रकृति की इच्छा तो यही मालूम होती है कि मनुष्य अपनी बुद्धि को भली ओर लगाकर पशु-पक्षियों की अपेक्षा अपने आप को उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करे। इस बुद्धि के सदुपयोग से ही मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्राणी कहलाने का अधिकारी है। साधारणतया अनुभव से देखा जाता है कि सब प्राणी एक दूसरे को खा कर निर्वाह करते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डारविन ने भी अपने प्रसिद्ध 'एवोल्यूशन' (Evolution) सिद्धांत को इसी अनुभव पर निश्चित किया है। उस के विचार में संसार में शक्तिशाली निर्बल को खा जाते हैं और स्वयं जीवित रहते हैं। अर्थात् (Survival of the fittest) सब से शक्तिशाली चीज़ ज़ीवित रहती है। किन्तु इस सिद्धांत को सब प्राणियों पर इस रूप में लगाना कि सब प्राणी प्राकृतिक तौर पर मांसाहारी हैं, वास्तविकता से बहुत दूर है। साधारणतया देखा गया है कि घास खाने वाले जीव भूख से तड़प कर भले ही मर जाएँ किन्तु मांस नहीं खायेंगे। जैसे ऊँट, हाथी, भैंस, गाय, घोड़ा, गधा,

बकरी आदि । इस से स्पष्ट है कि डारविन का सिद्धांत होते हुए भी प्रकृति का एक अटल नियम है कि प्रत्येक जीव का आहार प्रकृति की ओर से निश्चित है, जो शाकाहारी हैं वे मांस नहीं खा सकते और जो प्राकृतिक तौर पर मांसाहारी हैं वह केवल मांस ही खाते हैं ।

मनुष्य का दृष्टिकोण — मनुष्य को यह ठीक ठीक पता नहीं कि उसका आहार क्या है । यहाँ इस प्रश्न को सोचने के लिए बुद्धि से काम लेने की आवश्यकता है । बुद्धि और तर्क से यही सिद्ध होता है कि मनुष्य का आहार अनाज, फल, फूल, मेवे, खटाई, मिठाई इत्यादि हज़ारों प्रकार की वस्तुएँ हैं जो उसके लिए प्रकृति ने उत्पन्न की हैं । उनको उत्पन्न करने का अधिकार भी मनुष्य को ही दिया है । किसी दूसरे जीव को थोड़ा भी अधिकार नहीं दिया । मनुष्य के शरीर की बनावट हाथ, पैर और बुद्धि भूमि को ठीक करने, बोने, बीजने, सींचने, पालन-पोषण करने तथा हर समय की आपत्ति से बचाने में सामर्थ्य है, दूसरे प्रकार के जल, स्थल तथा वायु के जीवों को यह अधिकार नहीं दिया गया । न उन्हें अनाज की ही आवश्यकता है और न उनके शरीर की ऐसी व्यवस्था ही है कि वे यह काम कर सकें । मनुष्य के अतिरिक्त सब प्राणी प्राकृतिक भोजन का सेवन करते हैं । स्थल पर रहनेवाले मांसाहारी जीव अपने से निर्बल दूसरे जीवों (प्राणियों) को मार कर तथा नोच-नोच कर निगल जाते हैं । घास खानेवाले घास खाते हैं, वनस्पति खाने वाले वनस्पति खाते हैं; जैसे—हाथी, ऊँट, भेड़, बकरी आदि । पानी के जीवों का निर्वाह तो केवल अपने से निर्बल जीवों पर ही होता है । वे अपने से निर्बल दूसरे जीवोंको सारे का सारा (सम्पूर्ण) निगल जाते हैं । अब मनुष्य के आहार के विषय में फिर सोचिए । थोड़ी देर के लिए अनुमान कीजिए कि मनुष्य का

आहार मांस है तो फिर अनाज की आवश्यकता ही नहीं रहती, क्योंकि हिन्दुओं के दृष्टि-कोण से असंख्य प्रकार के जीव प्राकृतिक भोजन पर निर्वाह करते हैं। फिर इन सब की तुलना में मनुष्य का अस्तित्व ही क्या रह जाता है ? वह भी मांस खाये और जीवन निर्वाह करे। इसीसे वह सब झंझटों से छूट गया और डारविन का सिद्धान्त भी ठीक काम देगा। जो शक्तिशाली होगा, जीवित रहेगा। न विवाह की आवश्यकता, न घर बनाने की चिन्ता, न राजा की आवश्यकता. न मुकदमा करने का डर। आज-कल टैक्सों ने नाक में दम कर रखा है। इन सब से छुटकारा। किन्तु ऐसा जीवन पशु-पक्षियों का होगा, मनुष्यों का नहीं, क्योंकि इन के सब कार्य उनसे ही मिल जायेंगे। किन्तु नहीं, मनुष्य को मनुष्यत्व पर गर्व है और इसीलिये वह अपने आप को सर्वोत्कृष्ट जीव कहता है। अब देखिये कि सर्वश्रेष्ठ बनने के लिये किन-किन गुणों की आवश्यकता है। मनुष्य को इसलिये हाथ-पैर दिये गये कि वह खेती-बाड़ी करे, अनाज उत्पन्न करे, स्वयं खाये और दूसरों को भी खिलाये, बाग-बगीचे लगावे, उन की देख-भाल करे, फल-फूल स्वयं प्रयोग में लाये, दूसरों की आवश्यकताओं को उचित प्रकार से पूरा करे, प्रातः और सायं-काल उपासना से प्रभु का स्मरण करे, हृदय की पवित्रता और सच्चाई पर स्थित रहे, दूसरों को न सताए, किसी के अधिकारों का अपहरण न करे, अपनी शक्ति से कमा कर स्वयं खाये, परिवार का पालन-पोषण करे, यथाशक्ति अपने साथियों की विना वैरभाव और पक्षपात के सेवा करे, जीवों पर दया करे तथा उनके जीने का अधिकार ऐसा ही समझे जैसा कि अपना।

अब तनिक विचार कीजिये कि प्रकृति ने अन्न किस के लिये उत्पन्न किया है? उत्तर मिलता है कि मनुष्य के लिये, क्योंकि इसको बोने-बीजने का अधिकार इसी को है। यदि मनुष्य का

आहार मांस होता तो प्रकृति अनाज का झंझट न लगाती। मनुष्य की बुद्धि विशेष है, इसीलिये उसका आहार भी विशेष है। यदि मनुष्य मांस खाता है तो वह प्रकृति के नियम के विरुद्ध कार्य करता है। सोचिये कि मनुष्य ग़लती करता है अथवा प्रकृति ने ग़लती की जिसने मनुष्य को अनाज के बखेड़े में डाला.। किन्तु मनुष्य ने अनाज और फल-फूल के अतिरिक्त निर्दयता का मार्ग अपना कर जीवों को मार मार कर खाना भी आरम्भ कर दिया है।

बाइबिल का आदेश—इसके अतिरिक्त बाइबिल के आदेश को पढ़ें कि मनुष्य को भले-बुरे की पहचान कब और किस प्रकार से हुई। उसमें लिखा है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने पूर्व की ओर एक उद्यान लगाया और वहाँ आदम को रखा, जिसने उसे बनाया था और उद्यान के बीचों बीच जीवन के वृक्ष तथा भले बुरे की पहचान के वृक्ष को लगाया। ईश्वर ने उस वृक्ष का फल खाने से आदम और हव्वा (स्त्री) को निषेध किया। किन्तु सांप के बहकाने से हव्वा ने उस फल को खाया और अपने पति को भी खाने के लिये दिया। उसको खा कर दोनों की आँखें खुलीं और उनको मालूम हुआ कि हम नंगे हैं। उन्होंने अंजीर के पत्तों को सी कर अपने लिये लंगियां बनाईं। (आयत २-७, १४-१८)

बाइबिल के उपर्युक्त लेख से स्पष्ट विदित होता है कि भले और बुरे की पहचान जीवन के वृक्ष का फल खाने से ही हुई, जिसे ईश्वर ने भूमि से उगाया था, अन्यथा पहिले तो उसमें केवल पशु-पक्षियों के ही गुण थे। न उसे भले-बुरे की पहचान थी. न नंगेपन का ज्ञान था। अब पशु-पक्षियों का उदाहरण सामने ही है। इनका न भले-बुरे से संबंध है और न भलाई-बुराई से, केवल भोगयोनि में पड़े हुए जीवन निर्वाह कर रहे हैं। वे न उत्कृष्टता जानते हैं और न उनको प्रकृति ने ही यह समझ दी है। किन्तु दुःख की बात तो यह

है कि यह सर्वश्रेष्ठ कहलानेवाला मनुष्य मांसाहारी जीवों का भोजन करता है ?

धर्म के प्रवर्त्तकों के विचार—पुस्तक के आरम्भ में लिखा गया है कि वैदिक धर्म के सिद्धांन्त 'अहिंसा परमो धर्मः' का आदेश करते हुए दृढ़ता से सत्य का उपदेश करते हैं। बौद्ध और जैन धर्म भी पूर्णतया अहिंसा का प्रचार करते हैं। किसी छोटे से छोटे प्राणी को कष्ट न पहुँचाने के आदेश पर चलते हुए जैनियों के साधु तो मुँह पर पट्टी बांधते हैं, जिससे वायु में रहने वाले छोटे-छोटे जीव भी सांस की गर्म वायु से दुःख न उठाएँ। हिन्दुओं के कई सम्प्रदाय मनु-स्मृति और पुराणों का उद्धरण देकर मांसभक्षण करते हैं। वास्तव में मनु-स्मृति आदि पुस्तकों में वाममार्गियों के युग में ऐसे अशुद्ध श्लोक मिला कर लोगों के विचारों को ग़लत रास्ते पर लगाने का प्रयत्न किया गया है।

बाइबल में एक दूसरे से विपरीत बातें मिलती हैं। कहीं अहिंसा का पूरा उपदेश है तो कहीं बलिदान में लाखों भेड़ों का वध करना बताया गया है। कहीं मांसाहारी मनुष्यों को कबरों के समान बताया है तो कहीं पितरस की भूख मिटाने के लिये आकाश से एक चादर पर सब प्रकार के चौपाए, कीड़े-मकौड़े और वायु के पक्षी उतार कर उनको वध करने और खाने का आदेश मिलता है। कहीं ईश्वर के नाम पर वध करने को निषिद्ध बतलाया गया है और बताया है कि जो मनुष्य गाय और बैल का वध करते हैं, भेड़-बकरी हलाल करते हैं, मांस खाते और मदिरा पीते हैं, उनके बुरे कार्यों का फल उनके मरने तक पूरा न होगा और यह भी कहा गया है कि बैलों और बकरों का खून पापों को दूर न कर सकेगा। बाइबल और कुरान-शरीफ़ में जहां मांस खाने की आज्ञा दी गई है वहां सख्ती से निषेध भी किया गया है। इसी लिए आधुनिक युग का

इतना वध तो कदापि ठीक नहीं। स्थान स्थान पर बूचड़-खाने खुले हुए हैं और हज़ारों-लाखों जीव प्रतिदिन वध किये जाते हैं। मनुष्य को प्रत्येक दृष्टिकोण से उपर्युक्त बातों पर विचार करना चाहिए और पशुओं जैसी बुद्धि त्याग कर ऐसे तर्कों को मानना चाहिए जो शान्ति और सुख प्रदान कर सकें। इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य के लिए सब प्रकार से हितकर और स्वास्थ्यप्रद आहार अन्न ही है। यही उसका पवित्र भोजन है।

नोट नं (१) पवित्र और अपवित्र भोजन केवल इस बात से जाना जाता है कि जो चीज़ें भूमि से पैदा होती हैं, वे सब पवित्र हैं। इन में से कोई दुर्गन्ध वाली नहीं होती।

(२) जो चीज़ें वीर्य से पैदा होती हैं तथा मरने और मारने के पश्चात् दुर्गन्ध और रोग पैदा करने वाली हो जाती हैं, वे अपवित्र होती हैं।

(३) भूमि में खाद डाली जाती है और खाद मनुष्यों और पशु-पक्षियों के मलमूत्र और हर प्रकार की गंदगी राख, मिट्टी आदि से मिलकर बनती है। यह खाद सब अनाजों, फलों, सब्ज़ियों, फूलों आदि की खुराक का काम देकर सब को रंग बिरंगे रूप में परिवर्तित कर देती है और सब जीवों को एक नया जीवन प्रदान करती है। जबकि मांस जोकि पशुओं का भोजन है, शरीर को विषैला बनाकर दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। यहां तक कि शेर और चीता जंगल में जिस मार्ग से जाते हैं, अपने सांस से इतनी दुर्गन्ध मार्ग में छोड़ जाते हैं कि दूसरे जीव बहुत देर कर इस दुर्गन्ध से जान लेते हैं कि यहां से शेर, चीता आदि गये हैं। मांसाहारी यदि अपने पसीने को स्वयं सूँघे तो उसको मालूम होता है कि उसके पसीने में कितनी दुर्गन्ध है। वीर्य तक दुर्गन्ध वाला हो जाता है, इसलिए सब्ज़ियां शुद्ध हैं और मांस अशुद्ध।

नरक तथा स्वर्ग

नरक और स्वर्ग दो शब्द हैं, जिन से मनुष्य के हृदय में प्रसन्नता होती है अथवा वह बड़ी चिन्ता में डूब जाता है। मेरे विचार में संभवत: एक हज़ार में से एक मनुष्य भी यह जानने का प्रयास नहीं करता कि यह दोनों हैं क्या बला, जिनसे स्थायी शान्ति अथवा स्थायी दु:ख होता है। इन दोनों शब्दों का अर्थ स्थायी सुख अथवा दु:ख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य अच्छे काम करे, जिनसे ईश्वर की सृष्टि को सुख हो, तो उस को अपने भविष्य के लिये सुख की ही आशा करनी चाहिए, क्योंकि वह सुख के बीज बो रहा है। किन्तु जो मनुष्य निर्दयता के बीज बो रहा है—कहीं अण्डे तोड़ता है, कहीं मुर्गी मारता है, फिर बकरे, भेड़, गाय, भेंस इत्यादि को मार कर डकार जाता है—वह स्थायी सुख की आशा कैसे कर सकता है ? इसी प्रकार जब मनुष्य समझ को खोकर पूर्णतया पशुओं के से गुण अपने अन्दर उत्पन्न कर लेता है तो चोरी, डाके आदि में प्रवृत्त हो कर दूसरों को दु:ख देने लगता है। भला, यह काम भलाई के हैं ? यदि यह कार्य भलाई के हैं तो बुराई के कौन से हैं ? बीज बोने बुराई के और आशा रखे स्वग की—यह दोनों बातें एक दूसरे के विपरीत हैं। मनुष्य कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। चाहे वह कुछ भी करे, किन्तु इस बात को ध्यान में रखे कि यदि स्वर्ग की इच्छा है तो काम भी वैसे ही करे,

अन्यथा नरक तो रखा ही है। मन में चाहे प्रसन्न होता रहे किन्तु इसको वही चीज़ मिलेगी जो वह बोयेगा। शेख सादी ने कहा है कि—

अज़ मकाफात अमल ग़ाफिल मिशौ।
गन्दम अज़ गन्दम वरवेद जौ अज़ जौ।।

अर्थात् अपने कर्मों से अचेत मत रह, क्योंकि गेहूँ से गेहूँ उत्पन्न होता है और जौ से जौ।

★

बलिदान की समस्या

हिन्दुओं से आरम्भ—हिन्दुओं में कुछ सम्प्रदायवाले विशेष अवसरों पर मन्दिरों में बकरों का बलिदान करते हैं। इस बात की खोज करने से पूर्व यह बात जाननी आवश्यक है कि यह बुरी प्रथा संसार में किस प्रकार प्रारम्भ हुई। खोजियों के अनुसार इसको आरम्भ करने वाले वाममार्गी हैं। सच्चे बलिदान के कुछ ऐसे उदाहरण भी हिन्दू राजाओं में मिलते हैं जिन्होंने अपने आप को बड़ी से बड़ी परीक्षा के लिए तैयार किया और अपने एकमात्र पुत्र तक का बलिदान देने में भी संकोच नहीं किया। यह तो इस प्रकार की घटनाएँ हैं जिन से संसार को यह शिक्षा मिलती है कि संसार में ऐसे भी व्यक्ति हो चुके हैं, जिन्होंने अपने इष्टदेव के चरण-कमलों में सर्व-प्रिय वस्तु भी अर्पण कर दी। एक ही लड़का होते हुए भी और इस बात का विचार न करते हुए भी कि हमारा वंश नष्ट होता है और उसका नाम संसार से मिट रहा है, उसे अपने हाथों से ईश्वर के अर्पण कर दिया। आज इन घटनाओं को हुए हज़ारों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, किन्तु ऐसे वीर महानुभावों के नाम आकाश में तारागणों की भांति अब भी देदीप्यमान हो रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि बलिदान का आरम्भ ऐसी ही घटनाओं से हुआ। इस बात पर तो वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं कि बलिदान का सिद्धांत हिन्दू ग्रन्थों से बाइबल में पहुँचा। एक प्रसिद्ध

डाक्टर अर्थमली ने भी अपनी पुस्तक में सिद्ध किया है कि ईसाई धर्म का स्रोत बौद्ध धर्म है। वे कहते हैं कि बौद्ध प्रचारक अशोक के पश्चात् सिकदरिया में आये थे। हिन्दुओं के ग्रन्थों में राजा मोरध्वज और राजा सरयाल आदि के द्वारा अपने एकमात्र पुत्र के बलिदान की बात मिलती है। इसी प्रकार बाइबल में हज़रत इब्राहीम द्वारा अपने एकमात्र पुत्र अज़हाक़ के बलिदान का उल्लेख है। कुरान शरीफ़ में इब्राहीम के स्थान पर हज़रत इब्राहीम और पुत्र के नाम इज़हाक़ के स्थान पर इस्माइल-अल्-अस्सलाम देखा जाता है। इस प्रकार इन बलिदानों का आदिस्रोत हिन्दू ग्रन्थ हैं। किन्तु दूसरे धर्म वालों ने भी इसकी नकल की है और इस नकल ने वास्तविकता को बदल दिया है। इसी कारण बलिदान का वास्तविक लक्ष्य बदल गया है। वाममार्गियों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये बकरे आदि वध करने आरम्भ किये थे। उनकी देखा-देखी दूसरे हिन्दुओं ने भी ऐसा ही करना आरम्भ कर दिया। किन्तु यह बहुत सीमित है, साधारणतया हिन्दू इस प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और यह प्रथा दिनों-दिन कम हो रही है। इस प्रथा को कम करने में ईसाई धर्म ने प्रशंसनीय कार्य किया है, क्योंकि इसने बलिदानों को जारी नहीं रखा, अपितु यह कहा कि हज़रत यीसू मसीह संसार भर के बलिदानों का पाप ले कर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। इस लिये ईसाइयों को अब और बलिदान देने की आवश्यकता नहीं रही। वास्तविक तथ्य चाहे कुछ भी हो, इसमें संशय नहीं कि बलिदान के सिद्धांत का इससे अच्छा निपटारा नहीं हो सकता था।

सबसे अधिक बुरे रूप में बलिदान की प्रथा मुसलमानों में है। उन्होंने तो असल की ऐसी भद्दी और बुरी नकल की है जिससे लाखों जीव प्रति वर्ष मारे जाते हैं। मुसलमानों की यह प्रथा है कि ये लोग बहुधा, भेड़, बकरी अथवा दुंबा का बच्चा लेकर एक वर्ष

तक उसे खूब पालते हैं और वह जितना हृष्ट-पुष्ट होता है उतना प्रसन्न होते हैं। आशय यह है कि मोटे-ताज़े एक वर्ष के जानवर का मांस निर्बल बूढ़े जानवर की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ठ होगा। ध्यान दीजिये इस स्वार्थप्रियता पर एक जीव की सेवा किस धोखे से की जाती है। बकरे को अच्छा से अच्छा भोजन दीजिये, किन्तु खिला-पिला कर उसको शेर के पिंजरे के निकट बांध दीजिये। ऐसी अवस्था में उस पर कदापि अच्छे भोजन का कोई प्रभाव न पड़ेगा। जो शक्ति प्रदान करने वाला भोजन उसके शरीर में पहुँचेगा, डर और भय से उसका लगभग उतना ही खून सूखता रहेगा और वह कदापि हृष्ट-पुष्ट न हो सकेगा। जानवर मनुष्य के प्रेम के धोखे में आ कर उसको अपना सच्चा रक्षक समझता है, किन्तु यह स्वार्थी मनुष्य उसे मृत्यु देकर उसके प्यार का बदला चुकाता है। क्या इसी का नाम न्याय है ?

मुसलमानों का दृष्टिकोण—मुसलमान अपने धार्मिक सिद्धान्तों को प्राकृतिक कहते हैं, किन्तु यह सिद्धान्त तो प्रकृति के नियमों से पूर्णतया विपरीत है। संसार में सब प्राणी जीवित रहने के इच्छुक हैं। इसीलिये जीने देना स्वाभाविक है और मार डालना अस्वाभाविक और अप्राकृतिक। इन निर्दोष जीवों को तो समय से पहले और अप्राकृतिक मृत्यु के लिये विवश किया जाता है और इनकी निर्दोषिता का कोई ख्याल भी नहीं करता। मैं इसलाम धर्म के समझदार अनुयायियों से अपील करता हूँ कि वे इन मूक तथा निर्दोष जीवों की आवाज़ को सुनें और इन भद्दे और नकली बलिदानों को समाप्त करके इस की वास्तविकता को ससार के सामने प्रस्तुत करें। क्या इसलाम धर्म वाले संसार में ऐसा एक भी उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं जिसे प्रकृति ने उत्पन्न करके अमर जीवन दिया हो। यदि किसी ने किसी समय कोई बलिदान किया भी

हो तो इससे यह परिणाम क्यों निकाला जाय ? क्या प्रकृति का कोई दूसरा सिद्धान्त मौजूद है ? यदि नहीं तो यह सदा के नकली बलिदान किस प्रकार उपयुक्त ठहराये जा सकते हैं।

मैं अब इन बलिदानों का ब्योरेवार वर्णन करता हूँ, जिन्होंने वास्तव में बलिदान दिए और जिनके कारण उन्हें आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त हुई वह बलिदान उन्होंने स्वयं दिए। अपनी इन्द्रियों को वश में करके इन्हों ने सच्चे बलिदान का नमूना संसार के समक्ष प्रस्तुत किया। किन्तु आधुनिक बलिदान जो निरपराधों के खून से होते हैं वे शरीर को कँपा देने वाले हैं। बध करने वाला स्वयं अपने आप से यह प्रश्न करे कि क्या वह मरना चाहता है ? संसार में यदि किसी को सबसे बड़ा दण्ड देना हो तो वह फांसी अर्थात् मृत्युदण्ड है। यदि किसी को मारना भी पुण्य का कार्य है तो दुःख देने वालों के लिए सबसे बड़ा दण्ड और क्या शेष रह जाता है, क्योंकि अपने जीवन को बचाने के लिये ही तो मनुष्य संसार में नीच से नीच कार्य करता है और जीवित रहने के लिये हर (प्रत्येक) विपत्ति को सहने के लिये तय्यार रहता है। जैसे प्राचीन युग में गुलामों का व्यापार होता था और मनुष्य जिनको गुलाम अर्थात् दास कहा जाता था, वे जानवरों के समान बेचे जाते थे। उनसे इस प्रकार काम लिया जाता था कि वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी वे मरने की अपेक्षा जीवित रहना अच्छा समझते थे। कुरानशरीफ में भी ऐसी आयतें मौजूद हैं, जिनसे उचित और अनुचित हर प्रकार के उपायों से जीवन को बचाना ठीक बताया गया है। स्वरा बकराह आयत न ९६३ में कहा है—

"इसने तुम पर बस मरा हुआ जानवर और खून तथा सूअर का मांस हराम किया है, किन्तु जो भूख से व्याकुल हो जाय उस पर ऊपर लिखी चीजें भी हलाल हैं।"

स्वरा इनाम आयत नं १२० कहती है—"जो वस्तुएँ ईश्वर ने तुम पर हराम की हैं, उसने व्योरेवार वर्णन कर दी हैं। इन में मृत जीव सम्मिलित नहीं हैं किन्तु भूख आदि के कारण तुम उन्हें खाने पर विवश हो जाओ तो वह भी हराम नहीं हैं"।

इसलिए जिस जीवन को बचाने के लिए मनुष्य बुरे से बुरा काम कर सकता है और ऐसा करने के लिए उसको धार्मिक स्वतन्त्रता भी है, ऐसे जीवन को यदि किसी सुनहरी सिद्धान्त पर वलिदान कर दे तो वह वास्तव में बड़ा भारी बलिदान होगा। ऐसे कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं।

अभी हम यह स्पष्ट करते हैं कि किस कारण बलिदान के सिद्धांत को दूसरे धर्मों वालों ने हिन्दू ग्रन्थों से लिया और वास्तविकता को किस प्रकार निकम्मे और भद्दे रूप में परिवर्तित किया हिन्दू ग्रन्थों में राजा शरयाल के वलिदान का उल्लेख है जो इस प्रकार है।

एक वार नारद मुनि हाथ में वीणा लेकर परमात्मा के गुण गान करते महादेव जी के निकट पहुंचे और कहा "भगवन्, मैंने इतने लोक देखे हैं, किन्तु काशी नगरी के राजा शरयाल-जैसा अतिथि-सत्कार करने वाला शिवभक्त नहीं देखा। शंकर भगवान् ने यह सुनकर भक्त की परीक्षा लेनी चाही और अपना रूप अघोरी-जैसा बना कर शरयाल के दरबार में पहुंच कर भोजन माँगा। राजा ने कई प्रकार के भोजन खाने को दिए, किन्तु उन्हों ने उन में से कोई स्वीकार न किया। अन्त में राजा बहुत उदास होकर पूछने लगा, "महाराज! मेरे पास जो वस्तु है मैंने आप के समक्ष रख दी है, किन्तु आप नहीं खाते। अब आप आज्ञा दें कि मैं आप की किस प्रकार भूख शान्त करूँ।" अघोरी महाराज ने कहा कि हम तेरे एकमात्र पुत्र का मांस खाएंगे। रानी और तुम दोनों मिलकर उसका

मांस हमारे भोजन के लिए तय्यार करो।"

इस बात को यदि कोई साधारण मनुष्य सुन पाता तो उस को अपनी सुध-बुध न रहती। किन्तु राजा शरयाल और उसकी रानी ने, जिन्हों ने अपना सब कुछ भगवान् शिव के चरणों में अर्पण करके यह निश्चय किया हुआ था कि कोई अतिथि उन के घर से निराश न लौटे, अपने अतिथि की इस कठोर आज्ञा को बिना माथे पर बल डाले सुना और उन्हों ने अपने एकमात्र पुत्र का मांस अपने अतिथि के लिए अपने हाथों से तय्यार करके अघोरी के आगे रख दिया। भगवान् आशुतोष यह सब लीला देखकर मन ही मन बहुत आनन्दित हुए और अपने भक्त की अतिथिपूजा की परीक्षा करते रहे।

जव रसोई उन के आगे रखी गई तो वह यह कह कर वहां से लौटने को तय्यार हुए कि जिस घर में पुत्र न हो उसका भोजन हम नहीं पा सकते। अपने अतिथि को इस प्रकार उठते देखकर राजा और रानी घबरा गये। उन्होंने संकट-मोचन भगवान् शिव से संकट निवारण के लिये प्रार्थना की। बस, वह कुरूप अघोरी उसी समय शिवरूप में परिवर्तित हो गये और बोले, "तुम अपने पुत्र को ज़ोर से बुलाओ।" राजा रानी ने ऐसा ही किया और भक्त-वत्सल भगवान् की अपार दया से उनका मरा हुआ पुत्र पहले से भी अधिक सुरूप और उज्ज्वल रूप में उन के सामने आ कर खड़ा हो गया। काशी नगर में सब प्रकार आनन्द ही आनन्द बरसने लगा। कहते हैं, इसी समय एक उज्ज्वल विमान वहां उतरा और राजा, रानी तथा उन के पुत्र को लेकर कैलाश को चला गया।

बाइबल में बलिदान का वर्णन—(ईसाइयों के बलिदान की पैदायश-अब २२) इन बातों के पश्चात् ऐसे हुआ कि ईश्वर ने इब्राहीम की परीक्षा की और उससे कहा, "ओ इब्राहीम!" इब्राहीम

बोला कि मैं उपस्थित हूं। तब ईश्वर ने कहा कि तू अपने एक, मात्र पुत्र असहाक़ को, जिसे तू प्यार करता है, लेकर भोरियाह में जा और उसे पहाड़ों में से एक पहाड़ पर जो मैं तुझे बताऊँगा, बलिदान के लिए चढ़ा। इब्राहीम तड़के उठा और अपने गधे समेत तैयार हुआ। साथ में दो युवकों और इसहाक को लिया। उसने सोख़तनी कुरबानी की लकड़ियां चीरीं और उठ कर उसी स्थान पर चला जहां जाने को ईश्वर ने उसे कहा था। तीसरे दिन जब इब्राहीम ने अपनी आँख उठा कर उस स्थान को दूर से देखा तब उसने अपने युवकों से कहा, "तुम यहाँ गधे के पास रहो। मैं इस लड़के के साथ वहां तक जाऊगा।" फिर उसने लकड़ियां लेकर अपने पुत्र असहाक पर रखीं और अग्नि तथा छुरी अपने हाथ में ली और दोनों साथ साथ चले। तब असहाक़ ने अपने पिता इब्राहीम से कहा, "पिता जी।" उसने उत्तर दिया, "हां, मेरे पुत्र! मैं उपस्थित हूँ।" पुत्र ने कहा कि देखिये, आग और लकड़ियां तो मौजूद हैं किन्तु बलिदान के लिये बर्रा कहां है? इब्राहीम ने कहा, "ईश्वर स्वयं अपने लिये बलिदान में बर्रे की व्यवस्था करेगा।" बस, वे दोनों साथ २ चले और उस स्थान पर पहुँचे जिसके विषय में ईश्वर ने उन्हें कहा था। तब इब्राहीम ने वहां वध करने के लिये स्थान बनाया लकड़ियां चुनीं और अपने पुत्र असहाक़ को बांध कर लकड़ियों के ऊपर रख दिया। इब्राहीम ने अपना हाथ बढ़ा कर छुरी ली कि अपने पुत्र का वध करे। उसी समय ईश्वर के दूत ने उसे आकाश से पुकारा, "ओ इब्राहीम! ओ इब्राहीम!!" वह बोला, "मैं हाज़िर हूँ।" फिर उसने कहा, "तू अपना हाथ पुत्र पर न बढ़ा और इसे कुछ न कर, क्योंकि अब मैं समझता हूँ कि तू ईश्वर से डरता है। इसलिये कि तू ने अपने एकमात्र पुत्र को मेरे लिये वध करने में भी संकोच नहीं किया।" तब इब्राहीम ने अपनी आंखें उठाईं और

अपने पीछे एक मेंढ़ा देखा, जिस के सींग झाड़ी में अटके थे। इब्राहीम ने जा कर उस मेंढ़े को लिया, उसे अपने पुत्र के बदले बलिदान के लिये चढ़ाया और उस स्थान का नाम यहवायरी रखा। इसलिये आज तक कहा जाता है कि ईश्वर के पहाड़ पर देखा जायगा। बाइबल ने बलिदान के विषय में-६-७-४० जबूर में कहा है—"वध को तू ने नहीं चाहा, तूने मेरे कान खोले, सोख़तनी कुरबानी (वैध बलिदान) तथा ग़लत कुरबानी की तुझे आवश्यकता नहीं।"

यसियाह नवी १५-१४-१३-१२-११-१०व—ऐ सदूम के शासको! ईश्वर का आदेश सुनो। ऐ अमूरा के लोगो! हमारे ईश्वर के आदेशों पर ध्यान दो। ईश्वर कहता है, तुम्हारे बलिदानों की अधिकता से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं। मेढ़ों के बलिदान से तथा बछड़ों की चरबी से मैं सन्तुष्ट हूँ और बैलों, भेड़ों तथा बकरियों का रक्त नहीं चाहता। जब तुम मेरे सामने आ कर अपने आप को दिखलाते हो तो कौन तुम से यह चाहता है कि मेरे निवास-स्थानों को रौंदो। अब आगे को झूठे वायदे न करो। झूठ से मुझे घृणा है। नये चांद, सबत और ईदी जमायत से भी कि मैं ईद और बेदीनी को सहन नहीं कर सकता हूं। मेरा मन तुम्हारे नये चांदों और ईदों से दुःखी है। वह मुझ पर एक बोझ है। जब तुम अपने हाथ फैलाओगे तो मैं तुम से छिप जाऊँगा। जब तुम प्रार्थना करोगे तो मैं न सुनूँगा, तुम्हारे हाथ तो रक्त से भरे हैं।

(यसिहानवी ब १३-१४)— किन्तु देख प्रसन्नता और खुशहाली है। और गाय तथा बैल का वध करते हैं, भेड़ बकरी हलाल करते हैं, मांस खाते हैं और मदिरा पीते हैं कि आओ खायें और पीयें, क्योंकि कल तो हम मर जायेंगे। ईश्वर ने मेरे कान में कहा कि तुम्हारे इन बुरे कार्यों का बदला तुम्हारी मृत्यु तक पूरा न होगा। ईश्वर यही कहता है।

मती २७-२८ व २३—धोखे देने वाले लोगो ! दुःख है कि तुम सफेदी फिरी हुई क़ब्रों के समान हो जो ऊपर से तो रूपवान् दिखाई देती हैं किन्तु अन्दर हर प्रकार की हड्डियां और गंदगी भरी हुई हैं। इसी प्रकार तुम भी ऊपर से तो भले मालूम होते हो किन्तु अन्दर से झूठे, स्वार्थी, धोखा देने वाले तथा अधर्मी हो।

ईसाइयों का तो यह भी सिद्धान्त है कि हज़रत ईसा संसार भर के पापों को स्वयं लेकर सूली पर शहीद हो गये। इस लिये अब बलिदान की आवश्यकता नहीं रही। उन्हों ने इस बुरी प्रथा को छोड़ दिया है। अब बलिदान नहीं करते।

मुसलमानों में बलिदान—कुरान-शरीफ से—(स्वरा हेवानात अ० ३ आयत नं० १०१ से १०८ तक) हज़रत इब्राहीम पुत्र के बलिदान का वर्णन है, जिस की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"व्याख्या करने वालों ने बड़े बलिदान से वह मोटा ताज़ा दुंबा समझा है जो इस्माईल-अलय-अस्सलाम के बदले में स्वर्ग से ईश्वर ने वध करने के लिये भेजा था। हमारा ध्यान इस ओर गया था कि सम्भवतः बड़े बलिदान से बकरीद के बलिदान का आशय हो। यह भी सुन्नते-इब्राहीमी है।"

दुःख का विषय है कि बलिदान के सम्बन्ध में क़ुराने करीम के शब्दों के कोई निश्चित आदेश न देने पर भी इसलाम धर्म के अनुयायियों ने इन शब्दों को इतने ज़ोर से माना कि जिससे असंख्य प्राणी प्रतिवर्ष मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मुसलमान, बलिदान को सुन्नते इब्राहीमी मानते हैं और इस का उल्लेख बाइबल में भी आता है। जैसा कि ईसाइयों के आदेश शीर्षक विषय में बलिदान के सम्बन्ध में अलग दिया गया है।

बलिदान के हाल बाइबल और कुरान शरीफ दोनों में एक जैसे नहीं हैं। बाइबल में लिखा है कि जब इब्राहीम ने अपने पुत्र

असहाक को छोड़ दिया तो पीछे एक मेंढ़ा देखा, जिसके सींग झाड़ी में अटके थे और कुरानशरीफ में लिखा है कि बलिदान होने वाले तो इस्माइल-अलय-अस्सलाम थे। पर ईश्वर ने मोटा ताज़ा दुंबा स्वंग से बलिदान होने के लिये भेजा।

केवल इतनी ही भिन्नता बाईबल और क़ुरान के लेखों में नहीं हैं, जो एक खोजी के मन में संशय उत्पन्न करती है, अपितु मुसलमानों का यह विश्वास कि स्वंग में जीव सदा जीवित रहते हैं, दुंबा की कथा को मान लेने में अड़चन पैदा करता है। यदि ईश्वर ने इस दुंबे को स्वंग से वलिदान करने के लिये भेजा था तो यह निश्चित होता है कि स्वर्ग का जीवन भी सदा के लिये न हो कर क्षणभंगुर हैं। इस लिये या तो स्वर्ग में अमर जीवन वाला विश्वास ग़लत ठहरता है अथवा वह दुंबा स्वंग से नहीं भेजा गया और बलिदान के विषय मे कुरान शरीफ के आशय को ही ग़लत समझा गया है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी उल्लेखनीय है कि जिस पुत्र का हज़रत इब्राहीम वलिदान देने को तैयार हुए थे वह उनका एक-मात्र पुत्र था। इससे यह कहना ठीक नहीं कि सम्भव है असहाक़ और इस्माइल दो भाई हों। जिनमें से एक का वर्णन बाइबल में हुआ है और दूसरे का कुरानशरीफ़ में। यह बात इस कथा के विषय में भी सन्देह उत्पन्न करती है।

सच्चाई को जानने वालों के लिये बलिदान का विषय, मनुष्य को वड़ी परीक्षा में डालना ही प्रतीत होता है। किन्तु इसलाम के अनुयायियों ने तो अपने आपको परीक्षा में डालने के स्थान पर ऐसे बहुत लाभकारी प्राणियों को, जिनका अस्तित्व और मनुष्य जीवन एक दूसरे पर निर्भर हैं, अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये, स्वतन्त्र रूप से वध करना ही बलिदान का आशय समझा है। इस पर भी

सन्तुष्ट न होते हुए उन्हों ने इस स्वतंत्र बलिदान को एक प्रसन्नता के त्यौहार का बड़ा भाग बनाया है और इसे स्वंग में जाने का एक साधन समझा है। सच है, किसी की जान गई, आपकी अदा ठहरी।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन निरपराध प्राणियों को स्वर्ग के द्वार की एक 'मैगनिट लाइन (मैगनिट लाइन का आशय वह लाइन है जो फ्रांस और जर्मनी की सीमा पर जर्मनी से बचाव के लिये फ्रांस ने तैयार की थी) के प्रकार की कोई लाइन समझा गया है और इस मैगनिट लाइन को तोड़ने का यही उपाय समझा गया है कि इन मूक प्राणियों का खून बहाया जाय। इस लिये वह धर्म आरम्भ से इस समय तक असंख्य निरपराध प्राणियों का खून बहा चुके हैं, किन्तु इतने असंख्य बलिदानों के होने पर भी अभी मैगनिट लाइन नहीं टूटी। कुछ कमज़ोर अवश्य हो गई है। इसके पूरे तौर पर टूटने का भी एक उपाय है और वह यह कि इसलाम एक परिर्वतन करने वाला धर्म है। यदि ईश्वर इन पर कृपा करें और भारत की सारी जनसंख्या को मुसलमान बनाने की व्यवस्था कर दें तो बिना किसी विशेष प्रयत्न के यह सब जानवर शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे।

भारतवर्ष में सबसे बड़े नगरों में वध किये जाने वाले जानवरों की संख्या एक आदमी के पीछे एक की है। भारतवर्ष में मनुष्यों की जनसंख्या ४० करोड़ के लगभग है, क्योंकि जानवरों की संख्या केवल ३/४ के लगभग होगी इसलिये एक वर्ष से कम समय में वह इन के चटोरपन के काम आ जायेंगे। फिर सारी समस्या का समाधान हो जायगा। और इस प्रकार मुसलमान धर्म भारतवर्ष के सब लोगों को स्वर्ग में भेज देगा, क्योंकि सांसारिक कार्य तो

वैसे ही समाप्त हो जाएँगे। न हल चलाने के लिये बैल रहेंगे न दूध देने को गायें, भैंसें और बकरियां। केवल ईश्वर का नाम ही शेष रह जायगा। मैं विनय-पूर्वक मुसलमानों के समझदार लोगों से अपील करता हूँ कि वह केवल थोड़े से बड़े २ नगरों में बूचड़-खानों में वध होने वाले जीवों की संख्या को ले कर मनुष्यों की जनसंख्या से मुकाबला करे कि यह सब कुछ सत्य पर आधारित है अथवा केवल एक ढकोसला है और फिर वह इन घटनाओं पर ठण्डे दिल से विचार करें। आधुनिक युग का यह इतनी बड़ी संख्या में जीवों का प्रतिदिन का बलिदान मूर्खता पर ही आधारित नहीं है अपितु मेरे पास वह शब्द नहीं जिन से इन दुष्कृत्यों को लिख सकूँ। ऐसी बेहूदगी तो मानुषी बुद्धि से बहुत दूर और पशुओं से भी गई गुजरी है। मैं पूछता हूँ कि यदि ईश्वर इन जानवरों का शत्रु है और इनके वंश को नष्ट करना चाहता है तो क्या उसमें यह शक्ति नहीं कि इन्हें एक क्षण में नष्ट कर दे। निर्दयी, मूर्ख लोग उस महान् शक्ति को अपनी अज्ञानता से बदनाम कर रहे हैं।

★

हिन्दुओं के देवी-देवताओं की भेट

अब मैं हिन्दुओं के मन्दिरों में बकरे आदि झटकाने के विषय में लिखना भी आवश्यक समझता हूँ। इस सम्बन्ध में मेरे एक मुसलमान मित्र ने मेरा ध्यान आकर्षित कराया था कि कलकत्ते में काली देवी के मन्दिर में और ज्वालामुखी के मन्दिरों में बकरे काटे जाते हैं। इसके अतिरिक्त शिमला के किसी मन्दिर में देवी पर भैंसे का बलिदान दिया जाता है और कुल्लू पहाड़ी की ओर झोटे को नदी पर बलिदान किया जाता है। गढ़वाल के इलाके में भी भैंसे को कई घाव लगाकर बुरी तरह घायल करके मारा जाता है।

ये सब बातें सत्य हैं। बलिदान के नाम पर जीवों को दुःख देना मूर्ख लोगों का काम है। यदि उन लोगों से, जो बलिदान के लिये जीवों का वध करते हैं, पूछा जाय कि देवी देवता का अर्थ क्या है तो वे यह भी नहीं बता सकेंगे। वे तो लकीर के फकीर हैं, जो काम पिता ने किया पुत्र भी उसको करता है। किन्तु इसलाम धर्म ने तो इस प्रथा को उच्च शिखर तक पहुंचा दिया। यदि अनुमान कर लें कि भारत वर्ष के पचास मन्दिरों में बलिदान होते हैं और प्रत्येक मन्दिर में प्रति वर्ष ५० बकरे मारे जाते हैं। तो वर्ष भर में २५०० बकरे मारे गये और यदि १०० बकरे प्रत्येक मन्दिर में गिने जावें तो ५००० हुए। किन्तु मुसलमानों को तो एक मनुष्य के पीछे एक जीव का बलिदान देना चाहिये अथवा सात मनुष्य मिलकर एक

बड़े पशु का बलिदान करें। इस प्रकार से भारत वर्ष के आठ करोड़ मुसलमानों को आठ करोड़ जानवरों की आवश्यकता है। मूक प्राणियों का वध, चाहे वह देवताओं के लिये हो अथवा दूसरों के लिये, किसी प्रकार भी उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। अपनी जिह्वा के स्वाद के लिये और अपने पेट को भरने के लिये निरपराध, मूक और निहत्थे जीवों को मौत के घाट उतार कर देवी देवता अथवा ईश्वर को, जो संसार भर के पवित्र ग्रंथों के अनुसार जानदार और बेजान सब के स्वामी और रक्षक हैं, प्रसन्न करने की आशा करना न केवल मनुष्य का स्वार्थ है अपितु भयंकर अंध-विश्वास है जिसका परिणाम संसार के लिये आध्यात्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक पतन के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता और दुःख तो यह है कि सब कुछ धर्म के नाम पर हो रहा है। टट्टी की आड़ में शिकार खेल कर धर्म को बदनाम करने वालो ! आपकी यह इच्छा है कि इस जीवन में तो मूक जीवों का वध करके अपने पेट भरें और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग के भागोदार बनें। यह केवल मन को प्रसन्न करने की बातें हैं। विश्वास रखो कि स्वर्ग या नरक को किसी ने नहीं देखा। हां, आपके यह कुकर्म इस संसार को अवश्य नरक बना रहे हैं और दिन-प्रतिदिन इन अत्याचारों के कारण संसार के दुःखों में भयंकर रूप से वृद्धि हो रही है।

मुहर्रम से सम्बधित हृदय विदीर्ण करने वाला दृश्य प्रतिवर्ष संसार के समक्ष प्रस्तुत करके मानव निर्दयता तथा ऐंद्रीय सुख के लज्जास्पद परिणाम की याद दिलाते हैं। लगातार कई दिन तक ढ़ोल पिटवा कर गद्य तथा पद्य में रो रोकर दुःख मनाया जाता है। क्या ही अच्छा होता यदि ऐसी भावनाएँ भूक प्राणियों के लिये भी उत्पन्न हो सकतीं । मैं समझदार मुसलमानों से पूछता हूं कि वह कौन सा शब्द-कोष है जिस में अत्याचार शब्द के अर्थ मनुष्यों

और पशु-पक्षियों के लिए अलग-अलग दिये गए हैं। सब प्राणियों के शरीर को दु:ख-सुख समान रूप से होता हैं। केवल अपने दु:ख को दु:ख समझकर शोर मचाना और दूसरे के दु:ख पर प्रसन्नता दिखाना, कहां का न्याय है ? बड़प्पन की कसौटी समझ है और समझ बलिदान का आशय समझने में असमर्थ है। कुरान शरीफ़ की यह आयत देखिये —"और जो प्राणी आकाश और पृथ्वी पर हैं वे सब ही तो ईश्वर को मानते हैं।" (स्वरा उलहदीद अ० – १० १७ आयत नं० १)

हिन्दू बलिदानों में कमी – हिंदुओं की इस बुरी प्रथा के विषय में तो यह बात है कि मैंने इस पुस्तक में कई हिंदू विद्वानों के विचार लिखे हैं, जिन्हों ने ऐसे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाई है और लोगों से अपील की है। अपने विचारों को उन्हों ने व्याख्यानों तथा लेखों द्वारा जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। इस के परिणामस्वरूप बहुत से मन्दिरों में बलिदान बिल्कुल बंद हो गये हैं। शिमला के पहाड़ी प्रदेश में जहां ब्राह्मणों, राजपूतों तथा कनैतों आदि के विवाह पर बकरे झटकाये जाते थे, अब पूर्णतया बंद हो गये हैं तथा जिन मंदिरों में जानवर मारे भी जाते हैं वहां इस के विरुद्ध अंदोलन जारी हैं, जिस से इन अत्याचारों को पूर्णतया बंद किया जा सके। जो लोग समाचारपत्र पढ़ते हैं उन्हें इन बातों का ज्ञान है। इस पुस्तक में केवल हिन्दुओं के नहीं अपितु ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका और रूस आदि विदेशों के डाक्टरों की पुस्तकों के उदाहरण भी दिये गये हैं, जिन्हों ने सख़्ती से मांस खाना बन्द करने की अनुमति दी है। किन्तु संसार के दूसरे डेढ़, पौने दो अरब मनुष्यों की जन-संख्या में और मुसलमानों की २०-२१ करोड़ जन-संख्या में इतना अन्तर अवश्य है कि कम से कम मेरी दृष्टि में तो कोई ऐसी पुस्तक किसी मुसलमान डाक्टर अथवा

विद्वान् की नहीं आई जिसने मांस खाने को बुरा समझा हो। यह उनकी अत्यन्त संकुचित धार्मिक भावनाओं के कारण हो सकता है। ऐसे मौलवियों के लेख तो मौजूद हैं कि जिनके अपने शरीर पर यदि एक घाव लग जाय तो रो रो कर और चिल्ला कर आकाश सिर पर उठा लेंगे और डाक्टर को इलाज के लिये बेचैन कर देंगे, किन्तु किसी भले मानुष को यह साहस नहीं होता कि वह जनता के समक्ष मांस खाने की बुराइयों के विषय में एक शब्द भी मुख से निकाल सके। कोई ऐसी पुस्तक लिखना तो दूर की बात है।

मनुष्य अपनी जिह्वा के स्वाद और पेट भरने के लिये तो यह पाप करते हैं और ईश्वर पर आरोप भी लगाते हैं। इस प्रकार एक नहीं अपितु दो अपराध करते हैं। एक तो दूसरे का जीवन लेना और दूसरे ईश्वर पर आरोप लगाना। सर्वशक्तिमान् ईश्वर के लिये सब प्राणी एक समान हैं। जब ईश्वर को कोई दण्ड देना होता है तो केवल पशु-पक्षियों को ही नहीं अपितु मनुष्यों को भी भुगतना पड़ता है। तनिक प्रकृति के खेलों को देखें कि जिसने एक दो मिनट के अन्दर ही अन्दर क्या से क्या कर दिया। अप्रेल सन् १९०५ में कांगड़ा जिले में भूकम्प आया और बीस हज़ार मनुष्य और हज़ारों जानवर दबकर मर गये, बिहार प्रान्त और मंगोलिया में भी भूकम्प आया, जिससे हज़ारों मनुष्य और दूसरे जीव मर गये। कोइटे में भूकम्प आया तो वहां भी हजारों प्राणियों का वही हाल हुआ। सन् १९३२ में उत्तरप्रदेश प्रान्त में बहुत वर्षा के कारण गंगा नदी में बाढ़ आई जिससे हजारों मनुष्य तथा पशु-पक्षी पानी की भेंट हो गये। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। यदि इसे पाप ही करना है तो ईश्वर पर आरोप लगाकर दो पापों का भागी क्यों बनता है?—खाये, पीये और मज़े करे और इस बात को ध्यान में न रखे। शेख शादी ने कहा है—

"हर आँके दर जहां तुख़्म बदी किशत वा चश्म नेकी दाश्त ।
दिमाग़ बेहूदा पुख़्त व उमीद बातल बस्त ।"

अर्थात् जिस किसी ने संसार में बुराई का बीज बोया और भलाई की आशा रखी उसने व्यर्थ ही मस्तिष्क पकाया और झूठी आशा बांधी ।

अब में कुछ उदाहरण देता हूं जिन्हों ने वास्तव में बलिदान दिये हैं और जिनके नाम संसार में सूर्य के समान चमकते हैं और चमकते रहेंगे। बलिदान करने वालों के लिये ये बहुत अच्छे उदाहरण हैं ।

भीष्म पितामह—भीष्म पितामह, जिनका असली नाम देवव्रत था, हस्तिनापुर के राजा शान्तनु के पुत्र थे । उन्हों ने पांच वर्ष की आयु में महर्षि परशुराम तथा अपनी माता की देख-रेख में शिक्षा ग्रहण की। छोटी आयु में ही भीष्म पितामह की प्यारी माता जी का स्वर्ग वास हो गया और इनके पिता राजा शान्तनु उदास रहने लगे। एक बार इनके पिता की दृष्टि एक नाविक की कन्या पर पड़ी और वह उस पर मोहित हो गये। राजा नाविक के घर गये और उससे कहा कि अपनी लड़की का विवाह मुझ से कर दो। नाविक ने राजा के सामने यह शर्त्त रखी कि इस लड़की के गर्भ से जो सन्तान होगी वही राजगद्दी की अधिकारी होगी । राजा ने यह शर्त्त तो न मानी, किन्तु वे उस दुःख में उदास रहने लगे। अन्त में देवव्रत ने अपने पिता जी से उदास रहने के कारण का पता लगाया और स्वयं नाविक के पास गये। नाविक ने फिर वह शर्त्त दुहराई । देवव्रत जी ने कहा कि मैं राज्य और राजगद्दी से अलग होने की प्रतिज्ञा करता हूँ । नाविक ने कहा कि यदि आप राजगद्दी स्वीकार न भी करेंगे तो भी आपकी संतान राजगद्दी की अधिकारी होगी। इस पर राजकुमार ने एक और प्रतिज्ञा की । अपने पिता

की इच्छा को पूरा करने के लिये अपने जीवन के आराम और सुखों का उन्हों ने बलिदान कर दिया और संसार में सब इच्छाओं से बड़ी सन्तान की इच्छा का भी त्याग कर दिया। यह एक बलिदान था, जिस को वास्तव में बलिदान का नाम दिया जा सकता है। इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही उनका नाम 'भीष्म' पड़ गया। उन्हों ने यह प्रतिज्ञा की कि वे आजीवन विवाह न करायेंगे और न उनके सन्तान ही होगी। इस लिए अपने पिता जी की इच्छा को पूर्ण करने के लिए भीष्म जी आजीवन ब्रह्मचारी रहे और राजपाट अपनी धर्म की माता जी की संतान के लिए छोड़ दिया।

गुरु गोविन्द सिंह जी का बलिदान—श्री गुरु गोविन्दसिंह जी का प्रसिद्ध बलिदान भी उस समय तक आदर से पढ़ा जायगा जब तक संसार की सत्ता रहेगी। धम की रक्षा के लिये वे स्वयं बलिदान हो गये और अपने पिता जी को बलिदान करा दिया। यही नहीं, उन के चार पुत्रों में से दो युद्ध में मारे गये तथा दो दीवार में चुन कर मरवा दिये गये। गुरु साहब की माता जी पुत्रों के मरने का दु:ख सहन न कर सकीं और छत से गिर कर स्वर्ग सिधार गईं। इस प्रकार उनकी तीन पीढ़ियां पूर्णतया बलिदान हो गईं। बलिदान हर मनुष्य से नहीं दिया जा सकता। इस भट्ठी पर वही चढ़ सकते हैं जो समझदार हों, शक्ति-शाली हों विद्वान् हों, धनवान् हों और ईश्वर का डर मानते हों तथा जो अपनी इन्द्रियों को ही सुख देने वाले न हो कर संसार में भलाई करने आये हों। इन्द्रियों के दास, अज्ञानी लोग जानवरों के वध को बलिदान कहते हैं और इस पर भी आश्चर्य यह कि उसे पुण्य का कार्य समझते हैं यद्यपि उनकी धार्मिक पुस्तकें इस के विपरीत उपदेश करती हैं। ऐसी बुरी प्रथा को बन्द करने के लिए इन के धर्म में समझदार लोगों का कर्त्तव्य है कि वे बलिदान के ठीक अर्थ को समझें और अपने थोड़े समझदार

भाइयों को समझायें । यदि वध करना पुण्य है तो पाप क्या है ? प्रत्येक प्राणी जीने का इच्छुक है। वधिक स्वयं अपने मन से प्रश्न करे कि क्या वह मरना चाहता है ? मारने वाले में यदि यह शक्ति नहीं कि दूसरे को जीवन प्रदान कर सकें तो क्या उसका इस कर्म के विषय में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि इसे करने से वह अपने अधिकारों के विपरीत चलता है और प्रकृति के कार्य में विघ्न डालता है। प्रकृति के नियम के विपरीत कार्य करने का परिणाम किसी से छिपा नहीं है। प्रत्येक ऐसा करने वाले को अपने बुरे कर्म का दुष्परिणाम भुगतने के लिये तैयार रहना चाहिए। कुरान-शरीफ भी यही कहता है कि जब मारने और जीवित रहने का कार्य उस सर्वशक्तिमान् ने अपने हाथ में रखा है तो हम उसके कार्यों में विघ्न डालने वाले कौन होते हैं।

बलिदान के विषय में मैं ने कई उदाहरण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किये हैं। ये सब बलिदान अपने २ अनेकों गुणों से विभूषित हैं, जैसे—राजा मोरध्वज और राजा शरयाल की कथा। इन राजाओं ने भगवान् की भक्ति में मग्न हो कर अपने एकमात्र पुत्रों की बलि दे कर अतिथिसेवा का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत कर दिखाया। भीष्म पितामह का बलिदान, जिन्हों ने अपने पिता के सुख के लिये राज-पाट को ठुकरा दिया, स्वयं इन्द्रियों का दमन करने की प्रतिज्ञा की और सारी आयु ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किये रहे, सच्चे बलिदान का दूसरा उदाहरण है। भारत में जब घोर अन्धकार फैला हुआ था, न स्त्रियों का सतीत्व सुरक्षित था, न धर्म, न धन, ऐसे समय में गुरु गोविन्द सिंह जी का प्रादुर्भाव हुआ जिन्हों ने अपनी तीन पीढ़ियां बलिदान कर दीं। अब मैं इस के आगे और बलिदानों के उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ :—

एक बूढ़े मुसलमान की कहानी—दो प्रसिद्ध मल्ल थे। उनमें एक था ईसाई, दूसरा था मुसलमान। उन दोनों का मल्ल युद्ध एक उद्यान में परकोटे के भीतर बहुत लोगों के सामने हुआ। शर्त यह थी कि जीतने वाला मल्ल दूसरे की हत्या कर दे। दौनों में काफ़ी समय तक तरह तरह के दाव-पेच होते रहे। अन्त में ईसाई मल्ल ने मुसलमान मल्ल को मार गिराया और तलवार से उसकी छाती को चीर दिया। इस दृश्य को मुसलमान जनता सहन न कर सकी और वह ईसाई मल्ल को मारनेके लिये दौड़ी। मल्ल जान बचाने के लिए आगे-आगे दौड़ा, पीछे पीछे लोग भागे जा रहे थे। आगे एक दीवार पड़ी। मल्ल ने उसके निकट कोई वस्तु पड़ी देखी उसके सहारे वह दीवार के ऊपर से बाहर कूद गया। इस भय की अवस्था में उसने लोगों की भीड़ से बचने के लिये बाहर एक गढ़ा देखा, जिसके आस-पास बहुत से सूखे पत्ते पड़े हुए थे। वह झट-पट गढ़े में लेट गया और उसने अपने ऊपर सूखे पत्ते शीघ्रता से ढाँप लिये। इतने में भीड़ भी वहां आ पहुँची। लोग इधर उधर देख रहे थे कि अभी तो वह यहां था, इतनी जल्दी कहां चला गया। भीड़ में से एक आदमी ने गढ़े में पत्ते हिलते देख लिये और उसने शोर मचाया कि गढ़े में पत्ते हिल रहे हैं, मल्ल इनमें छिपा है। मल्ल शोर सुन कर गढ़े से निकल कर भागा। आगे-आगे वह और पीछे-पीछे लोगों की भीड़ भाग रही थी। अन्त में वह एक गांव के निकट पहुंचा। उस ने एक बूढ़े को अपने द्वार पर खड़े देखा और उससे आश्रय के लिए प्रार्थना की। बूढ़े ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसे भीतर जाने के लिये संकेत किया। वह झट उस घर के भीतर घुस गया। इतने में लोग भी वहां आ पहुँचे। उन्हों ने बूढ़े से पूछा कि क्या यहां से कोई हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति गया है? बूढ़े ने कहा, "नहीं"। तत्पश्चात् उस मल्ल ने सारी बात उस बूढ़े

को सुना दी। जो मल्ल मारा गया था वह बूढ़े का एकमात्र पुत्र था, यह हाल सुन कर बूढ़ा बहुत दु:खी हुआ और सटपटाया। उसने कहा—"ओ अत्याचारी! तू ने मेरे पुत्र को मार डाला है। तू ने मेरा सारा जीवन नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। तुझे मैं आश्रय देने का प्रण कर चुका हूँ अन्यथा तुझे मृत्यु के घाट उतार देता।"

बूढ़े का क्षमा करना प्रशंसनीय ही नहीं अपितु उच्च कोटि का वलिदान है, जिसने अपने जीवन की अत्यन्त दु:खदायी घटना को सहन करते हुए मल्ल को आश्रय दे कर अपना वचन पूरा किया। यह वलिदान का चौथा दृष्टान्त है।

हज़रत अली का एक दास से मल्ल युद्ध—एक बार हज़रत अली का एक दास से मल्ल युद्ध हुआ। उन्हों ने उस दास को मार गिराया। इस से पहले कि वह उसे मारने के लिए तलवार निकाल कर वार करते, दास ने हज़रत के मुख पर थूक दिया। हज़रत साहिव ने तलवार एक दम रोक ली और दास को छोड़ दिया। दास ने जीवन दान करने का कारण पूछा तो हज़रत साहिव ने उत्तर दिया, मैं ने मल्ल युद्ध ईश्वर के आदेशानुसार किया था और उसके अनुसार तुझे मार देना ठीक था। किन्तु तू ने मेरे मुख पर थूक दिया। इसलिये यदि मैं तलवार चलाता तो बदला लेने की भावना से तुझे मारता, इस लिये बजाय पुण्य के पाप का भागी होता। इसी कारण मैं ने तुझे न मार कर स्वतन्त्र कर दिया है। यह बलिदान का पांचवां उदाहरण है।

जिन लोगों ने भारत के स्वतन्त्रता युद्ध में अंग्रेज़ी साम्राज्य को समाप्त करने के लिये बलिदान दिये और हँसते-हँसते अपना जीवन न्यौछावर कर दिया वे लोग बलिदान के लिये उल्लेखनीय हैं। उनमें से कुछ व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—

सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम, सूर्यसेन, भगत सिंह, जितेन्द्रदास

श्रीमती दुर्गा देवी, राजगुरु, सुखदेव, राम प्रसाद विस्मिल, भगवती चरण, रोशन लाल, राजेन्द्र लाहड़ी, मुश्ताक अली शाहजहांपुर वाले, कन्हैया लाल, श्रीमती सुशीला देवी। इनके बलिदानों का विवरण जानने के लिये 'स्वतन्त्रता के इतिहास' का अध्ययन करना चाहिए।

बलिदान का आशय है निर्बल को बचाना, अत्याचार को समाप्त करना और अपने देश को रक्षा के लिये जीवन न्यौछावर कर देना।

आधुनिक युग के महान् बलिदानी वीर महात्मा गान्धी—बलिदान तो पहले भी बहुत लोगों ने दिये, किन्तु महात्मा गान्धी ने जो आश्चर्य-जनक कार्य अपने जीवन में किये और जिस योग्यता तथा सफलता से उन्हों ने काम किया उसका उदाहरण मिलना कठिन है। यह उन्हीं को ईश्वरदत्त योग्यता का परिणाम था कि अहिंसा का जो मार्ग उन्हों ने अपनाया उसे पूर्ण सफलता मिली। महात्मा गान्धी में विशेष और असाधारण गुण थे। दूसरों के अपराधों तथा उनकी त्रुटियों को दूर करने के लिये वे उपवास करके स्वयं उनका दण्ड भोगते थे। ऐसे भाव प्रकृति ने उन्हीं को दिये थे। इसी से उन्हें बलिदान देने वालों में बहुत ऊँचा दर्जा प्राप्त है। उन्हों ने भारत सरकार को गणतन्त्र के नियमों पर ढालने का प्रयत्न किया। उन्हों ने सब धर्मों के लोगों—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिखों को एक जाति बनाने में बड़ा योग दिया। उन्हों ने स्वयं अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए भी हिंसा पर चलने वालों से प्यार और स्नेह से काम लिया। भारत की दासता की बेड़ियों को काट गिराया। टालस्टाय ने, जो रूस के बहुत प्रसिद्ध लेखक तथा विद्वान् हो चुके हैं, मांस खाना और तम्बाकू पीना बन्द कर दिया। यह सब महात्मा गान्धी के सम्पर्क में आने का परिणाम

था। टालस्टाय ने फिर शाक-सब्ज़ी खाने पर कई लेख लिखे। सन् १६१० में महात्मा गान्धी से टालस्टाय का पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ, जिसमें अहिंसा के सिद्धांत पर भी विचार-विमर्श हुआ। अहिंसा की शिक्षा प्रेम और मेल-जोल का ही आदेश देती है। ज्यों ही प्यार में बल सम्मिलित हुआ कि प्यार जीवन का नियम नहीं रहता और प्रेम का कोई भी नियम न होने के कारण वहां हिंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता, इस का अर्थ है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। इसलिए हिंसा और अहिंसा में उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव का सा अन्तर है। महात्मा गांधी ने आरम्भ से अन्त तक अहिंसा पर चलते हुए सफलतायें प्राप्त कीं।

नवम्बर सन् १६५७ के आरम्भ में रूस की सरकार ने एक बनावटी चांद (स्पूटनिक) छोड़ा था, जो पृथ्वी से ६०० मील की ऊंचाई पर दो महीने से अधिक तक चक्कर काटता रहा। उसने पृथ्वी के चारों ओर बारह सौ से अधिक चक्कर काटे। प्रयोग के तौर पर यह देखने के लिये कि इतनी ऊंचाई पर कोई प्राणी जीवित रह सकता है या नहीं एक लाइका नाम का कुत्ता स्पूटनिक नं० २ में भेजा गया जो जीवित वापिस नहीं आया। इसके जाने और वापिस न आने पर ब्रिटेन में बहुत नाराज़गी प्रदर्शन की गई। वहां के लोगों ने सहस्रों पत्र रूस के विदेश विभाग को भेजे और शिकायत की कि एक मूक जीव को इस परीक्षा में क्यों डाला गया। सारी की सारी अंग्रेज़ जाति ने इस प्रयोग के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई। ध्यान देने योग्य बात है कि इस कुत्ते का प्रयोग सारे संसार के लिये था फिर भी करोड़ों मनुष्यों ने दया के कारण इसे बुरा समझा। केवल एक कुत्ते के जीवन समाप्त होने से ब्रिटेन के लोगों को इतना दुःख हुआ और इटली में उसका स्मारक बनाया गया। किन्तु संसार के आरम्भ काल से ही मांसाहारियों के स्वाद के लिये असंख्य

जीवों को मृत्यु के घाट उतारा जा चुका है। प्रश्न यह है कि इन मांसाहारियों के मन पर इतने मूक प्राणियों के वध होने का क्या प्रभाव पड़ा। मुसलमानों तथा ईसाइयों का इन प्रतिदिन के बलिदानों में सब से अधिक भाग है। धर्मों के और नियम तो कम ही माने जाते हैं किन्तु बलिदान और जिह्वा के स्वाद अभी तक मौजूद हैं, जिन के कारण करोड़ों जीवों का जीवन ख़तरे में है।

संसार की रूप-रेखा और उसके काम-काज में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। संसार के विविध धर्मों की प्रथाओं में भी बहुत बड़ी अदल-बदल हुई है, मुसलमानों के सब देशों में मौलवियों की संकुचित भावनाएँ होने पर भी पर्याप्त परिवर्तन हो चुके हैं। उदाहरणार्थ (क) परदा की प्रथा जा रही है। (ख) जनता के देन-लेन की सुविधा के लिये बैंक खुल गये हैं (ग) मदिरा पीने की प्रथा कम हो गई है (घ) चित्र बनने लग गये हैं, जैसे कि सौ-सौ के रुपये के नोटों पर मिस्टर जिन्नाह का चित्र है। (ङ) मूर्खता के नियम—जैसे चोरी करने वाले के हाथ-पांव काट देना, आंखें निकाल देना अथवा स्त्रियों के साथ बुरा काम करने वालों को धीरे धीरे तड़पा कर मार डालना—संसार से मिट गये हैं। किन्तु मुसलमानों की यह प्रथा अभी पूरी तरह से अड़ी हुई है और असंख्य प्राणी धर्म के नाम पर बलिदान किये जा रहे हैं।

जीवों के वध के विषय में तुरकी के नेता मुस्तफ़ा कमाल पाशा का यह सुझाव जो 'इण्टर नैशनल रिव्यू ऑफ रिलिजन्स' के जुलाई सन् १९२६ के अंक में प्रकाशित हुआ था, बहुत शिक्षा-प्रद था। मुसलमानों का सब से पवित्र तथा बड़ा त्यौहार ईद है, जब संसार भर के मुसलमान मक्का में एकत्रित हो कर यह उत्सव मनाते हैं। उनका सुझाव यह था कि ईद पर जीवों का वध न किया जाय और जो रुपया इस प्रकार बचे वह नैशनल एयरोप्लेन कारपोरेशन को

वायुयान ख़रीदने के लिये दिया जाय।

इस विषय में तुरकी के एक मुसलमान समाचार-पत्र ने लिखा है कि एक धर्म, जिस में परिवर्तन की कोई संभावना नहीं और हर अवस्था में एक ही रहेगा, आवश्यक तौर पर मरेगा। आज सब धर्मों ने सहस्रों वर्ष पुरानी प्रथाएँ बदल ली हैं और समय तथा आवश्यकता के अनुसार उन्हें नया रूप दिया है। यह जीवों को वध करने की प्रथा मनुष्य के अज्ञान के समय से चली आ रही है। किन्तु आज हमारी अवस्था इतनी शोचनीय नहीं कि हम अपने भय या कृतज्ञता को जीवों के बलिदान से प्रकट करें। अब समय आ गया है कि यह बलिदान की प्रथा समाप्त कर दी जाय। दस शताब्दियां हुई जब लोगों ने नरबलि को असभ्यता कह कर बन्द कर दिया था। इसी प्रकार मनुष्य अब इतनी उन्नति कर चुका है कि यह बलिदान बेकार है। यह अज्ञानता के समय की प्रथा है।

मेरी यह प्रार्थना है कि देश के मुसलमान भाई इस विषय पर विशेष ध्यान दें।

★

मांस खाने के पक्ष में एक मौलवी साहिब की दलीलें और उनका खोखलापन

मैं ने एक पत्रिका मौलवी अलादीन साहिब वाज़ लुधियानवी की, जो उन्होंने 'कदामत कुरबानी' के नाम से लिखी थी, पढ़ी है। उन्होंने एड़ी से चोटी तक ज़ोर लगा कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बलिदान प्राचीन समय से ही चले आते हैं और यह प्रथा सर्वथा उचित है। मैं उनके तर्कों का प्रत्युत्तर नीचे देता हूँ --

प्रश्न (१)—उन्होंने पत्रिका को 'बिस्मिल्ला उर्रहमान उर्रहीम' लिख कर प्रारम्भ किया है।

उत्तर—'बिस्मिल्ला उर्रहमान उर्रहीम' का तो अर्थ है कि अल्लाह ताअला कृपालुओं से भी कृपालु है। परन्तु इस वाक्य का प्रयोग किया जाता है पशुओं के वध के लिये। इसी लिये मौलवी साहब के सजातीय महानुभावों ने दया के बदले प्रति दिन लाखों पशुओं का वध करके क्रूरता की नदी बहा दी है। यदि वध करना ही दया है तो मौलवी साहिब बतलायें कि क्रूरता या अत्याचार किसे कहते हैं ? मालूम होता है, भगवान् की सारी दया को वधिकों पर ही न्यौछावर करके उनकी जीविका का द्वार खोल दिया गया है।

प्रश्न (२)—वे लिखते हैं कि तू (ईश्वर) दूध पीते बच्चों

को माताओं की गोद से निकाल कर भूमि पर सुलाता है और माता-पिता को बच्चों की देख-भाल के बजाय मृत्यु दे कर मिट्टी में मिलाता है। ऐसा होने पर भी तेरा यह कार्य अत्याचार नहीं कहलाता।

उत्तर—यदि मौलवी साहिब आवागमन के सिद्धान्त को समझते तो उनके सब संशय दूर हो जाते, मन में शान्ति होती और उन के मन से ईश्वर के अत्याचार का विचार निकल जाता।

प्रश्न (३)—तेरी प्रकृति के नियम में मांस खाने की प्रथा हम दिन-रात अपनी आंखों से देखते और अनुभव करते हैं। तेरे उत्पन्न किये हुए शेर और चीते, बाज़ और भेड़िये आदि तेरा दिया हुआ ताज़ा-ताज़ा मांस खाते हैं। हमारे सर्वशक्तिमान् स्वामी! इससे तेरी पैदा की हुई सृष्टि में मांस खाने की प्रथा सिद्ध होती है।

उत्तर—मौलवी साहिब ने मांसाहारी पशुओं के उदाहरण से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जब प्रकृति ने ऐसे जीव उत्पन्न किये हैं तो मनुष्य ही इनके अनुसार काम करने से क्यों डरता है। विश्व के सब धर्मों ने मनुष्य को अच्छे काम करने और सहनशील हो कर रहने की शिक्षा दी है। अर्थात् जिस प्रकार के व्यवहार के लिये वह स्वयं ईश्वर से प्रार्थना करता है उसे भी सब प्राणियों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। हर एक धर्म अपने अनुयायियों को इन नियमों पर चलते रहने के लिये उपदेश करने में गर्व अनुभव करता है। क्या प्रकृति ने इन हिंसक जीवों को उपदेश देने के लिये कोई व्यवस्था की है? इस के विपरीत इनका रूप, इन के दांत, पंजे और शरीर की आन्तरिक व्यवस्था इस प्रकार की है जो इन कामों के लिये सर्वथा उपयुक्त है। पहले तो जो प्राणी इनके पंजे में एक बार फंस जाता है, वह एक दम मूर्छित हो जाता है। ऐसी अवस्था में उन्हें किसी प्रकार से नोचने,

फाड़ने अथवा खाये जाने में दु:ख नहीं होता। मनुष्यों को क्लोरोफार्म सुंघा कर बड़े से बड़े मस्तिष्क तक के आपरेशन किये जाते हैं। मांसाहारी पशुओं में प्रकृति ने यह गुण रखा है। मनुष्यों के पास बकरियों, भेड़ों आदि के रेवड़ रहते हैं। क्या मौलवी साहिब का यह विचार है कि यह जीव मनुष्य को अपना शत्रु तथा वधिक समझ कर रहते हैं? नहीं, ये मनुष्य को अपना रक्षक समझ कर उसका आदेश मानते हैं। यदि मौलवी साहिब इस बात से सहमत न हो तो वह भेड़िये आदि किसी जानवर को ऐसे भेड़-बकरियों के रेवड़ में छोड़ कर देख लें। यदि मौलवी साहिब में साहस हो तो वह किसी शेर के पिंजरे में घुस कर देखें कि उन्हें अपनी सुध-बुध रहती है या नहीं।

इस के अतिरिक्त मनुष्य को प्रकृति ने ऐसा मस्तिष्क तथा हाथ-पैर दिये हैं जिन से इस ने तोप, बन्दूक, तलवार, बरछी, बम्ब और कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र तैयार करके जल, स्थल और वायु में कहीं भी जानवरों को उन से बचने का अवसर नहीं छोड़ा। मौलवी साहिब तनिक मस्तिष्क और बुद्धि से काम लें कि यदि इन मांसाहारी पशुओं की संख्या भी संसार में इतनी ही अधिक होती जितनी कि मनुष्यों की है और ये भी बहुतसे इकट्ठे हो कर मांस के लिए घूमते फिरते तथा प्रकृति इन को भी ऐसे ही अस्त्र-शस्त्र बनाना और उन का प्रयोग करना सिखा देती तो मौलवी साहिब का अस्तित्व कहां रह ? तब तो सम्पूर्ण विश्व का अस्तित्व समाप्त हो गया होता। उस अवस्था में मनुष्य, पशु-पक्षी आदि कुछ भी न होते, केवल मांसाहारी पशु-पक्षी ही दृष्टिगोचर होते। वास्तव में मांसाहारियों की बुद्धि अपने मांसाहार के कारण बिगड़ चुकी है और उन को सोते, जागते, स्वप्न आदि में भी सब मरे हुए ही दिखाई देते हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि यदि उस ने ऐसे

मनुष्यों को उत्पन्न किया है तो उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करे जिससे वे समझ से काम लेकर सचाई और दया का मार्ग अपनायें।

प्रश्न (४) —खुदावन्द, जब तेरे कार्यों से और तेरी मंशा से तेरी उत्पन्न की हुई सृष्टि में तेरा ही नियम मांस खाना सिद्ध करता है तो तेरे कानूनी कलाम में जो लोगों को आदेश के रूप में है और तेरी तरफ़ से तेरे नबियों को मालूम हुई हैं, मांस खाने का आदेश हो तो इस का इनकार मूर्खों और ईश्वर की प्रकृति को न मानने वालों के अतिरिक्त कौन कर सकता है? यह तो आवश्यक ही है कि तेरे कार्य भी तेरे आदेशों के अनुकूल ही होने चाहियें। अतः जिस कलाम, किताब अथवा पोथी को तेरा नाम दिया जाता हो और वह तेरी प्रकृति के नियमों के विरुद्ध तेरे लोगों को शिक्षा दे वह किताब या पोथी तेरी ओर से कदापि नहीं हो सकती, क्योंकि तेरे कार्यों और आदेशों में कोई असमानता होना असम्भव है। ईश्वर, तेरी सृष्टि में मांस खाने की प्रथा आरम्भ काल से ही है और यह नियम तेरे ही बनाये हुए हैं। यह जानवरों के उदाहरण से स्वयं स्पष्ट है।

उत्तर —जिन पुस्तकों को आप 'आस्मानी पुस्तकें, कहते हैं वे सब वेदों के पीछे की हैं। एक का सम्बन्ध दूसरे से मिलता है। हिन्दुओं से बौद्ध धर्म और बौद्ध धर्म से इसाई धर्म प्रभावित हुआ। कुरान शरीफ़ तो प्रायः आधा बाइबल से मिलता जुलता है। वेदों में मांस खाने की आज्ञा नहीं। वेदों के पश्चात् जो भी पुस्तकें या पोथियाँ बनी हैं, यदि उन की शिक्षा वेदों के विपरीत है तो ऐसी पुस्तकें वास्तविक में ग़लत मार्ग पर चलाने वाली ही कहलायेंगी। हज़रत यीशू-मसीह के शहीद हो जाने के पश्चात् जो-जो बलिदान, उन देशों में थे भी, वह एक दम बन्द कर दिये गये। मौलवी साहिब प्रकृति के नियम को मांस खाने के पक्ष में प्रस्तुत

करते हैं। क्या मांसाहारी पशुओं में भी हराम और हलाल की समस्या है ? मांसाहारी पशुओं के लिए चाहे वह उन्हें मार कर खाये अथवा मरे हुए को खाये, वह रक्त, हड्डी, पसली सब खा जाते हैं। उन को तो पेट भरना है। हराम और हलाल की उन्हें कोई पहचान नहीं जो मांस खाने को अनुपयुक्त बताती है, जैसे प्रकृति ने वास्तविक मांसाहारियों के लिए सब मांस हलाल रखे हैं।

मसलये[1] हरामो हलाल तू परख तराज़ु ए इन्साफ़ पर।
मालूम ये असूल पड़ता बनावटी खिलाफ फितरत[2] के नज़र॥
शिकार और मुरदार इन को दोनों ही मरग़ूब[3] हैं।
खा जाय ये तो दरिन्दे जो भी आये इन की चोट पर॥
करते नहीं हैं रहम ये कमज़ोर व बीमार पर।
वरना बियाबां[4] में नहीं कोई हस्पताल या डाक्टर॥

तू खा सब्ज़ी और अनाज गर चलता है फितरत[5] के असूल पर।
हर जानदार को सताना है बुरा तू कर न कश[6] अपनी ज़मीन पर॥

अकले सलीम[7] खूबिये इन्सान है।
जो है इस से ख़ाली वह निरा हैवान है॥
काम दरिन्दों का है इन्सान को हराम।
सौंपा जो उन को काम है इन्सान को हराम॥

जो बशर हैं गरदनों को काटते
खून हैवानों[8] का करते चाटते।
आदमी उन को समझना है फिज़ूल
वह बशर एजेंट हैं शैतान के॥

---

1. प्रश्न, समस्या। 2. प्रकृति। 3. मज़ेदार। 4. जंगल। 5. प्रकृति। 6. हिंसा। 7. नेक। 8. आदमी। 9. पशुओं।

ज़ुल्म से लबरेज़[1] गर खूराक है
नफ़सपरवर[2] और दिल नापाक है ।
हम नहीं उस को समझते आदमी
ज़िन्दगी ऐसे बशार की ख़ाक[3] है ।।
चन्दरोज़ा ज़िन्दगी के वास्ते
क्यों उठाता बोझ नादां पाप के ।
कब ख़ुदा को वह बशर होगा अज़ीज़[4]
पेट में ही जो बनाए मकबरे[5] ।।
अकल को अपनी तराज़ू त बना
हक्क[6] व नाहक्क[7] का हल कर सवाल ।
तर्क[8] कर दे ऐ बशर कुफ़्र[9] व हराम
तब तुझे समझेंगे हम नुतफा-हलाल[10] ।
खुश करेगा उस की जो मखलूक[11] को
उस पे खुश होगा हमेशा जिल्लो-जलाल[12] ।
रख मुसाबी[13] तू नज़र हर एक पर
अक़ल दिल पर फिर न आवेगा ज़वाल[14] ।।

प्रश्न (५)—मनुष्यों के बलिदान और जगन्नाथ के पहियों के नीचे दब कर मर जाना, काशी में आरे से कट जाना, जल-प्रवाह अर्थात् गंगा में डूब कर मर जाना, स्त्रियों का पति के साथ सती हो जाना आदि प्रथाएँ हिन्दुओं में ही पाई जाती हैं ।

उत्तर—पिछली शताब्दी में जिस रूप में ये प्रथाएँ संसार के

---

1. भरी हुई । 2. इन्द्रियपरायण । 3. मिट्टी । 4. प्यारा । 5. कब्रिस्तान । 6. सही । 7. गलत । 8. छोड़ना । 9. बदमाशी । 10. अपने पिता का पुत्र । 11. सृष्टि । 12. भगवत्कृपा । 13. समान, एक-सी । 14. ह्रास, कमी ।

समक्ष थीं अथवा जैसा मौलवी साहिब ने उनको समझा है, वह वैदिक शिक्षा के विरुद्ध है। किसी अच्छी से अच्छी शिक्षा या अच्छे नियमों को यदि मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये बिगाड़ ले, तो उसका उत्तरदायित्व उस शिक्षा अथवा नियम पर नहीं होता। बुराइयों की जड़ तो मनुष्य का स्वार्थ है और इस से अनेकों दोष आ जाते हैं। एक तो ऐसी बातें पहले कहीं-कहीं बहुत कम होती थीं, फिर भी यदि कोई अपना बलिदान दे कर दूसरों को अच्छे मार्ग पर लगाने का प्रयत्न करे तो इस बलिदान में और उस अनर्थ तथा अत्याचार में जो मौलवी साहिब के सहधर्मियों ने कर रखा है पृथ्वी आकाश का अन्तर है। अब कुरानशरीफ की एक आयत पर ध्यान दीजिये। स्वरा मायदा अ आयत नं० ३८।

'मुसलमान पुरुष अथवा स्त्री चोरी करे तो इस करतूत के बदले उसका दायां हाथ काट डालो।'

बग़दाद आदि मुसलमानी देशों में यह दण्ड दिये जाते रहे हैं। आज ऐसे दण्डों को अमानुषी समझा जाता है और न अब कट्टर मुसलमानों में इतना बल बाकी है कि अपनी धार्मिक प्रथाओं तथा उन आदेशों का वास्तविक रूप में पालन कर सकें, इस लिये आज कल यह दण्ड नहीं दिये जाते।

एक पूर्णतया नेक और अपने पातिव्रत धर्म पर दृढ़ रहने वाली स्त्री अपने पति वियोग में उसके साथ जल मरती थी। सती धर्म को पालन करने वाली स्त्रियों की घटनाएँ कभी कभी होती थीं, क्योंकि स्त्रियों का सती होना उन्हीं जातियों में पाया जाता था जिनमें स्त्रियों का पुनर्विवाह अवैध समझा जाता था, और वह भी कभी कभी। किन्तु दुराचारिणी तथा पतिता स्त्रियों के वध मुसलमान जाति में बहुधा होते रहते हैं। हिन्दुओं ने ऐसी स्त्रियों को दूसरा धर्म अपना लेने की आज्ञा दे रखी थी, जो अपने पति की मृत्यु के

पश्चात् अपने धर्म पर स्थित न रह सकती हों, इनके कारण मुसलमानों को अपने धर्मवालों की संख्या बढ़ाने का अमूल्य अवसर शताब्दियों तक मिलता रहा। किन्तु अब ऐसा नहीं होता। मुसलमानों में पुरुष और स्त्री में अनबन होने की अवस्था में स्त्री को अलग कर देना तो आवश्यक है किन्तु मार देना मूर्खता है। इसके विपरीत एक पतिता और दुराचारिणी स्त्री अपने पति को विष दे कर मार डालती है अथवा पती पत्नी को मार डालता है। पाठक सती प्रथा से इस की तुलना करके स्वयं सोच सकते हैं कि इन दोनों में कौन भला है।

इसके अतिरिक्त मुसलमानों के हाथ से तो असंख्य जीवों का वध होता है। सौ दो सौ नहीं, हजारों लाखों जानवरों का प्रतिदिन वध करते हैं। इस अनर्थ को देखते हुए शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि क्या ही अच्छा होता यदि वे इस बुरे मार्ग को छोड़ कर नेकी का रास्ता अपनाते।

प्रश्न (६)—मौलवी साहिब शेर, चीता, भेड़िया आदि मांसाहारी पशुओं के उदाहरण देते हैं और गाय, भैंस और बकरी आदि का दृष्टान्त दे कर लिखते हैं कि मनुष्य का स्वभाव इन दोनों से नहीं मिलता अपितु गीदड़, मछली, काग और चिड़ियों आदि के स्वभाव से मिलता है।

उत्तर— मौलवी साहिब ने स्वभाव का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। मांस और घास खाने वालों में मौलवी साहिब ने सब से पहले गीदड़ का नाम प्रस्तुत किया है। गीदड़ की वीरता तो संसार में प्रसिद्ध है। साधारणतया कहा जाता है कि ऐसा कायर है जैसा गीदड़। दूसरे मौलवी साहब ने उदाहरण भी अधूरा दिया है, क्योंकि जहां काग, बत्तख, मुर्गी आदि भी माँस खाने वाले हैं वहाँ गंदगी भी इनका मन-भाता खाजा है। यदि मनुष्य का स्वभाव भी इन से

मिलता है तो क्या मांसाहारी मनुष्य भी गंदगी खाने वाले हैं? वास्तव में मांस गंदी वस्तुओं का सरदार है। यह रोगों से भरा हुआ है। सड़ांद के लिये इसके मुकाबिले में और कोई वस्तु नहीं। इसी लिये मांसाहारियों को राक्षस कहते हैं। गिद्ध. चील आदि मांस खाने वाले पक्षियों को शेर, चीता और कुत्ता भी नहीं खाते, क्योंकि सब मांसाहारियों के शरीर विषैले और वीर्य दुर्गन्ध-युक्त होते हैं। मांस खाने वाले मनुष्य के पसीने तक में दुर्गन्ध होती है। इतना ही नहीं, उनके विचार भी दुर्गन्ध वाले होते हैं क्योंकि ये स्वार्थ में डूबे हुए और मार-धाड़ की आदत वाले होते हैं जिसे वीरता का नाम दिया जाता है।

प्रश्न (७)– विचार करने योग्य बात है कि यदि मांस खाना मनुष्य के स्वभाव और उसके मेदे के प्रतिकूल होता तो हिन्दुओं के पूर्वज और सिखों के गुरु मांस खा कर क्यों जीवित रहते? इन महानुभावों का मांस खा कर रोगों से वचे रहना सिद्ध करता है कि मनुष्य की प्रकृति मांस तथा शाक दोनों के अनुकूल है। इस पर भी यदि कोई ज़िद्दी आदमी मांस खाना मनुष्य की प्रकृति के विपरीत कहे, तो प्रयोग के तौर पर कोई ऐसा आदमी हमारे सामने पेश करे जिस ने कभी मांस न खाया हो और केवल घास-फूस से जीवन निर्वाह करता हो उसके लिये हम भेड़ का मांस बढ़िया, मसालेदार और बहुत अच्छी प्रकार घी में डाल कर पकाते हैं। यदि वह इस मांस को खाने से मर जाय अथवा अस्वस्थ हो जाय तो हम इस के ज़िम्मेवार हैं। बस, ऊपर लिखे से यह भली प्रकार मालूम हो गया कि मनुष्य प्रकृति से माँसाहारी भी है और शाक सब्ज़ी भी खा सकता है।

उत्तर—मौलवी साहिब ने खूब सोचा है। मैं उन से विनय

करता हूँ कि जो मनुष्य मांस खाना पाप समझते हैं वह मांस खाना नहीं अपितु देखने और हाथ लगाने को भी बुरा समझते हैं। उनके भोजन करते समय यदि कोई मांस का नाम भी ले दे तो उनको वमन (कै) हो जाती है।

जो लोग शूकर का मांस खाते हैं उन्हें क्या वह उनकी रुचि के अनुकूल नहीं है? क्या उसे खा कर वे बीमार हो जाते हैं? यदि किसी वस्तु के खाने या न खाने में यही बात देखनी हो कि मनुष्य बीमार होता है या नहीं, तो हराम और हलाल का सिद्धान्त तो छोड़ना ही होगा। हमारे विचार में तो मांसाहारियों के मेदे को माँस पचाने का स्वभाव हो जाता है और ऐसे मनुष्य अप्राकृतिक तौर पर मांस खाने वाले जीवों के से स्वभाव वाले हो जाते हैं। शाकाहारी मनुष्य के लिये मांस पचाना और अपने भोजन का भाग बनाना सरल नहीं है।

इस के अतिरिक्त मौलवी साहिब का कथन है कि मनुष्य स्वभाव से ही मांसाहारी भी है और शाकाहारी भी। अर्थात् मौलवी साहिब स्वभाविक ही मनुष्य को मिली-जुली भोजन सामग्री खाने वाले पशुओं से तुलना देते हैं। इस लिए मांसाहारी पशुओं तथा शाकाहारी पशुओं की बनावट में जो भेद है वह आप इस पुस्तक में पहले अवलोकन करें। यहां एक विशेष बात बताना चाहता हूँ। मिले-जुले भोजन खाने वालों की अन्दर की बनावट आंतों की लम्बाई और मस्तिष्क में आन्तर होता है। जैसे बिल्ली चूहे खाती है और कुत्ते हर प्रकार का मांस भक्षण करते हैं। यदि ऐसे पशुओं को केवल मांसभक्षण पर ही रखा जाए, तो वह अपना जीवन माँस खाते खाते ही निर्वाह कर लेंगे। इस प्रकार दूसरे मिले-जुले भोजन खाने वाले जीवों को समझ लें, परन्तु मानव में केवल ऐस्कीमो जो उत्तरी ध्रुव के रहने वाले हैं और जहां अन्न

तथा बनस्पति की उत्पत्ति नहीं होती, माँसाहारी हैं। उन को पशु तुल्य समझना चाहिये। विश्व की अन्य मानव जनता केवल माँस-भक्षण पर कुछ समय तक भी निर्वाह करने पर जीवित नहीं रह सकती। परन्तु मौलवी साहिब प्रकृति के नियमों को पांव तले रोंदते हुए माँस-भक्षण के प्रचार पर अधिक से अधिक ज़ोर दे रहे हैं। यदि इस प्रकार के मनुष्यों को कुछ समय के लिये भी माँस पर निर्वाह करने पर बाधित किया जाय तो परिणाम यह होगा कि वह मांस खाने से घृणा करके प्रतिज्ञा कर लेंगे पर यह आशा नहीं कि वह कुछ समय तक भी मांस खाने के बंधन को स्वीकार करें या निभा सकें। हो सकता है कि हठ करते हुए कहीं अपने जीवन से भी हाथ धो बैठें। इसलिए माँस कदापि मनुष्य का स्वभाविक भोजन नहीं है।

प्रश्न (८) – यह भी स्पष्ट ही है कि आहार का प्रभाव मन और बुद्धि तथा दूसरे शरीर के भागों पर भी पड़ता है। जिस प्रकार गाय, बकरी, भेड़ आदि जो केवल शाकाहारी हैं, मन के बहुत कमज़ोर डरपोक और कायर होते हैं। उन में शक्ति, वीरता तथा साहस नहीं होता। उसके विपरीत जो पशु-पक्षी केवल मांसाहारी हैं वे स्वभाव के तेज़ और बहुत क्रोधी होते हैं।

उत्तर—यद्यपि मौलवी साहिब यह ठीक कह रहे हैं कि घास खाने वाले जानवर कायर और डरपोक होते हैं तो उनको खाने वाले भी वैसे ही होंगे। हमारे अनुभव में जिनके घर, नगरों तथा गांव में बने होते हैं उन में विविध प्रकार की सामग्री प्रयोग में आती हैं। जैसे पहाड़ों में पत्थर की दीवारों के और मैदानों में ईंटों के कच्चे अथवा पक्के मकान होते हैं। जिस प्रकार की सामग्री सीमेण्ट, बालू, चूना, सुरखी आदि प्रयोग में आयेगी, उसी के अनुसार घर

कच्चा या पक्का होगा। इसी प्रकार सात्विक आहार मनुष्य की बुद्धि को ठीक रखेगा, जिससे वह भलाई-बुराई को अच्छी तरह पहचान सकेगा। मरी हुई खुराक अपने साथ बुद्धि, मानवता आदि सद्‌गुणों को नीचे ही नीचे ले जायगी और मनुष्य को पूर्णतया पशु बना देगी।

खिरदमंदी[1] की हर इनसान[2] को दायम[3] जरूरत है।
इसकी शरफ़[4] से मिटती बदी[5] नफ़रत[6] कदूरत[7] है।
दलेरी[8] जाँ निसारी[9] जुरअत, ऐसार पैदा हो,
मुहब्बत[10] और मुरव्वत[11] दिल से हमदरदी[12] हवैदा हो।
हमेशा खिदमते[13] खलके[14] खुदाई इस का शेवा हो[15],
रहे खुश जिंदगी [16] में जबकि आदत सब की सेवा हो।
खुदा का नाम लेना अपनी खुदगरजी[17] रवा [18] रखना,
शिकम सेरी[19] की खातर बेजबानों पर छुरा रखना।
बना है आदमी खाये चरिंदों को[20] परिंदों[21] को,
अरे नादान[22] यह फितरत[23] खुदा ने दी दरिंदों[24] को।
जहन्नहम[25] और दोजख[26] के लिये रस्ता बनाता है,
जो करके जुलमो[27]-बेहरमी[28] किसी का दिल दुखाता है।
सलीम-उल अक्ल,[29] कर गौर [30] बेहतर[31] रास्ता क्या है।
नइनी[32] का समर[33] जन्नत[34] बदी का बदनतीजा[35] है।

---

1. नम्रता 2. मनुष्य 3. सदा 4. दया से 5. बुराई 6. घृणा 7. शत्रुता 8. वीरता 9. जीवन बलिदान करना 10. प्रेम 11. मेल-जोल 12. सहानुभूति 13. सेवा 14. सृष्टि 15. कर्त्तव्य, 16 जीवन, 17. स्वार्थ 18. कायम रखना 19. पेट भरना 20. पशु 21. पक्षी 22. मूर्ख 23. प्रकृति 24. मांसाहारी पशु-पक्षी 25. नरक 26. नरक 27. अत्याचार 28. निर्दयी 29. सब प्राणियों से अधिक बुद्धिवाला 30. ध्यान 31 अच्छा 32. भलाई 33. फल 34. स्वर्ग 35. बुरा परिणाम।

बदी से बाज[36] आ जाये तो राहत[37] खास हासिल हो
खुदा भी खुश रहे इनसान आखिर[38] हक्क[39] से वासिल[40] हो ॥

प्रश्न (९)—जीवरक्षा के हिमायत करने वालो ! जब तक आर्यावर्त में मांस खाने की प्रथा रही और आर्यों के पूर्वज विशेषतया क्षत्रिय जाति के वीर राजे महाराजे जैसे रामचन्द्र जी आदि मांस खाते रहे तब तक मांस भक्षण के कारण ही वे वीरता और साहसके कार्य भी करते रहे। इसी से उन्हों ने रावण जैसे राक्षस राजा को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।

उत्तर—श्री रामचन्द्रजी पर मांस खाने का दोष लगाना आप की अज्ञानता पर आधारित है। श्री रामचन्द्रजी पापों को नष्ट करने के लिये संसार में आये थे, बढ़ाने के लिये नहीं। वीरता और साहस, मन की दृढ़ता अपने पूर्वजों के कार्यों, राजनैतिक जागृति और युद्ध की शिक्षा में प्रवीणता के कारण होते हैं, न कि मृत प्राणियों को खाने से ।

प्रश्न (१०)—आर्यों के अनुसार आर्यावर्त के राजा सारे विश्व में राज्य करके चक्रवर्ती राजा कहलाये। आर्यावर्त के दुर्भाग्य से हज़रत मसीह से ५५९ वर्ष पहले महात्मा बुद्ध छत्रपति राजा शुद्धोदन के घर पैदा हुए। उन्हों ने वेद, उपनिषद् और मनुस्मृति में वर्णन किये गये बलिदानों पर ध्यान न देते हुए अपने समय के लोगों के समक्ष जीवहिंसा के विरुद्ध अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया और मांस खाने पर बल देकर भारत से इस प्रथा को बन्द करना चाहा। इस लिए धीरे धीरे मांस खाने की प्रथा कम हो गई और मांस छोड़ने से आर्यावर्त की वीरता और साहस को बहुत हानि हुई, जो स्वाभाविक ही था। अब साग-पात अर्थात् घास खाने वालों ने अपना रंग जमाया

36. छोड़ दे 37. शान्ति 38. अन्त 39. ईश्वर 40. मिलाप ।

वीरों को कायर बनाया। देखिये पृथ्वीराज, एक लाख सेना लेकर मुहम्मद गौरी के सामने आया और मुहम्मद गौरी के पास केवल २० हज़ार सेना थी। वे मांसाहारी थे। इन वीरों के सामने दाल खाने वाले कायर क्या कर सकते थे। जैसे एक शेर के आगे हज़ार बकरियां क्या चीज़ हो सकती हैं। अन्त में पृथ्वीराज को भागने के अतिरिक्त क्या चारा था और भागा भी ऐसा कि दिल्ली जाकर दम लिया। देखो! इस मांस-भक्षण के त्याग ने आर्यावर्त के राज-पाट को नष्ट कर दिया।

हमारे सामने गोरा और सिख सेना तथा सैनिक मुसलमान जो रात-दिन मांस खाते हैं, वह वीरता दिखाते हैं कि जिसके कारण अंगरेज़ी सेना की संसार में इतनी प्रसिद्धि हो रही है।

उत्तर—मौलवी साहिब यदि ध्यान से देखें तो उन को विदित हो जायगा कि संसार में प्रत्येक वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव परिवर्तनशील है। मौलवी साहिब संसार की किसी वस्तु का नाम बतायें जो परिवर्तनशील न हो। आर्यों को अपने धर्म पर गर्व है और होना चाहिये, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ काल से ही वे वेदों की शिक्षा पर चल रहे हैं। किन्तु बीच में एक युग ऐसा भी आया कि भारत में वाम-मार्ग फैल गया। वह लोग मांस खाते, मदिरा पीते और भोग विलास में पशुओं से मिलते-जुलते थे। वे हर प्रकार के अवगुणों के दास हो गये। यह जो आपने जानवरों के वध का लम्बा चौड़ा वर्णन किया है, वह इसी युग का है। हम बहुत वार यह कह चुके हैं कि हमारी पुस्तकों में, जो पूर्णतया अहिंसा की शिक्षा देती हैं, एसे श्लोकों की मिलावट जिस से मांस खाने की शिक्षा मिलती है उसी युग की है। इस के पश्चात् बौद्ध धर्म उन्नत हुआ जिसने इसाई धर्म को प्रकाश दिया। ईसाई धर्म ने कुरानशरीफ़ को प्रकाशित किया। यदि आप ने बौद्ध मत का अध्ययन किया

होता तो आप पर सब बातों का प्रकाश हो जाता। मै आप से यह प्रश्न करता हूँ कि कुरान शरीफ़ एक ही पुस्तक होते हुए भी मुसलमानों में बहत्तर अथवा इसमें भी अधिक फिर्के बन गये हैं इसका क्या कारण है। शिया, सुन्नी हदीसवाले, कुरानी-कादियानी आदि सब एक दूसरे से भिन्न हैं। क्या हज़रत अली मुसलमान नहीं थे जिन्हों ने कहा कि अपने पेटों को जानवरों की कबरें मत बनाओ। इस पुस्तक के मानने वालों में इतने मतों का होना और फिर एक दूसरे के जोवन का शत्रु होना सिद्ध करता है कि मनुष्य भिन्न भिन्न विचार रखते हैं और अपने मतलब के अर्थ घड़ लेते हैं। अपनी उर्दू की पुस्तक छपवाने के अठारह साल बाद इसी वर्ष की २२ फरवरी के 'प्रताप' में मैंने मौलाना अबुल-कलाम आज़ाद का एक लेख देखा है। सभी जानते हैं कि वे भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू के दाहिने हाथ और अरबी फ़ारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्हें कुरान शरीफ़ कण्ठस्थ था और उन्हों ने उसका उर्दू में अनुवाद भी किया था, जिसका सभी मुसलिम विद्वान् आदर करते हैं। उन्हों ने इस्लाम धर्म के बत्तहर फ़िर्क़ों के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए अपना उपनाम 'आज़ाद' रखने का जो कारण प्रकट किया है उस से पूर्णतया मेरे विचारों का समर्थन होता है। वे लिखते हैं कि जब इसलाम का प्रत्येक सम्प्रदाय अपना मूल-स्रोत एकमात्र कुरानशरीफ को ही स्वीकार करता है तो उन में इतना मतभेद और पारस्परिक संघर्ष क्यों ? इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए ही उन्होंने अपना उपनाम 'आज़ाद' रखा था। इसी प्रकार प्रत्येक धर्म में अनेकों सम्प्रदाय होते हैं और वे यद्यपि किसी एक ही ग्रन्थ को अपना परम प्रमाण मानते हैं तथापि दृष्टिकोण के भेद से उनमें बहुत अधिक मतभेद हो जाता है और वे उस ग्रन्थ के वाक्यों के भी विभिन्न अर्थ कर लेते हैं। हमारे शास्त्रों में जो मांस-भक्षण का प्रति-

पादन बताया जाता है वह भी इस प्रकार का एक मतविशेष है। वास्तव में तो वे अहिंसा को ही माननव का परम धर्म बताते हैं।

रही पृथ्वीराज की बात, सो उसने तो पहली बार मुहम्मद गौरी को पराजित करके उस के दांत खट्टे कर दिये थे। दूसरो वार पृथ्वीराज का विरोधी जयचन्द मुहमम्द गौरो से मिल गया। आधी शक्ति रह जाने के कारण वह पराजित हुआ। इस विजय और पराजय के साथ मांस खाने का सम्बन्ध बताना संकुचित धार्मिक भावनाओं के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। जापान को देखिये वे बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। इस समय कई बड़ी-बड़ी शक्तियां उसको मानती हैं। इसका सम्बन्ध राजनैतिक जागृति से है, मांस खाने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। मुसलमान लोग मांस अधिक खाते हैं, फिर इनका साम्राज्य क्यों समाप्त हो गया? क्या उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया है? वे मांस खाते रहने और दूसरों को खिलाते रहने पर भी दासता की जंजीरों में फंसे हुए हैं।

प्रश्न (११)—साधारण हिन्दुओं का मांसाहारी होना और उन की प्राचीन पुस्तकों में उन के प्रमाण मिलना भी मांस की उपयोगिता सिद्ध करना है। कन्नोजिया ब्राह्मण, सखरिया ब्राह्मण, काश्मीरी ब्राह्मण, बंगाली ब्राह्मण, मरहट्ठा ब्राह्मण, हिन्दू राजपूत, सारे कायस्थ, पंजाबी खत्री, हिन्दू गूजर, घोसी सुनार, धीवर, तरखान, सूद जाति, सारे सिख, हिन्दू नाई, हिन्दू कुम्हार, हिन्दू धोबी, हिन्दू, भूजी हिन्दू खटीक, हिन्दू सुराज, पहाड़ी हिन्दू, अरोड़े, पूरविया, कड़ावेइया, हिन्दू जाट, सैनी जाट, बौरिया जाति, हिन्दू कलाल, बोहरा जाति, कोरी और मांसाहारी आर्यसमाजी इस प्रकार आर्यावर्त्त में भी अनेकों हिन्दू जातियां मांस खाने वाली होंगी, जिनका हाल हमें मालूम नहीं है।

उत्तर—वास्तव में मुसलमान विशेषतया सामूहिक रूप में मांसाहारी हैं और हिन्दू विशेषतया वेज़ीटेरियन अथवा शाकाहारी हैं। आप के लिखने के अनुसार इन जातियों में मांस खाने का परहेज़ नहीं और कभी कभी ये लोग मांस खाते भी हैं। किन्तु इन सब में ऐसे लोग भी हैं जो मांस नहीं खाते, जो खाते भी हैं अच्छा समझकर नहीं। जो नहीं खाते, भक्त कहलाते हैं और आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। मुसलमानों में भी लाखों की संख्या में मदिरा पीते हैं, कई डाकू और चोर भी हैं। निर्धनों की बहू-बेटियों को चुरा ले जाने वाले भी हैं। क्या आप ने इन्हें मुसलमानो से निकाल दिया है? आप हिन्दुओं की ऐसी जातियों के नेताओं से मालूम करें कि मांस खाने के विषय में उन के क्या विचार हैं, तो आप को मालूम हो जायगा कि जो मांस खाते हैं वे प्रथा अथवा किसी सिद्धांत के कारण नहीं। यदि मुसलमानों में भी यह बात हो तो कसाइयों की दुकानें देश भर में स्वयं उठ जाएँ और आज कल जो इतना वध हो रहा है, सब बंद हो जाय।

प्रश्न (१२)—वृक्षों में भी कोई कोई मांसाहारी होते हैं। उन्हें मांस खाने की आदत प्रकृति ने स्वयं दी है। यह बात इस विषय में ईश्वर की इच्छा को व्यक्त करती है और यही दृश्य सम्पूर्ण विश्व में देखने में आता है कि एक वस्तु दूसरी को खा रही है। जो वस्तु बढ़ना चाहती हैं वह बिना किसी प्रकार का आहार किये जीवत नहीं रह सकतीं। हां, प्रत्येक वस्तु खाने-पीने में अपने स्वभाव के अनुसार खा पी सकती है। जैसे पत्थर अपनी खान में मिट्टी खा कर उन्नति करता है।

उत्तर—मैंने स्वयं भी इस पुस्तक में वृक्षों के मांसाहारी होने का वर्णन किया है। यह प्रकृति के खेलों को जांचने वालों को अचम्भे में

डालने वाली बात है। वृक्षों को यदि अर्ध जीवित ही समझ लें तो शायद अनुपयुक्त न होगा। वाह ! री प्रकृति ! तूने अर्ध जीवित, न चल फिर सकने वाली वस्तुओं को चल फिर सकने वाले जीवों को अपने नियन्त्रण में लाने और खाने की शक्ति दी।

ईश्वर के असंख्य पेड़ पौधों में केवल एक अथवा थोड़े से वृक्षों का मांसाहारी होना मांस खाने को प्रकृति का नियम सिद्ध नहीं कर सकता। जैसे पशु-पक्षी मांसाहारी हैं इसी प्रकार कई मनुष्य भी हैं जो कच्चा मांस खा जाते हैं। क्या ऐसे मनुष्यों से जो कच्चा मांस खा कर पचा जाते हैं, मांस खाना प्राकृतिक नियम सिद्ध हो सकता है ? मौलवी साहिब इस को मानने में शायद सोच विचार से काम लेंगे।

अफ्रीका के एक प्रकार के वृक्ष का हाल इस पुस्तक में दिया गया है। यदि मौलवी साहिब स्वयं साहस करके इस वृक्ष के निकट पहुँचें तो वृक्ष उनको अपने पत्तों में लपेट लेगा और पत्ता जब खुलेगा तो मौलवी साहिब का सब मांस त्वचा आदि पच चुका होगा। वहां हराम हलाल का प्रश्न नहीं। हराम हलाल का सिद्धांत मनुष्यों का बनाया हुआ है। प्रकृति उसको नहीं मानती। प्रकृति से जिस को मांस खाना मिला है वह हराम, हलाल, कच्चा, पक्का, मृत अथवा मार कर सब पचा जाते हैं।

प्रश्न (१३)—ओ भगवान् के सिद्धांत को मानने वालो ! जानवरों का मांस रात दिन पेड़ पौधे खाते रहते हैं। क्या इन जानवरों ने तुम्हारे कहने के अनुसार पिछले जन्म में कोई ऐसे बड़े पाप किये थे जिन के कारण ये इन वृक्षों का आहार बने हैं अथवा इन वृक्षों को, जो उन जानवरों का मांस खाते हैं, दण्ड मिलेगा ? आप जीव-रक्षा की दृष्टि से कहते हैं कि मांस खाना दया के विपरीत

है। इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि मांस का न खाना वीरता तथा साहस के विपरीत है और यह ऐसे गुण हैं जिन के बिना संसार की संस्कृति और धर्म नष्ट हो जाते हैं।

उत्तर—आवागमन का सिद्धांत मानने वाले हिन्दू, जैनी, सिख और बौद्ध आदि ८४ लाख योनियां मानते हैं। इन में सब प्रकार के वृक्ष, बनस्पति, जन्तु तथा जल, वायु और भूमि में रहनेवाले जीव भी सम्मिलित हैं। आवागमन को मानने वालों का यह विश्वास है कि प्रत्येक योनि अपने कर्मों के अनुसार जन्म धारण करती है।

शक्ति के सम्बन्ध में आप माँसाहारियों में गोरीले के समान एक भी उदाहरण प्रस्तुत कर दें जो वृक्षों पर तीस फुट या इससे भी अधिक लम्बी छलांगें मारता है।

गैंडे का सामना करने से शेर घबराता है। गैंडे के चमड़े की ढालें बनती हैं। जिस पर खड्ग भी काम नहीं करती। मांस न खाने वाले मनुष्य मांस वालों से वीरता में कम नहीं, उन का वर्णन वीरता के अध्याय में किया गया है। मांसाहारियों की वीरता तो उसी समय समाप्त हो गई जब उन्हों ने निर्बल तथा बुद्धि-रहित जानवरों का बध करना आरम्भ कर दिया। इन को अपने आप में समाकर वह स्वयं वैसे ही हो गये।

प्रश्न (१४)— यदि दुःख न होने और तड़पने के कारण पेड़ पौधों का तोड़ना और खाना उपयुक्त है तो फिर पेड़ पौधे खाने वाले आर्यो! तुम्हें अण्डे खाने में क्या आपत्ति है? अण्डों और पेड़ पौधों में आत्मा का न होना एक-जैसा है।

उत्तर—यह प्रकृति के ही खेल हैं कि आत्मा एक समान होते हुए भी उन को भिन्न भिन्न शरीर तथा भावनाएँ मिली हैं। पेड़, पौधे और बनस्पति एक इन्द्रिय वाले जीव हैं। इन में मन और बुद्धि नहीं

है और न दुःख अनुभव करने की शक्ति ही है। इन का जीवन ऐसा ही है जैसे मनुष्य की क्लोरोफार्म की अवस्था। अण्डा खाना इस लिए भी बुरा है, क्योंकि यह बिना कान के जानवरों के वीर्य का ऊपर का भाग है, मादा के वीर्य की सफेदी और नर के वीर्य की ज़रदी यह बताती है कि यह वह वस्तु है कि यदि इस की एक बूंद भी कपड़े को लग जाय तो कपड़ा अपवित्र हो जाता है। ऐसे कपड़े को पहन कर न मुससलमान नमाज़ पढ़ सकते हैं, न हिन्दू संध्या कर सकते हैं। इस अपवित्र वस्तु की जो मूत्र के मार्ग से हो कर आती है अज्ञानी मनुष्य ही मुंह फैला कर इच्छा करते हैं। क्या ऐसे मनुष्यों के शरीर पवित्र रह सकते हैं? मेरी अपील केवल बुद्धिमानों से है, अज्ञानी मनुष्यों से नहीं।

वास्तव में वाममार्गियों का मन-भाता खाजा मांस था। अब आपने इन के मार्ग पर चलना आरम्भ किया है। इसका खाना पेट में ऐसी ही दुर्गन्ध उत्पन्न करेगा, जैसी कि मांस में होती है। पेड़ पौधों में सड़ गल कर भी दुर्गन्ध उत्पन्नन हीं होती, जबकि मांस में सड़ कर मल से भी सैकड़ों गुणा अधिक दुर्गन्धि होती है। वास्तव में दुर्गन्ध मांस के ही हिस्से में आई है। प्राणियों के मृत शरीरों के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में इतनी दुर्गन्ध नहीं होती। यहां तक कि जहाँ गंदे पानी में दुर्गन्ध होती है, वहां भी जो कीटाणु पानी में मर जाते हैं उनके सड़ने से ही वह उत्पन्न होती है। आप अण्डे को तनिक ऊपर से तोड़ कर ७२ घण्टे रखें। घर दुर्गन्ध से भर जायगा और आप को पता लग जायगा कि अण्डे और पेड़-पौधों में क्या अन्तर है।

प्रश्न (१५)—जीव-रक्षा की हिमायत करने वाले, जो गाय को मां और बैल को पिता मानते हैं, इन के साथ जो दया का वर्ताव किया करते हैं वह भी ध्यान देने योग्य है। वे बेचारे गरीब बैल को अपने निजी स्वार्थं के लिए निदयता से खस्सी करते हैं आदि।

उत्तर—केवल जीव रक्षा के हिमायतियों की ही नहीं अपितु सब सांसारिक मनुष्यों की गाय माता और बैल पिता है। स्वयं मौलवी सहिब बतायें कि क्या वह गाय का दूध नहीं पीते अथवा बैल की कमाई नहीं खाते। इन्हीं कारणों से इन्हें माता-पिता की पदवी दी गई है। मनुष्य बैलों और दूसरे जानवरों से उनके सामर्थ्य के अनुसार काम लेता है। बैल से उसकी शक्ति के अनुसार काम लेकर मनुष्य उस की सेवा करता है और अपने परिश्रम का फल लेता है। बछड़ा केवल अपनी मां के दूध पर ही निर्भर नहीं रह सकता। यह आवश्यक है कि मानव के बच्चों के समान उसको भी मां के दूध के साथ दूसरी वस्तुएँ जिन पर उसका जीवन निभर्र है, खिलायी जायें। बछड़े यदि भूखे मारे जाते तो आज तक गाय के वंश का संसार से अस्तित्व ही मिट गया होता।

यदि आप दूरदृष्टि से देखें तो एक बैल और घोड़े वे हैं जो राजों-महाराजाओं के तबेलों में बँधे खड़े रहते और बहुत कम काम करके पलते रहते हैं और एक वे हैं जो निर्धनों के फंदों में फंसे हुए हैं, जिन्हें भोजन कम मिलता है और परिश्रम अधिक करना पड़ता हैं। ये सब कर्मों के फल हैं। आप को इन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और आवागमन के सिद्धान्त पर विश्वास करना चाहिये।

प्रश्न (१६) - वर्षा ऋतु में गाय के मूत्र में कीड़े पड़ने के हाल का वर्णन करके लिखते हैं कि लाला जी इन कीड़ों को मार कर पाप के भागी बनते हैं और यदि ग़रीब मसलमान ईद कुरवानी पर अपने लाभ के लिये कोई जानवर मौला के नाम पर वध कर दें तो इन पर आफ़त टूट पड़ती है। क्या इसका नाम अन्याय और अत्याचार नहीं ?

उत्तर—इन कीड़ों का मारना पाप नहीं, प्राणियों के शरीर में न मालूम कितने कीटाणु होते हैं। रक्त में कीटाणु, मांस में कीटाणु, मल में कीटाणु, वायु में कीटाणु, पृथ्वी तथा आकाश का कोई भी भाग इनसे ख़ाली नहीं। सताने वालों से दुखियों की रक्षा करना परम धर्म है। सताने वाले मनुष्य भी फांसी पाते हैं। वास्तव में भारतवर्ष में आप जैसे लोगों का उत्पन्न होना बन्द नहीं हुआ जो देश में लड़ाई झगड़े के कारण हैं और अज्ञानी लोग आप जैसों के झाँसे में फँस कर ऐसे बुरे पाप कर बैठते हैं जिस से स्वयं फँसने के अतिरिक्त दूसरों को भी विपत्ति में फँसाते हैं। क्या आपके मौला साहब मांस खाते हैं ? आप उस उच्च विभूति को क्यों दूषित करते हैं ?

प्रश्न (१७)—जीव रक्षा के हामी और दया के पुतले जब भोजन करने लगें तो भूखी और नम्र मक्खियों को अपने भोजन पर से उड़ा देते हैं, वह गरीब अपना भोजन पाने के लिये ईश्वर जाने कितनी दूर से उड़ती आई हैं। बेचारी भूखी मक्खियों को उनके प्राप्त हुए आहार पर से उड़ाना दया और जीवरक्षा के विरुद्ध है और पूरा अत्याचार है।

उत्तर—आप ने मक्खियों का उदाहरण बहुत अच्छा प्रस्तुत किया है। भला हम तो मक्खियों को खाने पर से उड़ा देते हैं। क्या मांसा-हारी इनका कीमियाँ बना कर खाते हैं।

प्रश्न (१८)—मौलवी साहिब ने गोल आकृति बना कर उसमें पानी के कीटाणु दिखलाये हैं जिन को प्राणी पानी के साथ पी जाते हैं और कहते हैं कि इन को बचाने के लिये 'अहिंसा परमो धर्मः' मानने वालों को मुँह पर तो बरा बँधवाना चाहिये।

उत्तर—तनिक वह कुरान-शरीफ़ के आदेशों की ओर ध्यान

दें। जिन प्राणियों को शरह मुहम्मदी ने ठीक ठहराया है उनको तेज़ छुरी से और कलाम अल्लाह के साथ वध करने का आदेश है। क्या इन कीटाणुओं को बिना हलाल किये हड़प कर जाना हराम नहीं। यदि इन कीटाणुओं को मछली के समान हलाल समझने का आदेश हो तो भी उसका प्रमाण दीजिये, अन्यथा वे चीजें खाइये जिनमें कीटाणु न हों। इतना ही नहीं, आप को झटके से इतनी घृणा है कि आप किसी झटकई को अपने पड़ोस में भी देखना पसन्द नहीं करते। वैसे प्रातः से सायंकाल तक चलते फिरते आप जितने पाँव रखते हैं उनमें असंख्य झटके भले ही होते रहें। क्या आप इन पापों में नहीं फँसते ? आप किसी सब्ज़ी को हलाल नहीं करते और न ही दूध के कीटाणुओं को हलाल करते हैं। आपको हर एक भोजन हराम ही हराम खाना पड़ता है और क़ुरान शरीफ़ के आदेशों के विपरीत जाना पड़ता है।

हमारे ज्ञान के अनुसार यह सूक्ष्म जीव हैं। इनको जीने-मरने का सुख-दुःख नहीं होता। यदि पानी तेज़ आग पर उबाल लिया जाय तो ये कीटाणु नष्ट हो जाएँगे। किन्तु पानी ठण्डा होने पर स्वयं निकल आएँगे। हम स्वयं किसी जीव को मारना भारी पाप समझते हैं। विवशता की अवस्था में कीटाणुओं का नष्ट हो जाना पाप नहीं कहलाता। इनकी उत्पत्ति भी प्रकृति ने इतनी अधिक कर रखी है कि रुग्णावस्था में शरीर रोग के कीटाणुओं से भर जाता है, और मनुष्य की बुद्धि उनकी संख्या को गिनने में असमर्थ है। डाक्टर लोग रोगों को ठीक करने के लिये ऐंटी-वैक्सीन तैयार करते हैं। रोग के कीटाणु चौबीस घण्टे में असंख्य अरबों खरबों की संख्या में ऐंटी-वैक्सीन में उत्पन्न हो जाते हैं और बहुत से रोगों में इंजेक्शन करने से रोगी को आराम होता है। हमारा आशय जीवन-रक्षा से वहां तक है जहां तक प्रकृति ने हमें बुद्धि

प्रदान की है। मनुष्य का कर्त्तव्य जीवन की रक्षा करना है। इसी प्रकार चोरों और डाकुओं को दण्ड देना मनुष्य का परम-धर्म है। आशा है कि आप इस उत्तर को ध्यान से पढ़ कर इसके अनुसार कार्य करेंगे।

मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार कहीं बढ़-चढ़ कर है इस विषय में एक दूसरे दृष्टि-कोण से भी विचार किया जाता है। अनेकों वैज्ञानिक ऐसा समझते हैं कि मांस में प्रोटीन और नाइट्रोजोनस तत्त्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं और वनस्पति में इनकी कमी है, अतः शाकाहारी इस पक्ष में घाटे में रहते हैं। परन्तु मोगानिवासी श्री विकासदेवजी ने अपनी पुस्तक 'गोश्तख़ोरी' में इस भ्रान्ति का बहुत युक्तियुक्त निराकरण किया है। उन्होंने जो कुछ लिखा है उस का सार इस प्रकार है—

कोपनहैगन (डेनमार्क) के खाद्यद्रव्य पर्यवेषण विभाग के डायरैक्टर संसार के सुप्रसिद्ध डाक्टर हैंड हैड कहते हैं:—

(१) बादामों में अनेक प्रकार के मांसों की अपेक्षा अधिक प्रोटीन है। मसूर आदि दालों, मटर, मूंगफली और पीनट्स (Pea-nuts) में भी मांस की अपेक्षा अधिक प्रोटीन पाई जाती है। इस दृष्टि से पनीर भी सब मांसों की अपेक्षा बढ़ा-चढ़ा है। वानस्पतिक प्रोटीन में विषैला अंश नहीं पाया जाता, इस लिये वह आँतों में जाकर उतनी जल्दी सड़ने नहीं लगती जैसी कि मांस की प्रोटीन।

(२) खाद्य द्रव्यों का दूसरा तत्त्व Hydro Carbon अर्थात् चिकनाई है। यह भी मांस की अपेक्षा वनस्पतियों में अधिक पाई जाती है। गौ, बकरी, मुर्गी का बच्चा, सफ़ेद मछली, अण्डे की सफ़ेदी और अण्डे की ज़र्दी में चर्बी की मात्रा प्रतिशत ३·६ से ३०·७ तक है और सूअर के मांस में इसका परिमाण ४८·८ है। किन्तु

वनस्पतियों में जिनमें दूध भी सम्मिलित है चिकनाई का परिमाण प्रतिशत निम्न प्रकार से है—

अखरोट	५७·४	चिलग़ोज़ा	७१·५
ब्रैज़िल नट	६७·७	बादाम	५३·०
नारियल	३६·०	मक्खन	८५·०

परिमाण की अधिकता के अतिरिक्त वानस्पत्य पदार्थों में जो चिकनाई पाई जाती है वह मांस की चिकनाई की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसका रासायनिक मिश्रण (emulson) बना हुआ रहता है, इस लिये वह बहुत जल्द पच जाती है, जबकि मांस की चर्बी को चबाने पर तेल-जैसा बन जाता है। परन्तु यदि मेवाओं को चबाया जाय तो उनसे मलाई-जैसी वस्तु बन जाती है, जो उन मेवाओं की चिकनाई का मिश्रण (emulson) होता है। इस मिश्रण और चर्बी में यह अन्तर होता है कि यह पानी में जल्दी ही घुल जाता है इस लिये इस पर पचाने वाले रस और नमक बहुत शीघ्र असर करते हैं। ये इस शरीर में सजीव विद्यमान हैं। इस दृष्टि से वनस्पति की चिकनाई अपेक्षाकृत बहुत उत्तम है। चर्बी की चिकनाई जल्दी पचने वाली न होने से आँतों में सड़ती रहती है और अनेकों रोगों का कारण बनती है।

(३) खाद्य पदार्थों का तीसरा तत्त्व हाइड्रस (Hydras) या चीनी का निशास्ता है। यह मांस में बिलकुल नहीं पाया जाता। इसलिये केवल मांसाहारी व्यक्ति स्वस्थ जीवन व्यतीत नहीं कर सकता, इसलिये उसे स्वास्थ्यनिर्माण के लिये रोटी और शाकादिकी भी सहायता लेनी पड़ती है।

(४) चौथा तत्त्व है नमक (Mineral Salts)। मांस की अपेक्षा शाकादि में रहने वाले नमक रक्त-शोधक होते हैं और ये यूरिक एसिड (Uric Acid) के विष को निवृत्त करते हैं, जबकि मांस

यूरिक एसिड पैदा करके मनुष्य के रक्त में अवरोधक बन कर तरह-तरह के रोग उत्पन्न करता है।

(५) पाँचवां तत्त्व विटेमिन्स (Vitamins) हैं। ये जितने परिमाण में शाक-भाजियों में हैं उतने मांस में नहीं पाये जाते।

इसलिये इस दृष्टि से भी मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार कहीं बढ़-चढ़ कर है।

★

छूत-छात की समस्या

सब मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं और एक ही पिता के पुत्र होने से एक जैसे हैं। आधुनिक युग के विचारों में यह धारा बहुत ही प्रचलित है। आज कल के लोग इस बात को बहुत अनुपयुक्त समझते हैं कि एक मनुष्य दूसरे से घृणा करे। हिन्दूओं के छूत-छात के सिद्धान्त के प्रति भी लोगों की ऐसी ही धारणा है। इस पर भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है। जो लोग संसार को ब्रह्मरूप मानते हैं वे जब मनुष्य और मनुष्य में इतना भेद करने लग जाते हैं तो उनके कहने और आचरण करने में बहुत अन्तर हो जाता है। किन्तु मैं इस सिद्धान्त पर वास्तविक कार्य दृष्टि से ही विचार करना चाहता हूँ। क्या इसके अस्तित्व का कारण कुछ ऐसी बातें हैं जो मनुष्य की वैज्ञानिक खोज बन सकें। आओ इस पर थोड़ा विचार करें।

रक्त में विष—मांसाहारी मनुष्य सारे जानवरों का मांस नहीं खाते। साधारणतया वह ऐसे जीवों को खाते हैं जिनका स्वाभाविक आहार अनाज और सब्ज़ी है। इन जीवों के मांस को एक आध के अतिरिक्त वह नहीं खाते जिनकी प्राकृतिक आहार दूसरे जानवरों का मांस है। इसका बड़ा कारण है कि मांस अपने आप में एक विषैला आहार है, जैसा कि मैं अन्य स्थान पर सिद्ध करूँगा। मांसाहारी जानवरों के रक्त में मांस का विष मिला हुआ

होता है, इस लिये मांस खाने वाले लोग उन जीवों का मांस नहीं खाते। आशय यह है कि उनकी दृष्टि में कुछ जीव तो छूत हैं और दूसरे अछूत, अब जो मनुष्य मांस नहीं खाते वे मांसाहारी मनुष्यों से इसी प्रकार का संबन्ध रक्खें तो अनुपयुक्त न होगा। यदि आप को किसी शाकाहारी मनुष्य की घृणा का अनुभव हो, जो उसे मांस की दुकान के पास से हो कर निकलने पर होती है, तो आप इस बात को मानने में कदापि आपत्ति न करेंगे। ऐसे लोग भी देखे गये हैं जिन्हें बूचड़खानों के निकट पहुँच जाने पर अपनी सुध-बुध नहीं रहती। यदि उनके साथ एक ही मेज़ पर मांसाहारी साथी मांस ले कर बैठ जाय तो वे खाना नहीं खा सकते। ऐसी ऐसी घटनाएँ देखने में आई हैं कि एक मनुष्य को धोखे से मांस खिलाया गया जब उसे यह विदित हुआ तो उसने सब खाया-पीया उगल दिया।

मांसाहारियों का भोजन—यदि मनुष्य की भावनाएँ यहाँ तक पहुँच सकती हैं तो यह आश्चर्य की बात नहीं कि शाकाहारी मनुष्य अपने उन भाइयों से, जो मांस खाते हैं, परहेज़ करने लग जाएँ। अब मांसाहारियों के भोजन को देखा जाय तो उसमें जहाँ शाकाहारी जीव हैं, वहाँ ऐसे जानवर भी हैं जो दूसरों के मल, मूत्र, बलगम, सड़े हुए पानी आदि, यहाँ तक कि हर प्रकार की गंदगी को चट्ट कर जाते हैं। यदि ऐसे गंदगी खाने वालों के मांस को खाने वाले, उन लोगों की दृष्टि में जो सब्ज़ी और अनाज जैसी शुद्ध और पवित्र वस्तुओं पर अपना निर्वाह करते हैं,। पवित्रता और स्वच्छता के मापदण्ड से पूरे न उतरें, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

परिणाम— मांसाहारी मनुष्यों के निकट सब से अधिक अछूत

मांसाहारी पशु-पक्षी हैं, इसलिए कि उनका मांस विषैला और दुर्गन्ध-युक्त होता है। यदि वे खाएँ तो सम्भवतः जीवित न रह सकें। जो मनुष्य मांसाहारी पशु-पक्षियों का काम करते हैं उनमें केवल एक यही अन्तर है कि वे मांसाहारी पशु कहलाना पसन्द नहीं करते, यद्यपि उनका शरीर भी उनके समान ही अशुद्ध हो जाता है और वह बहुत प्रकार के विषों एवं रोगों का घर बन जाता है।

एक बार बारगमास्टरी के विभाग का फिरोज़पुर का रहने वाला एक मुसलमान ठेकेदार किसी काम से मेरे पास आया। इस अवसर का लाभ मैंने उससे मांस खाने के विषय में विचार-विमर्श करने में उठाया। मैंने कहा कि आप के यहाँ जो प्राणी हलाल समझे जाते हैं वे सब शाकाहारी हैं। मांसाहारी पशु-पक्षियों का मांस अधिक विषैला तथा दुर्गन्ध-युक्त होता है, इसलिए उनको हलाल नहीं बताया गया। किन्तु जब आप लोग मांस खाते हैं तो क्या आप का मांस उनके समान नहीं हो जाता? वह इस बात पर बहुत चकित हुआ और कहा कि मैंने कभी इस बात का ख्याल नहीं किया, अन्यथा यह बात पूर्णतया सत्य है।

मांसाहारी पशु-पक्षियों को तो प्रकृति ने इस योग्य बनाया है कि वह अपने आहार के विषों को पचा कर अपने शरीर का भाग बना लें। किन्तु मनुष्य के अंगों को यह शक्ति ईश्वर ने नहीं दी। इन में अशुद्ध वस्तुएँ एकत्रित होती रहती हैं और शरीर को अपवित्र बना देती हैं। क्या इनके वे भाई जो अपने आप को इस अपवित्रता और दुर्गन्ध से बचाए रखने का प्रयत्न करते हैं, वास्तव में दोषी ठहराए जा सकते हैं? यह ध्यान देने योग्य बात है।

मांस खाना—धर्म, न्याय और चरित्र की दृष्टि से

कहने को तो मनुष्य अपने आप को कई धर्मों का अनुयायी कहाता है, किन्तु इस वास्तविकता को झुटलाना कठिन है कि मानव का वास्तविक धर्म अन्ध-विश्वास ही है। हज़रत इब्राहीम के पुत्र के बलिदान का उल्लेख न मालूम कहां से बाइबल में आ गया, किन्तु बाइबल ने बलिदान की प्रथा को बन्द कर दिया। कई शताब्दियों के पश्चात् वही बात कुछ परिवर्तन के साथ कुरान-शरीफ में दुहराई गई। क्या ही अच्छा होता यदि यह कहानी दुहराई जाने के साथ इस भयंकर प्रथा को फिर जीवित न किया जाता। किन्तु अब इस के कारण असंख्य मूक-पशुओं का वध प्रति वर्ष उपयुक्त ठहराया जाता है। इस ब्रह्माण्ड पर दृष्टिपात करने से पता लगता है कि इसमें पृथ्वी का अस्तित्व कुछ नहीं के बराबर है। सूर्य ही इस छोटी सी पृथ्वी से साढ़े बारह लाख गुना बड़ा है और अपने आस-पास हमारी पृथ्वी जैसी छोटी बड़ी बारह पृथ्वियों को प्रकाश देता है। किन्तु इस सूर्य की भी अनेकों तारागणों के सामने कोई विशेष महत्ता नहीं। यह तारागण मनुष्य की आँखों से तो क्या, वैज्ञानिक तरीके से बड़े बड़े दूरदर्शी यन्त्रों से भी पूरी तरह से गिने नहीं जा सकते। इनकी संख्या लाखों, करोड़ों अथवा इस से भी अधिक होगी, और प्रत्येक तारा हमारे देवता सूर्य भगवान्

से लाखों नहीं करोड़ों गुणा बड़ा है और फिर अपने अयन-पथ पर न मालूम कितने-कितने तारागण, पृथ्वी और चांद आदि लिए घूम रहे हैं। मुक्ति की इच्छा करने वाले लोगो! तनिक सोचो और बुद्धि से काम लो कि जिसके कारण आपको प्राणियों में सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है क्या आप उस सर्वशक्तिमान् की प्रजा का वध करके मुक्ति के मार्ग पर चल रहे हैं ?

हे मनुष्य ! तुझ में एक बाल तक बनाने की शक्ति नहीं है। छोटे-छोटे कीटाणुओं को जो तेरी चुटकी में लाखों की संख्या में आ जाते हैं तू देख भी नहीं सकता। वास्तव में उनके देखने के लिए तू अंधा पैदा किया गया है। मैं इस बड़े विश्व के कर्त्ता के सच्चे दरबार में बड़ी नम्रता के साथ हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि वह मुसलमान जाति में कोई ऐसा दयावान् भला मनुष्य उत्पन्न करे जो इस अत्याचारी तथा दया-रहित प्रथा से इन्हें छुड़ा दे। मुसलमान वास्तविक तौर पर कुरान शरीफ की आयत ४ अ—११—१०—३८ को उसी प्रकार से मानें जैसा उस में आदेश किया गया है, अर्थात् पशु और पक्षी भी उस ईश्वर के वैसे ही जीव हैं जैसे कि मनुष्य।

मांसभक्षण के विषय पर मैं ने विविध दृष्टिकोणों से विचार किया है। धर्म, चरित्र, मितव्यय, सदाचार, बलिदान, वीरता, स्वास्थ्य तथा मनुष्य के लिए अन्य प्राणियों की उपयोगिता-इन सभी दृष्टियों से इस पर विचार किया जायगा। बुद्धि से युक्ति-पूर्वक मांस खाने की समस्या को परखा गया है। मुझे यह लिखने में कोई झिझक नहीं कि मानवजीवन के इन सब दृष्टिकोणों में से एक भी ऐसा नहीं जो मांस खाने के प्रभाव में आ कर बुरे परिणामों का कारण न बनता हो। निजी जीवन, अथवा सामाजिक जीवन चाहे किसी भी दृष्टिकोण से देखें। यदि मेरी पुस्तक को

पढ़ने वाले महानुभाव संकुचित भावनाओं को छोड़ कर बुद्धि और न्याय के दृष्टिकोण से उस पर विचार करेंगे और उन में से कुछ भूले-भटके भी इन बातों को कार्यान्वित करेंगे, जो मेरे वर्षों के परिश्रम का परिणाम है, तो मैं इस नम्र परिश्रम को सफल समझूँगा।

जीवन क्या है—ऊपर लिखे गए विविध दृष्टिकोणों पर मुझे अलग २ विचार करना है। सब से पहले मांस खाने को धर्म तथा चरित्र के दृष्टिकोण से मैं पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ। जीवन क्या है? मनुष्य कहाँ से आता है और कहां जाता है? क्या वास्तव में यह उन वस्तुओं से, जिनके साथ यह उत्पन्न होता है, भिन्न है अथवा उनका परस्पर मिल जाना ही उन्हें इस प्रकार बदल देता है कि वह जड़ होते हुए भी चेतन हो जाती हैं। यदि जीवन अपने आप में एक अलग वस्तु है तो क्या मनुष्यों, पशु-पक्षियों और दूसरे प्राणियों की आत्मा एक सी है अथवा नहीं? कुछ ऐसे आवश्यक प्रश्न हैं जोकि सृष्टि के आरम्भ से ही बड़े बड़े दार्शनिकों के विचार का विषय बन चुके हैं।

आवागमन का सिद्धान्त—ऐसा कोई धर्म नहीं, जिसके आचार्यों ने इस पर विचार-विमर्श न किया हो। कई धर्म ऐसे हैं जो इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं, जैसे प्राचीन मिस्री, बाबली, यूनानी आदि। यह बात उन की देख-भाल से सिद्ध हो चुकी है। उन का विश्वास है कि सारे प्राणी एक ही ईश्वर के रूप हैं। सब आत्माएँ एक सी हैं और अपने कर्मों के अनुसार उन्हें भिन्न भिन्न शरीर मिलते रहते हैं। जो कर्म मनुष्य अपने जीवन में करता है, उनके अनुसार ही उसको दूसरी योनि मिलती है। भले और सात्विक कर्म करने से वह देवताओं का शरीर पाता है। राजसी कर्म करने

से वह फिर मनुष्य बनता है और गिरे हुए तामसी कर्म करने से वह पशु योनि में जन्म लेता है। आवागमन का सिद्धान्त, इस अन्तर का जो हमें संसार में हर स्थान पर दिखाई देता है, एक ऐसा हल प्रस्तुत करता है जो स्वीकार करने योग्य है। हम देखते हैं कि इस संसार में कोई मनुष्य राजा के घर पैदा होता है और किसी के पैदा होते ही उसके माता पिता को उसका पेट भरने की चिन्ता हो जाती है। कोई शक्तिशाली है तो कोई निर्बल, एक स्वस्थ है, तो दूसरा जन्म से ही रोगग्रस्त। बहुत से तो जन्म से ही कोढ़ी, कलंकी, अंधे, लंगड़, गंजे और कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त होते हैं। आवागमन का सिद्धान्त हमें यह बताता है कि यह सब अवस्थाएँ अपने कर्मों ही के परिणाम हैं जो हमने पहले जीवन में किये थे। उन्हीं के फल हमें इस जीवन में भुगतने पड़ते हैं। यदि इस सिद्धान्त को न माना जाय तो इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता कि यह ईश्वर की इच्छा है। किन्तु सब धर्मों के अनुयायी ईश्वर को न्याय करने वाला मानते हैं। और इस प्रकार उसकी इच्छा और न्याय में अन्तर दिखाई देता है, जिससे मनुष्य के धार्मिक विश्वासों को ठेस लगने का डर रहता है।

यह स्थान यद्यपि इस सिद्धान्त पर विचार करने का नहीं है किन्तु जिस बात को मैं प्रस्तुत करना चाहता हूँ वह यह है कि इस सिद्धान्त को मानने वाले तो सब प्राणियों की आत्मा को एक जैसी मानते हैं। उनके विश्वास के अनुसार जैसी आत्मा एक मनुष्य की है वैसी किसी पशु-पक्षी की भी है। दूसरे धर्मों के विश्वास के अनुसार यह सब सृष्टि ईश्वर की उत्पन्न की हुई है। उस सब के मालिक ईश्वर को प्रत्येक वस्तु में माना जाता है। वह हर स्थान पर और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व उसी के कारण है। इससे

भी यही परिणाम निकलता है कि सब प्राणियों में ईश्वर का अस्तित्व है। वही सब को जीवन प्रदान करने वाला है। अतः उस एक स्रोत से भी एक ही-जैसी आत्माएँ आएंगी। यही आदेश कुरान शरीफ के भी हैं (सूरा इनाम, आयत ३८)। जितने पशु भूमि पर चलते फिरते हैं और जितने पक्षी अपने दो परों पर उड़े उड़े फिरते हैं ये सब भी तुम लोगों की तरह के ही जीव हैं। (सूरा साफात आयत) –

"और अन्त में अपने अपने कर्मों के अनुसार सब के अच्छे और बुरे कार्य होंगे। वह इस लिए कि ईश्वर उन लोगों को उन के कर्मों का पूरा पूरा फल दे।"

फिर देखिए (सूरा जरियात, आयत) "और कर्मों का अच्छा या बुरा फल अवश्य मिलता है।" इस प्रकार के आदेश दूसरे धर्मों से भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि सब प्राणी अपने अन्दर एक ही ईश्वर का प्रकाश रखते हैं। उसे ही आत्मा का नाम दिया जाता है। हिन्दुओं का नियम है, 'अहिंसा परमो धर्मः' कि किसी प्राणी को भी दुःख न देना सब से बड़ा धर्म है। इस लिए इस धर्म के अनुयायी हो कर यदि वह मांस खाने जैसा कार्य करें तो वह सर्वोच्च धर्म की पदवी से गिर जाते हैं। वे मनष्य होकर पशु-पक्षियों जैसे कार्य करते हैं। सीमाप्रान्त (पाकिस्तान) के पठान मुसलमान हैं। वे यह मानते हैं कि आँख के बदले आँख और दांत के बदले दांत निकालने से ही पूरा बदला लिया जा सकता है। यदि ईश्वर के आदेशों को दृष्टि में रख कर देखा जाय तो क्या सारी सृष्टि को उत्पन्न करने वाला वही एक नहीं है और क्या सारी सृष्टि पर एक ही नियम लागू नहीं होना चाहिए? क्या ही अच्छा होता यदि वह मुसलमान पठान जब प्राणियों को अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए मारते हैं तब उस अवस्था में भी अपने बदले के नियम को

अपने आप पर लागू करें। तभी न्याय हो सकता है। आवागमन का सिद्धान्त भी कर्मों के अच्छे अथवा बुरे फल पर बल देता है। कुरान शरीफ़ के अनुसार भी कर्मों के सुख अथवा दुःख से कोई नहीं बच सकता। अब न्याय के लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ तुम अपने पर सहने को तैयार नहीं, वह दूसरों पर भी न लगाओ।

मनोरंजक कहानी—मेरे विचार में इस स्थान पर नीचे लिखी कहानी का वर्णन मनोरंजक होगा—

एक बूढ़ा और बुढ़िया एक राज्य की राजधानी में रहते थे। बुढ़िया सदा अपने पति से आभूषणों के लिए प्रेरणा किया करती थी। बेचारा बूढ़ा, जोकि राजा की एक छोटी सी नौकरी पर लगा हुआ था, उसकी इस इच्छा को कैसे पूरा कर सकता था? अन्त उसे सदा बुढ़िया के आभूषणों की चिन्ता रहती थी। में एक दिन बूढ़ा बहुत प्रसन्न-चित्त घर आया और अपनी बुढ़िया से कहा—आज हमारा भाग्य जाग उठा। हमारी सब आशाएँ पूरी हुई। राजा ने मुझे प्रसन्न होकर धन दौलत तथा आभूषणों के छकड़े देने का आश्वासन दिया है। अब हम शीघ्र ही बहुत धनी हो जायेंगे। किन्तु राजा ने इस असंख्य धन सम्पत्ति के बदले एक वस्तु मांगी है। बुढ़िया सहसा बोल उठी, "शीघ्र बताओ, वह क्या वस्तु है?" बूढ़े ने कहा, "बस तेरी एक आंख।" बूढ़िया ने यह वाक्य सुना तो उस का कलेजा धक से रह गया और उस ने उत्तर दिया, "मैं आंख नहीं दूंगी।" बूढ़े ने कहा, "तेरा आंख देने से बिगड़ता ही क्या है, तू एक आंख से अपना काम भली प्रकार संभाल सकती है, और तुझे आश्वासन देता हूँ कि तू मुझे ऐसी ही अच्छी लगेगी जैसी अब। तू एक आँख न देने का हठ छोड़ दे, क्योंकि हमारे सारे जीवन का धन वैभव जाता है। आशय यह कि ज्यों ज्यों बूढ़ा उसे समझाता, उस की चिन्ता बढ़ती ही जाती, और उस की जबान पर 'न' के

अतिरिक्त कोई और शब्द आता ही न था। अन्त में बूढ़े के बहुत हठ करने पर बोली कि आप ही अपनी एक आँख क्यों नहीं दे देते ? इसी से काम न बन जाएगा ? अन्त में बूढ़े ने बुढ़िया से कहा कि जब तू अपनी एक आंख के बदले में इतनी असंख्य धन सम्पत्ति तथा आभषणों को लात मारती है तो तू प्रतिदिन मुझे आभूषणों के लिए क्यों तंग करती है जबकि ईश्वर ने तुझे इतने अंग दिये हैं ? जिन में से एक एक का मूल्य असंख्य धन सम्पत्ति से अधिक है ? बुढ़िया चुप हो गई और फिर उसने कभी बूढ़े से आभूषणों की मांग न की। बुद्धिमान् मनुष्य सोचे कि जब मनुष्य अपने शरीर के एक अंग के बदले धन के ढेर लेने को तय्यार नहीं तो दूसरों की जान तक लेने में किस प्रकार अपना अधिकार सिद्ध कर सकता है ?

मुसलमान भाइयों के विषय में कुछ घटनाएँ मेरे समक्ष आई हैं और उनका उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ ये घटनाएँ मनोरजक होने के अतिरिक्त मेरे विषय पर प्रकाश भी डालेंगी।

पठान से वार्तालाप—एक बार मैं अब्दुल्लापुर लकड़ी लेने के लिए जा रहा था। रेलगाड़ी में यात्रा कर रहा था। मेरे निकट एक काबुली पठान भी बैठा था। मैं ने उस से प्रश्न किया कि आप कहाँ से आये हैं। उसने उत्तर दिया कि काबुल से। यह पूछने पर कि ऐ पठान यदि तुम को खाने के लिये पाव भर मलाई हो अथवा पाव भर मांस, तो तुम दोनों में से कौनसी वस्तु पसन्द करोगे? उस ने उत्तर दिया, 'मांस।' फिर उसने मुझ से पूछा, "क्या तुम भी मांस खाते हो ?" मैंने कहा, "खाता तो हूँ किन्तु जीवत मनुष्य का मांस खाता हूँ। न जानवरों का मांस खाता हूं, न मरे हुये का। आप कृपया अपनी जंघा का आध सेर मांस का टुकड़ा मुझे दे दें।" उस ने उत्तर दिया कि हम नहीं देगा। मैंने फिर चापलूसी से कहा कि आप की बहुत

कृपा होगी। हमारा आज का काम चल जायगा। उस ने क्रोध में कहा, "अरे, हम नहीं देगा।" आशय यह कि मैं जितना हठ करता गया वह उतना ही सख्त प्रत्युत्तर देता गया। जिन को ईश्वर ने समझ दी है, वह इस बात का आशय आप ही निकाल सकते हैं। मांस वही लोग खाते हैं जो स्वार्थी हैं और नहीं समझते कि हमारा ईश्वर वही है जो सब सृष्टि का है और सब सृष्टि के सभी जीवों को जीने का वैसा ही अधिकार है जैसा कि मनुष्य को।

एक दिन स्वामी राम तीर्थ एक नगर में व्याख्यान दे रहे थे। उसी बीच में उन्हों ने कहा कि सब प्राणियों के अन्दर एक ही आत्मा है। सुनने वालों ने कहा, "नहीं महाराज! सब एक दूसरे से पृथक् हैं।" स्वामी जी ने इस पर अपनी टांग की पिंडली में सूई चुभो ली, जिस से रक्त की धारा बहने लगी। भीड़ में बड़ा शोर मच गया और सब लोग दुःख व्यक्त करने लगे। इस पर स्वामी जी ने कहा कि सूई तो मैंने स्वयं चुभोई है, दुःख मुझे हुआ है, आप लोग क्यों दुःख अनुभव करते हो? लोगों ने उत्तर दिया कि महाराज आप के दुःख से हमें भी कष्ट हो रहा है। स्वामी जी ने इस पर कहा कि बस, यही आत्मा की एकता का प्रमाण है कि दुःख और सुख सब को एक समान होता है।

चाहे मनुष्य हो या पशु पक्षी, सब एक समान हैं। मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि प्रदान की है, अतः इस दृष्टि से यह दूसरे प्राणियों से श्रेष्ठ है। यह सुख दुःख को दूसरों पर प्रकट कर सकता है, दूसरे प्राणी ऐसा नहीं कर सकते, किन्तु दुःख है कि स्वार्थी मनुष्य कई प्रकार के बहाने ढूंढ कर और पत्थर-दिल तथा निर्दयी बन कर ईश्वर की सृष्टि को कष्ट पहुँचाते और मृत्यु के घाट उतारते हैं। यह केवल बुद्धि ही है जिस के कारण मनुष्य को मनुष्य कहलाने का अधिकार है। किन्तु मनुष्य इस का सदुपयोग न करके

अपने आप को पशु-पक्षियों के समान बना लेता है।

मुसलमान मित्र से बात-चीत—मैं एक बार एक मुसलमान मित्र के घर गया। मैंने उस के घर में एक फ्रेम में, जिस पर शीशा लगा हुआ था, एक सुन्दर फूलदार छपे हुए काग़ज़ पर मोटे मोटे अक्षरों में एक फ़ारसी की सूक्ति (Motto) लिखी देखी जो इस प्रकार थी।

'दौर जवानी तोबा करदन शेवाए पैगम्बर ईस्त,
वक्ते पीरी गुर्ग ज़ालिम मे शवद परहेज़गार।"

अर्थात् यौवनावस्था में बुरे कार्य न करने की प्रतिज्ञा करना भले लोगों का काम है, क्योंकि बूढ़े होने पर तो दुष्ट भेड़िया भी संयमी हो जाता हैं।

मैंने अपने मित्र से प्रश्न किया कि आप ने अपने घर में यह मोटो लगाया है। इस की पहिली पंक्ति तो ठीक है, किन्तु यदि दूसरी पंक्ति की व्याख्या की जाय तो संभवतः वह आप के विश्वास के प्रतिकूल हो, क्योंकि बुढ़ापे में दांत, पंजे और शक्ति की कमी होने के कारण भेड़िया जीवों को आसानी से नहीं मार सकता। इसी लिए उसको संयमी होने का यह ताना दिया गया है। युवावस्था में आप लोग यह समझते हुए कि जानवरों की जान लेना संयम के प्रतिकूल है और कुरान शरीफ़ का आदेश भी है कि ईश्वर तक जानवरों का मांस और रक्त नहीं पहुँचता अपितु सयम पहुंचता है, मूक जीवों को क्यों दुःख पहुँचाते हो? वह यह सुन कर वह चुप हो गया और कोई उत्तर न दे सका, किन्तु दूसरी बार जब मैं उस के घर गया तो वह मोटो वहां पर न था।

एक बार मांस खाने के सम्बन्ध में मेरी बात-चीत एक मुसलमान मित्र से हुई। उसने कहा कि माता के पेट में बच्चे का भोजन मासिक-धर्म का रक्त होता है, इसी लिये मांस मनुष्य का

प्राकृतिक आहार है। मेरे विचार से मेरे मित्र ने उसको अपने धार्मिक दृष्टिकोण से भी गलत कहा है। यदि मुसलमान धार्मिक तौर पर यह सिद्धान्त मान लें तो मानव का मांस उन के लिये धर्म के अनुसार ठीक बेठता है। इस के अतिरिक्त माता के पेट में हर प्राणी अपनी माता के परिवर्तित शुद्ध भोजन से पलता है। क्या गाय, भैंस, भेड़, बकरी, मृग आदि घास अथवा हरियावल खाने वाले के बच्चे माता के पेट में घास या हरियावल खा कर पलते हैं, अथवा मांस खाने वाले पशुओं के बच्चों को उन की माताओं के पेट में मांस मिलता है ? थोड़े में यह दलील पूर्णतया मिथ्या है। इसे मान लेने की अवस्था में क्या मुसलमान मानव के मांस को खाना आरम्भ कर देगें ? माता के पेट में मनुष्य का बच्चा नाभि से भोजन चूसता है न कि मुख से रक्त। मांसाहारी मनुष्य मांस खाने को उचित ठहराने के लिए कई प्रकार के वहाने ढूंढते हैं, और मृत जीवों को खा कर अपने शरीर को अपवित्र, आत्मा को गन्दा, तथा मन को निर्दयी बनाते हैं। ईश्वर की सृष्टि की सेवा करने के बजाय उसे दुःख पहुँचाने वाले बनते हैं, जो वास्तव में नरक का मार्ग है।

एक दुःखद घटना—एक मुसलमान विद्यार्थी ज़िया-उद्दीन जूलाई सन् १९३६ में रावी नदी में डूब गया। उस के साथी मुश्ताक़ अहमद ने उसके बाल पकड़ कर उसे बचाने का प्रयत्न किया किन्तु ज़िया-उद्दीन को नीचे से किसी जानवर ने पकड़ लिया था, जिस के कारण मुश्ताक़ के हाथ से ज़िया-उद्दीन छूट गया और डूब गया। तीन घंटे अनवरत (निरन्तर) प्रयत्न के पश्चात् नाविकों ने तीस फुट की गहराई से मृत शरीर को निकाला। मृत शरीर का सारा मांस तो जानवरों ने खा लिया था। लाश को देख कर ड्रिल मास्टर और दूसरे विद्यार्थी भी मूर्च्छित हो गये, क्योंकि मृत शरीर

का रूप अत्यन्त भयंकर हो चुका था। इतने में घर वाले भी वहां आ पहुँचे। मरे हुये लड़के के माता पिता ने मृत शरीर को देखा— तो वे भी यह देख कर मूर्च्छित हो गये। यह दुःख देने वाली घटना थी कि प्रत्येक देखने अथवा सुनने वाले का दिल कांप उठता था, किन्तु विचार करने योग्य बात है कि यदि मनुष्य पर अत्याचार हो तो उसे देखकर उसके संबन्धियों के अतिरिक्त जिन का उस का कोई भी संबंध नहीं मूर्च्छित हो जाते हैं, किन्तु वही जिन को मूर्च्छा आई, जानवरों के शरीर को चटखारे ले लेकर खाते हैं। क्या उन के यह कर्म स्वार्थ एवं अन्याय पर आधारित नहीं हैं ? क्या ही अच्छा होता यदि यह लोग भी समझते कि जैसा वह लड़का ईश्वर की सृष्टि के अन्तर्गत था, उसी प्रकार दूसरे प्राणी भी उसी ईश्वर के जीव हैं।

सांप दुष्ट है—मुसलमानों का सिद्धान्त है कि 'क़त्ल मूज़ी किब्ल अज़ एज़ा''-अर्थात् दुष्ट को हानि पहुँचाने से पहले नष्ट कर देना चाहिए। इस सिद्धान्त को इतनी सख़्ती से मानने का आदेश है कि नुमाज़ की नीयत को किसी अवस्था में भी भंग करने का आदेश नहीं, किन्तु यदि साँप पर उस समय भी दृष्टि पड़ जाय तो उसे मार ही देना चाहिए। तनिक इस सिद्धान्त पर ध्यान दें कि सांप को ऐसा दुष्ट किसने बनाया और यह अवगुण उसमें किसने उत्पन्न किया ? जानवरों में कई प्रकार के स्वभाव देखने में आते हैं। 'भेड़ चाल' तो प्रसिद्ध ही है, भेड़ों का हाल यहाँ तक वर्णन किया जाता है कि अमरीका में एक बार भेड़ चराने वाला एक हज़ार भेड़ों का रेवड़ लेकर एक नदी के किनारे पानी पिलाने के लिए पहुँचा। वहाँ पर नदी बहुत गहरी थी। संयोग-वश डर कर एक भेड़ ने नदी में छलांग लगा दी। फिर क्या था एक एक करके सभी भेडें नदी में डूब कर मर गईं।

क्या मानव में यह शक्ति है कि किसी जाति के संसार भर के जीवों के स्वभाव को बदल सके ? इसलिए यदि हम सांप को इसलिये दुष्ट समझते हैं, कि उसमें विष है, और उसका काटने का स्वभाव है, तो यह आदत उसको प्रकृति से ही तो मिली है। किन्तु दुःख है उन मनुष्यों पर जोकि सांप को तो दुष्ट समझ कर किसी अवस्था में भी क्षमा करना नहीं चाहते, किन्तु स्वयं को देखें कि उनकी कोई जाति किसी जानवर को खाती है तो कोई किसी को। या यों कहिए कि जितने भी प्राणी संसार में दिखाई देते हैं, उन सभी पर हाथ साफ़ किया जाता है । तब भी स्वयं को दुष्टों में नहीं गिनते। वाह रे न्याय ! क्योंकि न्याय करने वाला स्वयं मनुष्य है, इसलिए न्याय का, जो इच्छा हो, अर्थ लगा ले।

हंसना और रोना—एक शिकारी उठा और बन्दूक कंधे पर रख कर घर से बाहर निकल गया। उस का झोंपड़ा जंगल में ही था इस लिए वह जब चाहता, उठ कर शिकार के लिए निकल जाता था। घर से कोई दो तीन सौ फुट की दूरी पर गया होगा, कि उसे एक वृक्ष पर एक फ़ाख्ता और उसका बच्चा बैठे हुए दिखाई दिए। उसने ताक कर निशाना मारा। फ़ाख्ता तो संभल गई किन्तु उसका बच्चा फड़-फड़ा कर भूमि पर आ पड़ा। फ़ाख्ता शिकारी की ओर झपटी, किन्तु उसने बन्दूक की नली उस की ओर करके उसे डराया और हंस कर आगे चल दिया। उसने प्रसन्नमुद्रा में घर में प्रवेश किया किन्तु उसका कलेजा धक से रह गया ! उस की स्त्री अपने छोटे बच्चे को गोद में लिए रो रही थी ! बच्चे को सांप ने डस लिया था और वह मरने को था, शिकारी ने लपक कर उसे अपने हाथों में ले लिया किन्तु बच्चे ने हाथों में आते ही जान दे दी। संभवतः मृत्यु-देव शिकारी के आने ही की प्रतीक्षा कर रहा

था। शिकारी ने मृत शरीर को एक कपड़े में रख दिया और चुप न रह सका। एक दम आँसू निकल पड़े। एक ओर तो फ़ाख्ता का बच्चा मरा पड़ा था और दूसरी ओर उसके बच्चे का मृत शरीर था। फाख्ता के बच्चे की मृत्यु पर शिकारी हंस पड़ा था किन्तु अपने बच्चे के मृत शरीर पर उसकी अश्रुधारा बह रही थी।

मांस खाने का आरम्भ - मांसाहारी बहुधा यह कहते हैं कि मांस खाने की प्रथा प्राचीन काल से है। किन्तु खोज से पता चलता है कि भारतवर्ष में मांस खाने की प्रथा महाभारत से ४--५ सौ वर्ष पीछे आरम्भ हुई। महाभारत के युद्ध ने वह महान् परिवर्तन किया कि पृथ्वी से धर्म प्रायः लुप्त हो गया। धर्म का स्थान अधर्म ने ले लिया। वाममार्गी-जैसे अधर्मी उत्पन्न हुए। मदिरा, मांस और मैथुन जिन के तीन ऊँचे नियम थे। इस ३३५० के मध्य युग में जो वास्तव में मूर्खता का युग था चारों ओर अविद्या का विस्तार हुआ। वाम-मार्ग बहुत शीघ्र प्रचलित हुआ। यह सच है--पाप सदा शीघ्र फैलता, फूलता और फलता है। वाम-मार्ग का बौद्ध-धर्म ने सामना किया। मदिरा, मांस और मैथुन आदि दुराचारों को बंद करके चरित्र और दया का प्रचार आरम्भ किया। अब जिस प्रकार यहां दया का प्रचार दोबारा हुआ उसी प्रकार मसीह के उपदेश से यरुसलम में सफलता हुई। बलिदान बन्द हो गये। कबूतर बेचना बन्द कर दिया गया। पहला प्रभाव मसीह की शिक्षा का यह हुआ कि उसके शिष्य मति ने मांस खाना छोड़ दिया। इसी प्रकार योहन्ना ने भी। किन्तु यह क्यों हुआ? इसका कारण योग्य खोजियों और बुद्धिमानों ने पुराने इतिहास का अन्वेषण करके यह निकाला कि मसीह, बौद्ध धर्म के प्रचारकों का, जो मिस्र और सिकंदरिया में प्रचार करने गये, शिष्य था। तत्पश्चात् मसीह के

शिष्य पोलोस ने सब जानवर हलाल कर दिये। हाँ, अपने लिए उसने ईश्वर का नाम कलंकित न किया। मसीह के मरने के पश्चात् विरोधियों ने फिर मन का गुबार निकाला और मांसाहारियों ने उस पवित्र स्थान को जहां कबूतर बेचने से मसीह ने मना किया था, शूकर का बलिदान किया। फिर ईसा के छः सौ वर्ष पश्चात् हज़रत मुहम्मद साहिब ने प्रचार किया। परन्तु क्या और कैसे ? यह किसी से छिपा नहीं अर्थात् उन्हों ने वाम-मार्ग के बलिदान को बहुत अधिक बढ़ा दिया। अपने अनुयायियों में प्रत्येक का यह कर्त्तव्य बना दिया कि वह बलिदान करे। मांस को अच्छा बताकर मांस खाने की प्रथा को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया।

खुश्की आबी[1] और खला[2] के जिस क़दर हैं जानदार।
सबके जीवन का सरासर है अनासर[3] पर इनहिसार॥
रावता-बाहमी[4] अनासर की है गोया ज़िन्दगी।
मौत कहते हैं जिसे वह है इन्हीं का इन्तशार[5]॥
चलने उड़ने तैरने वाले व दीगर[6] जानदार।
कुछ मुकामी हैं जिन का इक फक़्त[7] मिट्टी पर अधार॥
जलचरों की ज़िन्दगी का जलचरों पर इनहिसार[8]॥
जुम्ला-तायर का[9] है आबी[10] और मुक़ामी पर मदार॥
वाह इन्सान अपनी बरतरी[11] के दावेदार।
देखने में पारसा[12] और हरकतों[13] में खूंख्वार॥
तुम सा वहशीपन[14] किसी जी जान[15] में मिलता नहीं।
तू निगल जाए सभी जानदार को ऐ नाबकार[16]॥

---

1. पानी। 2. आकाश। 3. जीवों। 4. परस्पर मिल कर रहना। 5. अलग हो जाना। 6. अन्य, दूसरे। 7. केवल। 8. आश्रय। 9. उड़ने वाले जीव। 10. पानी। 11. उत्कृष्टता। 12. पवित्र। 13. कार्यों। 14. जंगलीपन। 15. जानदार प्राणी। 16. मूर्ख।

क्या कभी सोचा है तूने क्या तेरे एमाल[1] हैं।
क्या हुआ है तू कभी खुदकरदनी[2] पर शर्मसार ।।
जिनको बे-रहमी से तू अपना बनाता है तुआम[3]।
ले के डूबेगी तुझे इन बेज़बानों की पुकार ।।
नफ़्स[4] के ग़लबे[5] ने जिस इन्सान को अन्धा किया
वह गिरा इन्सानियत से और हुआ जग में खुआर[6] ।।
जुमला[7] कायनात[8] यह इस किब्रिया[9] की शान है ।।
ज़र्रे[10] से खुरशीद[11] तक हैं मुज़हिर[12] परवरदगार[13] ।।
रहवर[14] यह पहचान और हर चीज़ से कर प्रेम तू ।
अशरफ़-उल्-मखलूक[15] की अज़मत[16] को रख ले बरक़रार[17] ।।

★

1. कर्म । 2. अपने किये पर । 3. भोजन । 4. इन्द्रियवर्ग । 5. आक्रमण । 6. बदनाम । 7. सम्पूर्ण । 8. सृष्टि । 9. ईश्वर । 10. परमाणु से । 11. सूर्यमण्डल । 12. प्रकाशित । 13. दीनबन्धु भगवान् । 14. मार्गदर्शक । 15. सर्वोत्कृष्ट प्राणी । 16. शान । 17. कायम, स्थिर ।

मानव के चरित्र पर मांस खाने का प्रभाव [१]

चरित्र का मूल्य—मनुष्य का चरित्र एक बहुत मूल्यवान् वस्तु है। संसार में यदि कोई अमूल्य वस्तु है तो वह चरित्र ही है। ध्यान देने योग्य बात है कि मनुष्य को जो-जो वस्तुएँ मिली हैं उनमें स्थायी कौन सी हैं। क्या वास्तव में ऐसी कोई वस्तु है जिस के विषय में मनुष्य गर्व से कह सकता है कि यह मेरा धन मेरे जीवन का एक स्थायी भाग है ? क्या ऐसे दृष्टान्तों की संसार में कमी है कि जो कल करोड़-पति थे आज भिखारी हो गए ? इसी प्रकार शारीरिक शक्ति को लीजिये, बड़े बड़े शक्ति-शाली व्यक्ति ऐसे रोगों में फँस जाते हैं कि मल-मूत्र जाने के लिए भी उन्हें दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। ठाट-बाट और तड़क-भड़क को ही लीजिए तो यह भी अस्थाथी वस्तुएँ हैं। कल एक मनुष्य जत्थे का सरदार था तो आज वह जेल में बन्द है। किन्तु चरित्र एक ऐसी वस्तु है जो सदा मनुष्य के साथ रहती है, जब भी सांसारिक विपत्तियों की भट्टी पर चढ़ने का समय आता है, सच्चरित्र मनुष्य कुंदन के समान दहकता हुआ संसार के सामने आता है। जिन लोगों का चरित्र दूषित है उन में सहन-शीलता एवं संकल्प-शक्ति नहीं होती। वे लोग सांसारिक दुःखों से तंग आ जाते और दब जाते हैं। एक छोटी श्रेणी का मनुष्य सच्चरित्र होते हुए बड़े धन वैभव और ठाठ-बाट वाले मनुष्य के सामने तन कर खड़ा हो जाता है, न उस

धनवान् के धन में और न उसके साथियों में इतनी शक्ति है कि वह उस सच्चरित्र व्यक्ति के सिर को नीचा कर सके, क्योंकि उसके अन्दर निर्भयता है। उस को केवल ईश्वर का डर है। और दूसरी कोई वस्तु उस सच्चाई की चट्टान से नहीं टकरा सकती।

मिथ्या तुलना– मांसाहारी मनुष्य बहुत बलपूर्वक कहा करते हैं कि प्रकृति ने जैसे कई पशुओं को मांसाहारी बनाया है वैसे ही यदि मनुष्य भी मांस खाएँ तो यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध नहीं है। ध्यान देने योग्य बात है कि मनुष्य की पशु-पक्षियों से क्या तुलना हो सकती है। कहीं मांस खाने से ही तो ऐसे लोगों की बुद्धि इतनी अधम नहीं हो जाती कि वह यह भी भूल जाते हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और अपने कर्मों का उत्तरदायी है। पशु-पक्षी तो भोग-योनि के प्राणी हैं। वह जो कुछ करते हैं उसके बदले उन्हें दण्ड अथवा पुरस्कार कुछ नहीं मिलता। जब कोई पशु या पक्षी दूसरे जीव को मार देता है तो उस पर प्रकृति का कोई विधान लागू नहीं होता। न मनुष्य ने ही ऐसा कोई नियम बनाया है कि पशु-पक्षियों को एक-दूसरे को मारने के लिये दण्ड दिया जाय। किन्तु मनुष्य दूसरे मनुष्य को मार डाले तो वह दण्ड का भागी होता है। इसका कारण यही तो है कि मनुष्य को ईश्वर ने, सोचने की शक्ति दी है। यदि वह अपने भाई का गला काटेगा तो इस से सामाजिक जीवन में बहुत गड़बड़ होगी। इस लिए चरित्र और उसका उत्तरदायित्व मनुष्य पर ही है। अतः इसकी पशु-पक्षियों से तुलना करना अपनी अल्प-बुद्धि दिखाना है। पशुओं में सिंहनी का बच्चा उसका जोड़ा हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे जानवरों का भी हाल है। किन्तु मनुष्य यदि ऐसे कार्य करे तो उस के लिये कम से कम सोसाइटी में कोई स्थान नहीं। इस लिये मनुष्य का प्रत्येक

कार्य सदाचार के नियमानुसार होना चाहिए, और यह बात सच्चरित्रता के विपरीत है कि मनुष्य मांस खाय, जिससे उस की आय बुरी तरह से खर्च हो और उसे ऋण लेने की आवश्यकता पड़े। संभवतः ऐसी अवस्था भी आ जाय कि वह ऋण न चुका सके, उसे रिश्वत लेने के लिए विवश होना पड़े और वह अपने चरित्र का दिवाला निकाल दे, तथा लोगों की बहू-बेटियों पर बुरी दृष्टि रख कर समाज के लिये लज्जा का कारण बन जाय।

देश-सेवा—आज संसार को साधारणतया और भारतवर्ष को विशेषतया देश-भक्ति या जाति-सेवकों की आवश्यकता है। किन्तु यह सेवा वे ही कर सकते हैं जिन का जीवन सादा हो, आवश्यकताएँ कम हों, और जो थोड़ा धन व्यय करके अच्छी से अच्छी शक्ति प्रदान करने वाली वस्तुएँ खा सकें। जिस मनुष्य का पेट कई और व्यक्तियों के परिश्रम की कमाई खा कर भी नहीं भरता, वह जनता की क्या सेवा कर सकता है ?

महात्मा गांधी ने अपने सादा जीवन और सादा आहार से संसार के सामने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया था जिसकी उपमा संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलती। इस दुबले-पतले मनुष्य ने कम से कम धन व्यय करके बहुत ही उत्तम देश-सेवा की और देश को दासता से छुड़ाने के लिए लोगों को अमूल्य बलिदान करने को तैय्यार किया। शताब्दियों से परतन्त्रता के चंगुल में फँसे हुए लोगों के मस्तिष्क में स्वतन्त्रता का नाद फूँक दिया और संसार की सब से बड़ी शक्ति के सामने अपनी सचाई और सदाचार के कारण उन्होंने अपना सिर ऊँचा किये रखा। वह संसार की शक्ति महात्मा जी की 'न' को 'हां' में बदलने में असमर्थ थी।

विज्ञान का निर्णय—आश्चर्य की बात है कि जब विज्ञान

ने भी आज यह निर्णय कर दिया है कि मांस खाने से मनुष्य को कई बड़ी से बड़ी बीमारियां लग जाती हैं और दूध इसकी अपेक्षा पूर्ण आहार है तथा मनुष्य की मानसिक शक्ति को स्थित रखने में बहुत सहायक है, फिर भी लोग दूध जैसी अमृत तुल्य वस्तु को त्याग कर मांस खाते हैं ?

हिन्दू का मस्तिष्क—यदि यह ठीक है कि हिन्दुओं का मस्तिष्क हज़ारों वर्ष की दासता में रहने पर भी एक विशेष गुण रखता है। यदि यह ठीक है कि इस बात के होते हुए भी कि हिन्दुओं की साधारण अवस्था पश्चिमी देशों के लोगों की अपेक्षा बहुत हल्की है, किन्तु इनकी बुद्धि उन जातियों के व्यक्तियों की भली प्रकार समानता कर सकती है, और इस तुलना में इनको किसी प्रकार नीचा देखने का डर नहीं है तो यह मानना पड़ेगा कि इसमें हिन्दुओं का शाक-सब्ज़ी खाने वाला जीवन बहुत हद तक ज़िम्मेदार है। लोग कहते हैं कि यूरोपियन और सब पश्चिमी देशों के लोग मांस खाते हैं तथा मदिरा पीते हैं, किन्तु उनकी बुद्धि किसी से कम नहीं है और उन्होंने विज्ञान में वह उन्नति की है कि मनुष्य की बुद्धि भी चकित रह जाती है। किन्तु वे लोग यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि यह पश्चिमी शक्तियां दूसरों पर शासन करती हैं। जब वे शासक नहीं थे तो उनकी सभ्यता जगलियों जैसी थी। उन की बुद्धि के ठीक मूल्य का तब पता लग सकता है जब कि वह दासता में भी अपने बुद्धि-कौशल को उसी प्रकार सुरक्षित रख सकें। दूसरे पश्चिमी विद्वानों ने जो उन्नति की है वह केवल भौतिक और आर्थिक ही है, आध्यात्मिक उन्नति में वह भारतवर्ष से बहुत पीछे हैं। आज भारतवासी लोग शताब्दियों की दासता के पश्चात् स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं।

यदि आप चाहते हैं कि आप सच्चरित्र हों, आपका आहार तथा आप का जीवन सादा हो, आप देश एवं जाति के लिए बोझ न हों, अपनी आवश्यकताओं के लिए आप को हाथ न फैलाना पड़े, दूसरों की बहु-बेटियों की इज्ज़त आप के हाथों सुरक्षित रहे, आप में नैतिक साहस हो, आप रिश्वत खाने से बचे रहें, आपके मस्तिष्क में विशेष स्फूर्त्ति हो और देश-सेवा जिसकी आप के देश को इस समय बहुत आवश्यकता है करने में आप का स्वभाव रुकावट पैदा कर सके, तो अपने आहार में मांस और उससे सम्बन्धित मदिरा आदि दूसरी मादक वस्तुओं का कदापि सेवन न करें।

★

मानव के चरित्र पर मांस खाने का प्रभाव [२]

(तीन मनुष्यों को बचाने के लिए एक का वध)

वारनट ३ मई सन् १८८४ को एक जहाज़ का मालिक बन गया। इस जहाज़ का भार थामस के अनुसार ३१ टन था। लम्बाई ५२ फुट थी और यह पानी में ६ फुट नीचे जाता था।

यह जहाज़ नया न था। इसे अलडोस ने १८६७ में बनाया था और यह १७ वर्ष तक प्रयोग में आता रहा था। कुछ परिवर्तन करने के पश्चात् इसे यात्रा के लिए बिल्कुल तैयार कर दिया गया और चार पुरुषों को इस में यात्रा के लिए नियत किया गया।

कैप्टेन थामस डुडले नामक एक पुरुष को दो सौ पौंड के बदले इस बात पर राज़ी किया गया कि वह ज़हाज को सिडनी तक चला कर ले जाय। इस पुरुष का कहना था कि वह इस जहाज़ में संसार भर का चक्कर लगा सकता है। एक लड़के और दो जहाज़ियों का भी प्रबन्ध किया गया। और पाँच आदमियों का यह काफ़िला ३ मई को मगनामती (Magnamati) में टोनरवरी[1] से साऊथैम्पटन[2] की ओर चल पड़ा।

जहाज़ बहुत भली प्रकार से यात्रा करता था। १७ मई को वह जहाज़ साऊथैम्पटन से भी अच्छी प्रकार चला गया। कैप्टेन थामस डुडले के दोनों साथी स्टीफिन्स तथा ब्रुक्स बहुत होशियार

1. Tonarbary 2. Southampton

जहाज़ चलाने वाले थे। इनका चौथा साथी १७ वर्ष का एक लड़का रिचर्ड पारकर था। सब में प्रेम था और यात्रा सफलता-पूर्वक हो रही थी। उन्हें ख्याल था कि वे कई सप्ताह और महीने ऐसे ही गुज़ार सकते हैं।

ये मैडरिया में भी प्रविष्ट हो गए और जून के आरम्भ तक इन की यात्रा उल्लेखनीय तथा सराहनीय थी। चारों मित्र प्रसन्न थे। वायु अनुकूल थी, और समुद्र का जल भी ठीक था। वे प्रतिदिन एक सौ मील के लगभग यात्रा करते गये।

अन्त में २ जून को अचानक वायु बन्द हो गई। वे घबराए, किन्तु ३ जून को फिर वायु चलने लगी, तो मानो उनके सांस भी चलने लगे।

किन्तु ३ जून की रात्रि को वायु बिल्कुल बन्द हो गई। सारी रात वे बेचैन रहे और ४ जून को एक तूफान आरम्भ हो गया। उनके लिये जहाज़ भी सँभालना कठिन हो गया। ऋतु के परिवर्तन ने उन्हें बहुत व्यग्र कर दिया। वे लोग हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे। वे जीवन और मृत्यु की सीमा पर खड़े थे। वायु का एक ही तेज़ झोंका उन्हें मृत्यु की गहरी खाई के ढकेलने के लिए पर्याप्त था। किन्तु इतना होने पर भी वे अभी तक जीवित थे। और जहाज़ भी सुरक्षित था। उनकी और जहाज़ की यह कुशलता बड़ी आश्चर्य-की बात थी।

पहले वह हर स्थान पर खाने-पीने की सामग्री ले लिया करते थे, किन्तु अब स्टोर देखा गया तो उनके पास केवल २ पौण्ड खुराक रह गई थी। पानी की एक बूंद भी उनके पास न थी। मानों मृत्यु इन्हें चारों ओर से डरा रही थी। तूफान से बच जाते तो भूख से बचना कठिन था। और यदि भूख पर काबू पा लेते तो पानी के बिना और भी कठिनता थी। समुद्र में रहने पर भी उनके

पास पीने का जल न था। समुद्र का पानी पीना उन के लिए अस्वाभाविक था।

अचानक एक लकड़ी की पेटी बहती हुई आई। उस में खाने पीने की सामग्री थी। उसे उन्हों ने पकड़ लिया और कुछ दिन आराम से व्यतीत हो गये किन्तु भोजन की फिर कमी हो गई और वे लोग भूमि से सैंकड़ों मील दूर पानी में अपने जहाज़ पर बैठे मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रहे थे।

एक वार प्रकृति ने फिर उनकी सहायता की। वे एक कछुआ पकड़ने में सफल हो गये। वह कछुआ इतना बड़ा था कि वे चारों ही उस के मांस पर सप्ताह भर निर्वाह करते रहे। उसके पश्चात् उन्हें फिर भूख ने आ दबाया। प्यास से भी वे दुःखी हो रहे थे।

डुडले और स्टीफन्स दोनों विवाहित थे। वे अपनी स्त्रियों तथा बच्चों को इंगलैंड छोड़ कर आये थे। सोच रहे थे कि हमारी मृत्यु के पश्चात् उन का क्या बनेगा।

एक दिन अचानक जहाज़ डूब गया। उन्होंने साहस से काम लिया और जान बचाने वाली नाव पर चढ़ गये जो जहाज़ में ही मौजूद थी। अब उनकी यात्रा का एक नया प्रकरण आरम्भ हुआ। वायु बंद, वर्षा बन्द, खुराक समाप्त। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उन का स्वास्थ्य बिगड़ता गया। डडले जैसा बलवान् पुरुष भी भूख से इतना कमज़ोर हो गया कि उसके लिए एक पग चलना भी कठिन हो गया।

जब इंगलैण्ड के उन सभ्य पुरुषों को मृत्यु ने तंग कर दिया तो वे रक्तपात करने पर विवश हो गये। वे एक भयंकर प्रोग्राम बनाने पर विचार करने लगे। उन्होंने निर्णय किया कि तीन पुरुषों का जीवन बचाने के लिये एक को बलिदान कर दिया जाए। कैप्टेन

डुडले ने इस सम्बन्ध में रिचर्ड पारकर का नाम प्रस्तुत किया। किन्तु ब्रुक्स ने इसका बल-पूर्वक विरोध किया और कहा, "एक निरपराध युवक का मांस खा कर जीवित रहने की अपेक्षा हमें मर जाना चाहिये।"

डुडले ने कहा, "पारकर अकेली जान है, यदि मर भी गया तो किसी को क्या हानि पहुँचेगी। हमारे मरने से हमारे बच्चे अनाथ हो जाएँगे। हमारी स्त्रियों के लिए संसार अंधेरा हो जायग। पारकर का जीवन व्यर्थ है। यदि यह हमारे काम आयेगा, तो बहुत अच्छा होगा।"

पारकर को यह विदित नहीं था कि उसे मार डालने के प्रबन्ध किये जा रहे हैं। वह बेचारा तो स्वयं भूख और प्यास से दुबला हो गया था। वह ऐसा कटु और कठोर जीवन बिताने में असमर्थ था। जब प्यास के हाथों तंग आ गया, तो उसने समुद्र का पानी भी पिया जिससे उसे मूर्च्छा आ गई।

पारकर की मूर्छा से कैप्टेन स्टीफन्स को अवसर मिला। उन्होंने निर्णय किया कि यदि प्रातःकाल तक उन्हें शिकार न मिला, तो वह पारकर को ही खाना आरम्भ कर देंगे। डुडले आदि की नीयत अच्छी थी, किन्तु भूख और प्यास ने उन्हें इतना पत्थर-दिल बना दिया था कि वे अपने साथी का मांस खाने को भी तैयार हो गये। वे जानते थे कि यदि ऐसा न किया गया तो निश्चय ही चारों की मृत्यु हो जायगी। वे जानते थे कि विधान यद्यपि उन्हें हत्यारे, खूनी और अपराधी कहेगा, किन्तु ईश्वर के निकट उनका यह काम अपराध न हो कर बुद्धिमत्ता होगी। यदि एक बार भी वर्षा हो जाती तो काफ़ी समय जीवित रह सकते थे। जब विवश हो गये तो उन्होंने पारकर को मारने की योजना को कार्यरूप देने का निश्चय कर लिया। किन्तु ब्रुक्स ने इस भयानक कार्य में भाग लेने से इन्कार

कर दिया। स्टीफन्स से बोला, "मैं इतना कमज़ोर दिल हूँ कि यह भयानक काम करना तो एक ओर रहा, इसे देख भी नहीं सकता।"

अन्त में कैप्टन डुडले ने तेज़ चाकू निकाला और ईश्वर से क्षमा-याचना के पश्चात्' पारकर को लक्ष्य करके कहा, "मेरे प्यारे! यह एक विवशता है। मैं तीन पुरुषों को बचाने के लिए यह कार्य करने लगा हूँ, मुझे क्षमा कर देना।" फिर उसने वह तेज़ चाकू उसकी गरदन पर चला दिया। तीनों साथियों ने पारकर के मांस से भली प्रकार अपनी भूख मिटाई।

ईश्वर की करनी ऐसी हुई कि अगले दिन ही वर्षा आ गई और मौसम खुल गया। नाव अच्छी तरह चलने लगी और वे किनारे की ओर बढ़ने लगे।

इन्हें दूर से एक जहाज़ भी दिखाई दिया। जहाज़ ने भी नाव को देख लिया। कैप्टन डुडले, स्टीफन्स और ब्रुक्स को बचा लिया गया। उनकी नाव जहाज़ वालों की सहायता से किनारे पर आ लगी। इस जहाज़ का नाम था सोनट्रोमा। वे चार महीने के बाद ६ सितम्बर १८८४ को फालमाऊथ पहुँचे।

पारकर की भयानक हत्या को उन्हों ने छिपाया नहीं, अपितु डुडले ने स्वयं पुलिस में जाकर सब बातें सच-सच बता दीं और कहा कि हम पारकर की हत्या करने वाले अवश्य हैं, किन्तु हम ने ऐसा करके तीन पुरुषों और परिवार वालों का जीवन बचा लिया है। यदि पारकर को बलिदान न किया जाता तो आज हम आपके सामने जीवित न होते और पारकर भी मर जाता।

मुकद्दमा रजिस्टर कर लिया गया। फालमाऊथ के मैजिस्ट्रेट के सामने भी इन तीनों ने यही बताया और कैप्टेन डुडले और स्टीफन्स का ऐतिहासिक समुद्री खूनी मुकद्दमा आरम्भ हो गया।

८ नवम्बर १८८४ को वैरन हैडल स्टोन के सामने ये

लोग रिचर्ड पारकर की हत्या के अभियोग में न्यायाधीश के समक्ष लाये गये। इस मुकद्दमे का खूब विज्ञापन हुआ। लोगों का शौक़ बढ़ गया और जब इन हत्यारों के बयान समाचार-पत्रों में आने आरम्भ हुए तो लोगों के दिल में इनके लिए सहानुभूति भी उत्पन्न हुई। सब उन्हें विवश और निरपराध समझने लगे। लोगों ने इनके लिए रुपये इकट्ठे किये और आपस में मिलकर इनका मुकद्दमा लड़ने का प्रबन्ध किया गया। बैस्टरन सरकट के सुप्रसिद्ध वकील मिस्टर कोलीन की सेवाएँ प्राप्त की गईं। यही वकील अन्त में मद्रास का मुख्य न्यायाधीश (चीफ़ जस्टिस) बना।

मिस्टर कोलीन ने न्यायालय में कहा,-"इन लोगों को हत्यारे नहीं कहा जा सकता, इन्हों ने जो कुछ किया, वह ऐसी असाधारण स्थिति में किया है कि इसके अतिरिक्त और कुछ चारा नहीं था। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि तीन व्यक्तियों को बचाने के लिये एक का वध करना आवश्यक था।"

वकील साहिब की दलीलें बहुत ठोस थीं। ज्यूरी के सामने केस रखा गया। सब ने घटनाओं को दुहराया और अपना निर्णय दे दिया।

अन्त में मुकद्दमा रॉयल कोर्ट आफ जस्टिस में पेश हुआ और निर्णय करने के लिए पाँच न्यायाधीश नियत किये गये, जो मिस्टर ग्रोवर, डेनमैन, वैरन्स, पोल्लक मिडलस्टोन और चीफ़ जस्टिस लार्ड कालरेज थे। एक बार फिर अपराधियों के वकील ने इस बात पर बल दिया कि साधारण स्थिति में इन का काम दण्ड के योग्य होता, किन्तु जिस स्थिति में इन्होंने ऐसा किया, वह पूर्णतया क्षमा के योग्य है। दृष्टान्त के लिए यह कहा जा सकता है कि यदि दो व्यक्ति डूब रहे हों, दोनों ने एक दूसरे को पकड़ रखा हो, उस समय यदि किनारे पर एक ऐसा व्यक्ति खड़ा हो जो केवल एक ही को

जान बचा सकता है और वह एक को दूसरे से अलग करके उसका जीवन बचा कर किनारे पर ले आवे तथा इतने में दूसरा डूब कर मर जाय तो क्या आप का विधान जान बचाने वाले को दूसरे का हत्यारा बता सकता है ?

एटोर्नी जनरल ने इसके उत्तर में कहा, "मेरे मित्र ने हत्या के सम्बन्ध में यह सफ़ाई प्रस्तुत की है कि अपराधियों ने भूख और प्यास से दुःखी हो कर ऐसा किया है। किन्तु इंगलैण्ड का कानून तो यह कहता है कि जो व्यक्ति भूख से मर रहा है वह किसी का भोजन चुरा कर नहीं खा सकता, तो कानून इनकी हत्या का अपराध कैसे क्षमा कर सकता है ? यदि पारकर की हत्या के कार्य को उपयुक्त समझते हैं तो आपके विचार में भूख से मरने वाला व्यक्ति किसी का भोजन लेने के लिए दूसरे की हत्या भी कर सकता है।

काफी समय तक तर्क-वितर्क होता रहा और अन्त में मुख्य न्यायाधीश ने अपना निर्णय सुना दिया। इस मुकद्दमे का कानूनी पहलू यह है कि जो हत्या परिस्थिति से विवश हो कर की जाय, वह अपराध है अथवा नहीं।

यह भी सब जानते हैं कि अपनी रक्षा करना और अपने को जीवित रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। किन्तु किसी के जीवन को समाप्त करके अपनी रक्षा करना एक भयंकर अपराध है। परिस्थिति कानून को बदल नहीं सकती। इस लिये मैं कैप्टन थामस डुडले और स्टीफन्स को अपने साथी पारकर की हत्या के अपराध में मृत्यु-दण्ड देता हूँ।

किन्तु इन्हें फांसी पर न लटकाया गया और तत्पश्चात् रानी के आदेश से मृत्यु-दण्ड को छः महीने की जेल में बदल दिया गया।

मांसाहारियों की मनोदशा यह हो गई है कि अपने जीवन

को बचाने के लिये अपने मित्रों और सम्बन्धियों को भी मार कर खा जाते हैं।

मुसलमानों के सम्बन्ध में—वैसे तो मांस खाने वाले व्यक्ति संसार के प्रत्येक भाग में पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं, किन्तु भारत वर्ष में चार करोड़ के लगभग मुसलमान हैं, जो हमारे साथ रहते हैं। हम को उनसे दिन रात काम पड़ता है। जो स्वयं मांस खाते हैं और मांस को बहुत अच्छी वस्तु समझते हैं। इसके अतिरिक्त भारत के शेष मांस खाने वालों के लिए भी ९७ प्रतिशत मांस का वे ही प्रबन्ध करते हैं। केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु चीन में भी, जहाँ की जन-संख्या ५० करोड़ के लगभग है और उनमें एक दो करोड़ ही मुसलमान हैं, मुझे एक बार समाचार पत्र में पढ़ कर अचम्भा हुआ कि मांस खाने वाले मनुष्यों के लिये ये ही लोग मांस की व्यवस्था करते हैं। भारत और चीन दोनों देशों की कुल जन-संख्या संसार की जन-संख्या से प्रायः आधी है। अन्य मुसलमान देश वजीरस्तान, अफ़गानिस्तान, ईरान, टर्की, मिश्र, अरब, सूडान, अफ्रीका, पाकिस्तान, रूस आदि में २० करोड़ के लगभग मुसलमान हैं। इसका आशय यह हुआ कि संसार की ३/४ जनसंख्या को मांस खिलाने की व्यवस्था ये लोग ही करते हैं।

नीचे कुछ घटनाएँ दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, जिनका आशय मुसलमानों अथवा दूसरी जातियों का निरादर करना नहीं, किन्तु वास्तविकता पर प्रकाश डालना और अपने लक्ष्य के विषय में युक्तियाँ प्रस्तुत करना है। मैं उन बातों से सदा बचना चाहता हूँ जिनसे किसी जाति का निरादर हो। मैंने जो घटनाएँ लिखी हैं वे सब समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

एक पाकिस्तानी डाक्टर की दुष्टता—(प्रताप ४ जनवरी १९५९)

लायलपुर ३ जनवरी १९५९—पाकिस्तान की स्पैशल

पुलिस ने लायलपुर के एक ५० वर्षीय डाक्टर ताज को एक स्टोर-कीपर समदखान और एक फकीर मकदूल शाह की हत्या के अभियोग में पकड़ लिया है। इस डाक्टर की नर्स सोफ़िया ने पुलिस के सामने बयान देते हुए यह भेद बताया है कि डाक्टर ताज को मनुष्य का रक्त पीने की आदत है। मालूम हुआ है कि पुलिस ने इस हत्या में मिल कर काम करने के अभियोग में इस डाक्टर के दो साथी अहमद खाँ और अल्ला रक्खा को भी बन्दी कर लिया है और इनके द्वारा मारे गये समद खान की साइकिल भी डाक्टर ने इन साथियों के पास से प्राप्त कर ली है। यह भी पता चला है कि दोनों हत्या किये हुये पुरुषों के शव नहर में प्रवाहित कर दिये गये-जिन को कि इस ने लायलपुर के मैजिस्ट्रेट के सामने स्वीकार कर लिया है।

लाहौर में एक बालक से बदमाशी की घटना—(प्रताप १८ सितम्बर सन् १९२८) ग्वालमंडी लाहौर में एक मुसलमान इंजिनीयर के लड़के को दिन-दहाड़े मार दिया गया। लड़का स्कूल में पढ़ता था, सुन्दर था। दुराचारी उस से बदमाशी करना चाहते थे। किन्तु वह उनके हाथ न आ सका। अन्त में उन्होंने इंजिनीयर साहिब के नौकर पूरा को फँसा कर और रुपया आदि देकर इस षड़यन्त्र में साथ मिला लिया।

सुलतानी गवाह मुखबिर का बयान—आज जब न्यायालय में मुकद्दमा पेश हुआ तो सुलतानी गवाह ने कहा कि जब बहुत समझाने पर भी लड़का न माना तो हम ने फैसला किया कि बलपूर्वक उससे बदमाशी करके उसकी हत्या कर दी जाय। इंजिनीयर के नौकर को हमने अपना साथी बना लिया। एक दिन नौकर ने लड़के को किसी बहाने से सामने वाले खाली मकान में पहुँचा दिया।

हमारा एक आदमी वहां छिपा बैठा था। ज्यों ही लड़का सीढ़ियों पर गया, बाकी दोनों ने जो ताक में खड़े थे, उसे पकड़ लिया और ऊपर ले गये।

हत्या करने का दृश्य—लड़के से बदमाशी करने का फ़ैसला किया गया तो उस ने मना किया। इस पर हमने उसका पायजामा फाड़ डाला और बारी बारी से उससे बदमाशी की। इसके पश्चात् एक अपराधी ने उस्तरा लेकर उसकी हत्या करनी चाही, किन्तु उसका हाथ रुक गया। दूसरे ने कहा कि ऐसे काम करते हो और हत्या करने से डरते हो। बस, तीनों लड़के की छाती पर चढ़ कर बैठ गये और उस्तरे से उसका गला काट दिया। अपराधी ने पानी डालकर शव को ठंडा किया।

अंगुलियां काट डालीं—एक मुसलमान स्त्री ने शत्रुता के कारण बड़ी निर्दयता से अपने छोटे भतीजे की अँगुलियाँ काट डालीं। कहा जाता है कि कोट ख्वाजा सईद (मुगलपुरा) में एक अल्पवयस्क मुसलमान लड़के को उसकी चाची ने, जो नम्बरदार की धर्मपत्नी बताई जाती है, घर बुला कर छुरी से घायल किया। पहले उसने बालक के एक हाथ का अगूँठा काट डाला और फिर दूसरे हाथ की अँगुलियाँ जड़ से काट डालीं। घर वालों को इस बात का पता चल गया। उन्होंने घायल लड़के को बहुत बुरी हालत में अस्पताल पहुँचाया। (प्रताप १ जुलाई १९३६)

बकरी का बध—अमृतसर की पुलिस ने रहमत नामक एक मुसलमान को पकड़ा है, जिसने नगर के बाहर तोंग नाम के गांव के निकट रात्रि के समय एक जीवित बकरी की, जो कि खेत में चर रही थी टांग काट ली। तत्पश्चात् जब उसे भून कर खा रहा था, तो लोगों ने उसे पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। वह

गुजरात का रहने वाला है और कहते हैं कि वह भूखा था, इसीलिए उसने ऐसा काम किया।

बकरों के स्थान पर कुत्ते खिलाता रहा—मरदान में उड़ती खबर है कि वहाँ के होती नामक बाज़ार में कसाई के पास से चार कुत्तों के सिर मिले हैं। कहा जाता है कि पुलिस ने उसे पकड़ लिया है और हवालात में भेज दिया है। (प्रताप ३ जुलाई १९३७)

पक्षियों को दुःख देने पर दण्ड—(प्रताप २१ मई, १९३६) आज सरदार अब्दुलसमद खाँ, सिटी मैजिस्ट्रेट ने कुरबाल, थाना सुनावां के एक जाट सरदार मुहम्मद को कुछ तिलियरों को दुःख देने के अपराध में ४० रुपया दण्ड अथवा एक महीने का कारावास दण्ड दिया है। उसने तीन तिलियरों को पकड़कर उनकी आँखों को सूई धागे से सी दिया और बाहर बिठला दिया। जब उसके पास और तिलियर एकत्रित होते तो अपराधी उन्हें झट पकड़ लेता था।

आग़ा खाँ के निमन्त्रणों में मदिरा का दौर एवं—गप शप (प्रताप २१ फरवरी १९३४)—यह विषय हमने मुआसर-उल-जमीयत, दिल्ली के सम्पादकीय लेख में देखा तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सोचने लगे, 'ईश्वर! यह क्या हो रहा है। मुसलमानों के नेताओं के भोज में मदिरा का क्या काम?' किन्तु 'अल्‌जमीयत' की इन पंक्तियों ने सारी बात को स्पष्ट कर दिया। सर आग़ा खाँ दिल्ली आये और दो सप्ताह के लगभग ठहर कर लौट गये। इन दिनों में नई दिल्ली में जो कुछ देखा गया तथा जिमखाना क्लब और रोशनआरा बाग़ में जो कुछ सुना वह भारतवर्ष के सबसे अधिक निर्धन और धर्मात्मा लोगों के लिए हज़ारों बातें अपने अन्दर छिपाये रखता है। केवल थोड़े दिनों के

अन्दर पच्चीस हज़ार रुपया आग़ाखां के डिनरों, लंचों और ऐट-होमों पर व्यय हुआ, ठीक उस समय पर जबकि बिहार प्रान्त में विपत्ति से पीड़ित विधवाएँ और अनाथ बच्चे मृत्यु के लिए तड़प रहे थे। मुस्लिम कान्फ्रेंस और मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ताओं ने जगमगाते हुए होटलों की शानदार मेज़ों को हर प्रकार की वस्तुओं से सजाया और थोड़ी देर के लिए अपनी जाति की ग़रीबी और बिहार के लोगों को बर्बादी एवं विपत्ति को मन से बिल्कुल भुला दिया।

इस सम्बन्ध में ये पंक्तियां भी पढ़ लीजिए - किन्तु यह बात यहाँ तक ही समाप्त नहीं हो जाती। व्यर्थ का ख़र्च और दूसरों की असह्य वेदना को भुलाना तो इसका केवल एक ही पहलू है। दूसरा पहलू इससे अधिक आश्चर्यजनक और शिक्षाप्रद है। मुसलमानों के इन नेताओं ने जो सारे भारत के आठ करोड़ लोगों के भाग्य का निर्णय करने के लिए एकत्रित हुए थे, आग़ाख़ाँ के भोजों में खुले तौर पर इस्लामी आदेशों का निरादर किया और मदिरा जैसी बुरी वस्तु को जिसका सरकारे-दो-आलम, सुअल्ले अस्सलाम ने अम-उल् जनायस के नाम से उल्लेख किया है, साधारणतया मुसलमानों के सामने पेश किया और पीने वालों ने शराब को यह कहकर पिया कि कौन कहता है इसका पीना हराम है, इसका तो 'न पीना' हराम है।

दो मुसलमान पार्टियों में झगड़ा—नौलक्खा (लाहौर) की पुलिस ने अपने प्रदेश मिसरी शाह में इमामबाड़ा हुसैनाबाद अथवा रब्ब घर की दो पार्टियों को दंगे के सम्बन्ध में पकड़ लिया था। जिसके विषय में समाचारपत्र प्रताप १६ अप्रैल १९३६ में मुस्लिम न्यूज़ सर्विस की यह रिपोर्ट छपी थी :—

(लाहौर १५ अप्रैल १९३६) — आज खां साहिब मियां हकीम उद्दीन मैजिस्ट्रेट दर्जा पहला के न्यायालय में १३ अप्रैल को मिसरीशाह के एक इमामबाड़ा हुसेनाबाद (अर्थात् रब्ब घर) में मीर एज़ाज हुसैन एक्स्ट्रा ऐसिस्टैंट कमिश्नर, अमृतसर, एवं करामत अलीशाह आदि नौ व्यक्तियों के और ज़ामिन अली आदि छः व्यक्तियों के बीच झगड़ा होने पर वट्टी की पुलिस ने इन १५ मुसलमानों का दफ़ा १०६—१५१ ज़ाविता फौजदारी के अनुसार शान्ति भंग करने के ख़तरे के अभियोग में चालान किया। सब व्यक्तियों ने न्यायालय में बयान दिया कि उन्हें एक-दूसरे से किसी प्रकार का ख़तरा नहीं और आपस में समझौता कर लिया है। मुकदमे के हाल ऐसे बताये जाते हैं कि इमामबाड़ा में एक वृद्ध फकीर थे। जिन्हें लोग 'सरकार-ग्राला-शान' कहते थे और जो स्वयं अपने आप को 'रब्ब' कहते थे। मीर एज़ाज हुसैन और करामत अलीशाह आदि की पार्टी ने इस भूमि पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहा। इसी आशय से उन्हों ने १३ अप्रैल की शाम को इमामवाड़ा में सूअर का मांस पकाया और वहीं खाना आरम्भ कर दिया। पुलिस ने समय पर पहुँच कर काबू पा लिया और मांस तथा बर्तन, जिस में मांस पकाया गया था, लेकर दोनों पार्टियों का चालान शान्ति भंग करने, के अभियोग में कर दिया। आज न्यायालय में लिखित समझौता पेश करने पर उन्हें वरी कर दिया है।

यहां यह कुछ वर्षों के समाचार लिखे गये हैं। ये बहुत ही क्रूर और मानवता से गिरी घटनाएँ हैं। कई मुसलमानों ने तो अपनी पत्नियों को दूसरों से अवैध प्रेम करने पर प्रेम सम्बन्ध होने पर भी समागम न करने पर अथवा रोटी पकाने से इन्कार करने पर मार डाला। ऐसी हत्याएँ सदा होती रहती हैं और ऐसी

घटनाएँ भी बहुधा होती हैं कि पत्नी ने दूसरे व्यक्ति से प्रेम करके अपने पति को विष दे दिया । इस के अतिरिक्त सीमाप्रान्त (पाकिस्तान) में ऐसी घटनाएँ भी होती रहती हैं कि पति ने अपनी स्त्री के और पिता ने अपनो पुत्री के स्तन बुरे चाल-चलन के कारण काट दिये ।

काश्मीर के नगर बारामूला में सन् १९४७ को लुटेरे पठानों के समाचार के समय घटित एक घटना का वर्णन किया जाता है । बारामूला की जनसंख्या १४ हज़ार थी । वज़ीरी तथा मसूदी पठानों ने निःशस्त्र पुरुषों, बूढों, रोगियों, स्त्रियों तथा बच्चों का दस हज़ार की संख्या में बध कर दिया । अस्पतालों में भी बहुत से बच्चों के अंग, जैसे भुजाएँ, टांगें सिर तथा धड़ अलग-अलग बिखरे पड़े थे । फिर उन्हों ने कई रास्ते जाती स्त्रियों को पकड़ा और कुछ दूर ले जा कर एक पंक्ति में खड़ा कर दिया । एक पठान ने कन्धे से बन्दूक उतारी और गोलियां भर लीं । पंक्ति में खड़ी हुई एक स्त्री हंस पड़ी । उस के हंसने से पठान को उस का एक सोने का दांत दिखाई दिया । इस पर पठान ने अपनी बन्दूक भूमि पर रख दी और छुरा लेकर उस के दांत निकालने को उस की ओर लपका । दो पठानों ने उस स्त्री को दोनों हाथों से पकड़ लिया और तीसरा उस के दांत छुरे से निकालने लगा । इतने में एक पाकिस्तानी अधिकारी उस ओर आ निकला । उसने आदेश दिया कि ठहरो । इस प्रकार से उन स्त्रियों की जान बच गई । यह सीमाप्रान्त के पठानों की वीरता का उदाहरण है ।

फिर भारत के सैनिक इन के मुकाबले को हवाई जहाज़ों में पहुँचे तो भारी संख्या में क़बाइली पठान मारे गये । वे चौबीस घण्टे भी डट कर मुक़ाबला न कर सके और पाकिस्तान की सरकार से सहायता मांगी । पाकिस्तान की सेना भी उन की सहायता को

पहुँची और उस ने डट कर भारतीय सेना का मुकाबला किया, किन्तु पराजित हो कर वे भी पीछे हट गए। हमारी सरकार ने ग़लती की। यदि एक सप्ताह लड़ाई और रहती तो कश्मीर का जो भाग इस समय पाकिस्तान के पास रह गया है, उन के पास न रहता।

अब तनिक हिन्दू सभ्यता की तुलना कीजिए। महाभारत में आया है—रथी के साथ रथी, हाथी सवार के साथ हाथी सवार, घुड़-सवार के साथ घुड़सवार और पैदल के साथ पैदल युद्ध करे। नीचे लिखे व्यक्तियों पर आक्रमण नहीं करना चाहिये— जो मुकाबले के योग्य न हों, जो सेना से भागे हुए हों, जिस को लड़ने की इच्छा न हो, जिसे युद्ध की सूचना न हो, अथवा जो डरा हुआ हो, दो व्यक्ति लड़ रहे हों तो तीसरा उस में दख़ल न दे, बोझ उठाने वाले, बाजा बजाने वाले, रोगी, बूढ़े, बच्चों तथा स्त्रियों पर आक्रमण न किया जा।

दूसरी जातियों के सम्बन्ध में – अंग्रेज़ों ने, जिनके नीचे हम भारतीय कई वर्षों तक परतन्त्र रहे, भारतवर्ष की रक्षा के लिये ६०—६५ सहस्र के लग भग गोरा पलटन नियत कर रखी थी। और डेढ़ लाख के लगभग अंग्रेज़ पुरुष, स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े आदि सेना के अतिरिक्त भारत में रहते थे, जो पेंशनर, व्यापारी और सिवल सर्विस में नौकर थे। गोरा सेना को खुराक सरकार देती थी। जिस में मांस, डबलरोटी, चावल, आलू, सब्ज़ी, चीनी और चाय होती थी। इस के अतिरिक्त उन के लिये दूध मक्खन की व्यवस्था भी थी। जिस के लिये सरकार ने डेयरी फार्म खोल रखे थे जो बढ़िया शुद्ध दूध, मक्खन आदि इन लोगों को देती थीं। गोरे फौज की खुराक का एक भाग मांस भी था। मांस प्रति गोरा एक पौंड मिलता था। पहले इन को सप्ताह में छः दिन गाय का मांस और एक दिन भेड़ का मांस मिलता था, किन्तु भेड़ का मांस महँगा होने के कारण केवल

गाय का मांस ही दिया जाने लगा था। जो गायें गोरा सेना के लिये बध की जाती थीं उन की संख्या इस प्रकार समझनी चाहिये।

एक गाय के मारने से १५० पौंड के लगभग मांस प्राप्त होता था। यह सारे शरीर का तीसरा भाग है। क्यों कि शेष दो भाग रक्त, चमड़ा तथा पेट के अवयव होते हैं। इसी प्रकार भेड़ से २४ पौंड मांस अर्थात् तीसरा भाग प्राप्त होता है। इस तीसरे भाग में से भी चौथा हिस्सा हड्डी निकल जाती है। इस प्रकार सेना के एक सहस्र गोरों के लिये प्रतिदिन सात गोओं की आवश्यकता होती थी, अथवा पैंसठ हज़ार के लिये ४२५ और वर्ष के ३६५ दिनों के लिये १६६२७५ गौएँ। दूसरे सिविलियन और व्यवसाय वाले डेढ़ लाख के लिये कम से कम डेढ़ लाख गायों की आवश्यकता होती थी। इसी प्रकार अँग्रेज़ जनसंख्या के लिए भारत में एक वर्ष के लिये तीन लाख सोलह सहस्र दो सौ पचहत्तर के लगभग गौओं की आवश्यकता होती थी, और यदि वह भेड़ का मांस प्रयोग में लाएँ तो एक हज़ार गोरों के लिए प्रतिदिन ३६ और पैंसठ हज़ार के लिये ३२४० तथा एक वर्ष के लिए ८५४१०० भेडें अपेक्षित थीं। इस में सिविलियनों की डेढ़ लाख संख्या के मिलाने पर, यदि इन के लिए सेना से आधा भाग भी लिया जाए तो ४२७०५० अर्थात् कुल भेड़ों की संख्या १२८११५० (बारह लाख इक्यासी हज़ार एक सौ पचास) होती थी। इस प्रकार एक गोरा वर्ष में अढ़ाई गायें अथवा तेरह भेड़ें खाता था। इस के अतिरिक्त मुर्गी, बत्तख आदि और अण्डों की संख्या करोड़ों तक पहुँचती है।

अँग्रेज़ों का शासन भारत वर्ष पर—डाक्टर सदरलैण्ड का एक लम्बा विषय 'भारत पर शासन करने से इंगलैंड को क्या हानि हो

रही है ?' प्रताप लाहौर ३ मई १९३६ में छपा है । उस में मिस्टर जान एम० रावर्ट् स के प्रकाशित किये हुए नीचे लिखे समाचार हैं :—

"भारत वर्ष में जाने वाले गोरे सैनिक हमारे सब से अच्छे युवक होते हैं । किन्तु इनको भारत में जो जीवन बिताना पड़ता है उसका हाल पढ़ कर कोई अँग्रेज दुःखी हुए बिना नहीं रह सकता। स्वाभाविक तौर पर यह अच्छे, नेक-दिल और प्रसन्नचित्त होते हैं। वे यदि इंगलेण्ड में रहते तो अच्छे पति और पिता बनते और उन गुणों की उन्नति करते जो ईश्वर ने उन्हें दिये हैं। पार्लियामैण्ट की रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि १८९५ में भारत के अस्पतालों में प्रवेश करने वाले प्रतिसहस्त्र में से ४४४ गुप्त रोगी थे। इसी प्रकार १८९६ में प्रत्येक सहस्त्र रोगी में से ५२४ गुप्त रोगी थे। १८९७ की रिपोर्ट में लिखा है कि १५ जुलाई १८९८ को भारत में ७०४९२ गोरे सैनिक नियत थे, जिनमें से २८ प्रतिशत भारत में आने के पश्चात् 'आतशिक के रोगियों के तौर पर अस्पताल में प्रविष्ट हो चुके थे। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष १३ हज़ार के लगभग गोरे प्रतिवर्ष इंगलैण्ड को लौट जाते थे । इन में से साठ प्रतिशत ऐसे होते थे जो किसी न किसी प्रकार के गुप्त रोगों से ग्रस्त थे।

पुत्री और पत्नी दोनों ही—लन्दन के एक समाचारपत्र में वहाँ के एक मुकदमे का अनैतिकतापूर्ण समाचार छपा है। मुकदमा सगे भाई बहिन के बीच पिता की सम्पत्ति के सम्बन्ध में है। बहिन अपने पिता की विवाहित पत्नी होने का दावा करती है, उसने न्यायालय में जो बयान दिया है उसने सनसनी पैदा कर दी है। पिता का नाम मैक्सवैल है। उसकी पुत्री मिस सैमबैल (अथवा अपने दावे के अनुसार मिसिज़ मैक्सबैल) ने न्यायालय में बयान दिया है कि :—

"मैं मैक्सवैल की एक ही समय पुत्री भी हूँ और विवाहित पत्नी भी। इसलिये सम्पत्ति मुझे मिलनी चाहिये। दूसरी ओर अपने आप को मृत मैक्सवैल का पुत्र बता कर सम्पत्ति के ऊपर उस का पुत्र अपना अधिकार जमाता है। मैक्सवैल की पत्नी ने, जो मैक्सवेल की पुत्री भी है, कहा कि मेरा विवाह एक समाचारपत्र में काम करने वाले व्यक्ति से हुआ था। किन्तु एक वर्ष के पश्चात् वह न मालूम कहां चला गया। मैंने अपनी माता को पत्र लिखा, तो उसने रुपये भेजकर मुझे अपने पास बुला लिया। जब मैं अपने पिता के घर आई तो वह दिल से मुझ पर आसक्त हो गया और हमारे पति-पत्नी के सम्ब्रन्ध स्थापित हो गये। माता को इन बातों का पता नहीं था। प्रेम दोनों ओर बढ़ रहा था। यहां तक कि मैक्सवैल साहब ने एक और नगर में जाकर मुझ से विवाह भी कर लिया।

विवाह के पश्चात् जो होता है सो हुआ और निश्चित समय के पश्चात् मुझ से लड़की या नवासी का जन्म हुआ। इस लड़की के जन्म से माता को हमारे सम्बन्धों का पता तो लग गया, किन्तु विवाह के विषय में पता न लगा। मेरे गर्भ से भी बच्चे पैदा हुए और मेरी माँ भी वंशवृद्धि का कार्य करती रही। कई वर्ष इसी प्रकार बीत गये। इसके पश्चात् मेरी माता की मृत्यु हो गई और मैं बिना किसी डर के अपने पिता से प्रेम करती रही। कुछ वर्ष पश्चात् मैक्सवैल का भी देहान्त हो गया। मेरा दावा यह है कि मैं अपने पिता की विवाहित पत्नी हूं, इसलिये सम्पत्ति मुझे मिलनी चाहिये।"

दूसरी ओर इस स्त्री का भाई जो सौतेला लड़का है यह मांग कर रहा है कि मैं अपने पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हूं इस लिए वह मुझे मिलनी चाहिये।

घोड़े और गधों का मांस— (प्रताप २९ जुलाई १९२८)
घोड़े और गधे के मांस का राशन बन सकता है। फ्रांस के खेती

बाड़ी मंत्री और युद्धमन्त्री के व्याख्यानों (पेरिस, १० जूलाई) से पता चलता है कि घोड़ों का वध करने वाले बूचड़ों की ओर से एक डिनर दिया गया था। उसमें जो भोज्य पदार्थ थे उनकी सूची में घोड़ों और गधों का विशेष उल्लेख था। खेती बाड़ी के मंत्री ने व्याख्यान देते हुए कहा कि इन जानवरों का माँस स्वास्थ्य के लिये अच्छा और भेड़-बकरी के मांस के समान स्वादु होता है। फिर इन को सँभाल कर रखने से क्या लाभ ? खेती-बाड़ी के मन्त्री ने कहा कि जब लोग घोड़ों और गधों को खाना शुरू कर देंगे तो यूरोप में मांस की कमी न रहेगी। युद्ध के मंत्री ने कहा कि युद्ध के दिनों में घोड़ों के मांस का सैनिकों के लिये बहुत अच्छा राशन बनता है। इसके अतिरिक्त इसके प्रयोग से सैनिक सावधान और शक्ति-शाली बनते हैं।

आस्ट्रेलिया के पेटू लोग २५ सेर मांस खा जाते हैं—

('प्रताप' २६ अप्रैल, १९३६)

आस्ट्रेलिया के असली निवासी यद्यपि मिताहारी समझे जाते हैं, किन्तु जब इन पर आक्रमण किया जाय तो बहुत उत्तेजित होते हैं। ये बड़े पेटू होते हैं। बहुत बार ५० सेर का कुंगरू दो आदमी मिलकर खा जाते हैं। एक स्वस्थ, बलवान् युवक अकेला ५० पौण्ड का कुंगरू खा जाता है। इन लोगों के छोटे छोटे बच्चे एक साधारण गोरे पुरुष से दुगना भोजन करते हैं। एक ही समय एक गैलन जल पी जाना इनके लिये साधारण बात है।

विद्यार्थियों पर बुरा प्रभाव('प्रताप' लाहौर, २० नवम्बर १९३५)

लंदन ७ नवम्बर। ब्रिटेन के स्कूलों में इस समय पांच लाख विद्यार्थी चश्मा लगाते हैं। पिछले वर्ष डाक्टरों ने एक लाख अस्सी हज़ार विद्यार्थियों को चश्मा लगाने की अनुमति दी। जो विद्योपार्जन

के पश्चात् स्कूल छोड़ते हैं, उन में से एक चौथाई की आखें कमजोर होती हैं। डाक्टरों ने यह कमजोरी अधिक मांस खाने के कारण बताई है।

ऊपर जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है उन सबका सम्बन्ध मांस खाने वाली जातियों से है। इसलिये यह माना जा सकता है कि इन घटनाओं में उस उत्तेजना और बुद्धि-हीनता का बहुत बड़ा हाथ है जो मांस खाने से उत्पन्न होती हैं। जिन लोगों में मांस खाने की प्रथा बहुत अधिक है वहाँ ऐसी घटनाएँ अधिक और जहाँ कम है वहाँ कम होती हैं। जहाँ मांस का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता, वहां ऐसी घटनाएँ कभी २ होती हैं। इसलिये हर प्रकार से मांस खाना निन्दनीय है। इसको उपयोग में न लाना बुद्धिमानों का काम है—ऐसा मेरा विश्वास है। किन्तु इससे मेरा आशय किसी का दिल दुखाना नहीं हैं।

★

ऐस्कीमो लोगों का हाल

(समाचार पत्र 'देश' ५ दिसम्बर, १६१७)

उत्तरी ध्रुव के बर्फ़ से जमे हुए दूरवर्ती तटों पर जो लोग रहते हैं, उनको ऐस्कीमो कहते हैं। उनका शरीर नाटा तथा बाल कोमल और काले होते हैं। उनकी त्वचा भी काली होती है। सम्भवतः इसका यह कारण हो कि वे कभी नहाते नहीं। वे इस विषय में विवश हैं. क्योंकि उनके देश में बर्फ़ शायद ही पिघलती हो। इसलिये उन्हें पानी नहीं मिल सकता। ऐस्कीमो शेष संसार से इतने दूर रहते हैं कि उनको दूसरी जातियों के लोगों को देखने और उनके सम्पर्क में आने का इतना कम अवसर मिलता है कि वे अपने आप को अनोटे कहते हैं, जिसका अर्थ है 'मनुष्य' मानों पृथ्वी में उन्हीं के वंशज हैं। उनका देश हमारे देश में बहुत भिन्न है। फूल-पेड़ का नाम तक वहां नहीं, जिस ओर दृष्टि करें बर्फ और समुद्र के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं देता। वहाँ सारी सर्दियों में रात ही रहती है, क्योंकि वहां सूर्य छः मास नहीं निकलता। किन्तु आकाश विचित्र रंगों के प्रकाश से चमकता है, जैसे—लाल, हरा, नीला, सुनहरी आदि। शेष छः महीने दिन रहता है, क्योंकि सूर्य इन छः महीनों में चमकता रहता है। इस लिये ऐस्कीमो के देश में आधी रात को भी सूर्य देखा जा सकता है। जहां इतनी बर्फ हो वहां अनाज, फल अथवा किसी प्रकार के पेड़ पौधे कैसे उग सकते हैं? इस लिये ऐस्कीमो मांस

और मछली पर ही निर्वाह करते हैं। वास्तव में ऐस्कीमो शब्द का अर्थ ही मांसाहारी है। उन की साधारण खुराक सील और ह्वेल मछली का मांस है। कई बार वह बालरस (दरियाई घोड़ा) की हड्डियों में से चर्बी निकाल कर खाते हैं। अथवा सील मछली का गरम खून पीते हैं। विशेष अवसरों के लिये लम्बर तैयार करते हैं जो सील और ह्वेल मछली की झिल्लीदार चर्बी होती है। गर्मियों में ऐस्कीमो तंबुओं में रहते हैं जिन को एक स्थान से दूसरे स्थान में लिए फिरते हैं। अपनी गाड़ियों को चलाने के लिए, जिन पर वे अपना सामान ले जाते हैं, घोड़ों को प्रयोग में नहीं लाते, क्योंकि घोड़े को घास की आवश्यकता होती है और घास वहां पैदा नहीं होती। इस लिए उनकी जगह बारहसिंगे या कुत्ते वहां प्रयोग में लाये जाते हैं। वे भी ऐस्कीमो के समान मांस पर ही निर्वाह करते हैं। पेड़-पौधों के आहार की आवश्यकता उनको नहीं पड़ती।

छः छः महीने के दिन और रात—जब सर्दी अपनी छः महीने की रात्रि के साथ आती है तो वे एक झोंपड़ी तैयार करते हैं जिसे 'उगलू' कहते हैं। उस पर ह्वेल मछली की पसलियों से कड़ियों का काम और घास फूस के स्थान पर बर्फ़ से काम लेते हैं। इस झोंपड़ी में गर्मी का मौसम आने तक, जबकि वे पुनः एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना आरम्भ करते हैं, सारा परिवार उस में रहता है। आओ, हम कल्पना करें कि हम इन बर्फ़ की झोंपड़ियों में से किसी एक में प्रवेश करते हैं। इन का बाहरी भाग शहद के बड़े बड़े छत्तों के समान है, भीतर जाने का द्वार भी नहीं मिलता। बहुत ढूंढ़ने के पश्चात् एक छोटा सा छिद्र भूमि के पास मिलता है। उस में हम हाथों के सहारे प्रवेश करते हैं। वहां हमें एक विचित्र दृश्य दिखाई देता है। गर्मी इतनी अधिक कि सांस घुटा जाता है। और दुर्गन्ध इतनी कि बाहर भागना चाहते हैं। किन्तु विवशता के कारण

वहीं ठहरते हैं। क्योंकि हमें 'उगलू' के जीवन का अनुभव करना है। पहले तो कोई भी अन्दर दिखाई नहीं देता, क्योंकि पत्थर के दीपक का प्रकाश, जिस मे घास की बत्ती और सील मछली का तेल है, बहुत ही कम होता है। किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इस छोटे से झौंपड़े में बहुत से लोग हैं, क्योंकि इनमें बहुत से परिवार एक ही घर में बड़े आराम से रह सकते हैं। पुरुषों और स्त्रियों को पहचानना बहुत कठिन है, क्योंकि पुरुषों के दाढ़ी नहीं होती। पुरुष और स्त्रियां दोनों तंग कमीजें, पाजामें और सील मछली के चमड़े से बने हुए बूट पहनते हैं।

झौंपड़ी के एक कोने में एक पुरुष बहुमूल्य लकड़ी का एक बरछा बना रहा है, जिस के सिरे पर सील मछली की हड्डी है। वह दस्ते पर एक अच्छा चित्र बना रहा है और धीरे धीरे काम कर रहा है, क्योंकि सर्दियों में काम अधिक नहीं होता और उसके पास पर्याप्त समय है। एक और पुरुष नीचे बैठा चित्र बना रहा है। क़ागज़ की जगह सील मछली के चमड़े का टुकड़ा है और रोगन की जगह सील मछली का तेल तथा दीपक की स्याही से बनी एक वस्तु प्रयोग में लाई जाती है। इन चीज़ों का, जो प्राकृतिक हैं, विचार करते हुए, यह चित्र बिल्कुल वास्तविकता पर आधारित है। यह चित्र रीछ को वध करने की घटना प्रदर्शित करता है जो कुछ दिन हुए झौंपड़े में घुस आया था, जबकि सब लोग घर में सो रहे थे। संयोगवश इनमें एक की आंख खुल गई और उस ने बरछे के एक आक्रमण से ही उसे नष्ट कर दिया था। हमें झौंपड़ी के एक कोने में उसकी खाल बिछी दिखलाई दे रही थी। झौंपड़े में दो स्त्रियां हैं, जो सील मछली के चमड़े को दांतों से दबा रही हैं ताकि वह बूट बनाने के लिये नर्म हो जाय। ऐस्कीमो के देश में कोई वृक्ष नहीं हैं, इस लिये हमारे देश के समान वहां चमड़ा

रंगने के लिये कोई छाल नहीं होती । इसी लिये चमड़े को दांतों से चबाया जाता है और यही कारण है कि जब ऐस्कीमो को पत्नी की आवश्यकता होती है तो उसकी पहली इच्छा यह होती है कि उसे ऐसी पत्नी मिले जिसके दांत सुदृढ़ हों। एक तीसरी स्त्री जो अन्य दोनों से आयु में बहुत बड़ी है अभी सील मछली के चमड़े का एक थैला बना चुकी है । अब उसको परों से भर रही है। अपने काम के साथ वह एक गीत केवल तीन सुरों वाला, एक लम्बी तान के साथ आई० वी० बी० आई० वी० के साथ गा रही है। हमें तो यह स्वर बहुत कर्णकटु जान पड़ता है किन्तु ऐस्कीमो उसको बहुत सुरीला और मीठा समझते हैं। यह स्त्री साधारणतया विवाह आदि के अवसरों पर निमंत्रित की जाती है। झौंपड़े में एक ऐस्कीमो लड़का भी है। हमें उसकी ११ साल की अल्पायु का विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह सील और ह्वेल मछली के शिकार में निपुण है । वह अपने साथियों के साथ फुटबाल खेलना बहुत पसन्द करता है।

नावों की सहायता से शिकार--ऐस्कीमो सारी सर्दी उन बर्फ की अंधेरी झौंपड़ियों में ही पड़े रहते हैं। किन्तु यदि हम गर्मियों के आरम्भ में देखें तो उन्हें सील और ह्वेल मछली का शिकार करते पाएँगे । वे बहुत अच्छे नाविक होते हैं। वे अपनी नावों को वालरस के दांतों से बना कर चमड़े से मढ़ते हैं। नाव एक तंग छिद्र के अतिरिक्त बिल्कुल ढकी होती है। उस छिद्र में नाविक अपनी टांगों को रखता है। जैसे ही वह शिकार के निकट आता है, अपने हड्डी से बने बरछे को, जिसके साथ सील के पट्ठे की रस्सी होती है, फेंकता है और कभी ही अपने लक्ष्य को बेधने में असफल होता है। इसके पश्चात् बहुत घबराहट का समय होता है। घायल जानवर उछलता, कूदता है और नाविक को अपने साथ धकेलता

है। यदि हमारा ऐस्कीमो अच्छा नाविक न हो तो नाव उलट जाये किन्तु उस जीव को शीघ्र ही दुर्बलता दबा लेती है। अन्त में वह अन्तिम बार तड़पता है और उसके संघर्ष का अन्त हो जाता है। हमारा ऐस्कीमो बहुत सी वायु से भरी हुई मशकों से इस मृत शिकार के शरीर को बांधता है, ताकि वह पानी में डूब न जाय फिर वह उसे विजयी के समान प्रसन्नता से घर ले आता है और जब कोई उत्सव का समय आता है तो दावत होती है। सब मिल कर उसे खाते हैं, जब तक कि मांस समाप्त न हो जाय। ऐस्किमो के भोजन का कोई विशेष समय नियत नहीं है। जब उनको मांस मिलता है तब वे पेटू के समान अपने पेट को खूब भरते हैं, किन्तु जब भोजन नहीं मिलता तो बिना कठिनता के कई कई दिन बिना खाए निकाल देते हैं।

बूढ़ों को ठिकाने लगाने की पद्धति—इनकी अपने बूढ़ों को ठिकाने लगाने की पद्धति भी संसार के दूसरे लोगों से भिन्न है। वे उनको गढ़ों में डालकर ऊपर से बर्फ आदि डाल कर जीवित ही दबा देते हैं। बूढ़े इस प्रकार अपना जीवन समाप्त करने और संसार से चल बसने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। हमारे देश के मांसाहारी ऐस्कीमो का दृष्टान्त प्रस्तुत करके मांस खाने को उपयुक्त सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। क्या वह उनका पूर्णतया अनुसरण करने को तैय्यार हैं ?

अफ्रीका के जंगली हब्शी—अफ्रीका के जंगलों में हब्शी रहते हैं जो शरद् ऋतु में भी, जब वहाँ बहुत सर्दी पड़ती है, नंगे रहते हैं और हर प्रकार के कष्टों को सहन करने को तैय्यार रहते हैं। वे घोड़े से भी अधिक तेज़ दौड़ते हैं, जानवरों का कच्चा मांस खाते हैं और उनके फन्दे में कोई मनुष्य फँस जाय तो उसको मार

कर खाने में भी संकोच नहीं करते।

क्या भारतीय मांस खाने वाले उनकी तरह मानव का कच्चा मांस खाने को तैयार हैं। यदि नहीं तो वे क्यों जंगली हब्शी और ऐस्कीमो आदि के मांस खाने के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ?

★

प्रेम और स्नेह

प्रकृति की व्यवस्था प्रेम पर ही आधारित है। प्यार के बिना संसार का अस्तित्व सम्भव नहीं। प्रेम और स्नेह प्रत्येक प्राणी के भाग में आया है। गाय या भैंस का बच्चा यदि मर जाय तो वह बच्चे के वियोग में घास खाना छोड़ देती है। बंदरी भी अपने मरे हुए बच्चे को छाती से लगाये रखती है। पक्षियों को भी लीजिए, वे भूमि से दाना, तिनका चुग चुग कर अपने बच्चों की चोंच में देते हैं। जहां तक भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय, चारों ओर प्रेम और स्नेह का ही राज्य दिखाई देता है। यदि प्रेम का भाव प्राणियों में से निकल जाय तो सृष्टि ही समाप्त हो जाय। यदि संसार स्थित है तो प्रेम पर ही। प्रकृति ने प्राणियों में यह भाव इतना कूट २ कर भर दिया है कि मनुष्य तो अलग रहा, पशु-पक्षियों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो अपना जीवन अपने बच्चों के लिए ख़तरे में डाल देते हैं। मुर्गी अपने छोटे छोटे बच्चों को पर फैला कर उन के नीचे छिपाये रखती है। यदि चील अथवा दूसरा शिकारी उन पर आक्रमण करे तो यह उछलकर उन का सामना करती है। बच्चों को कुड़-कुड़ कर के चुगना सिखाती है। मैंने स्वयं एक बार देखा कि एक बन्दर चीड़ के पेड़ पर बैठे हुए काग के घोंसले पर पहुँचा और उस में से अण्डे तोड़ कर नीचे फेंक दिये। बेचारे काग बन्दर का सामना तो नहीं कर सकते थे। किन्तु काँव काँव करके कागों

का झुण्ड पेड़ के आस-पास मँडलाने लगा, और बहुत देर तक शोर मचा रहा। बंदर को भी पत्थर मार कर हटा दिया गया, किन्तु वह अपना काम कर चुका था। उसी प्रकार कोई निर्दयी चाहे मनुष्य हो अथवा पशु-पक्षी, जहां तक मानवता का सम्बन्ध है, मनुष्य को सदा अत्याचारी को हटाना और निरपराधों की सहायता करना चाहिए।

सुबुक्तगीन और हज़रत मुहम्मद साहिब—निरपराधों की सहायता करने वालों के नाम इतिहास में अब भी मिलते हैं। जैसे सुबुक्तगीन ने हिरनी पर दया करके उस के बच्चे को छोड़ दिया और उस के बदले उसे राज-पाट मिला। हज़रत मुहम्मद साहिब ने बच्चेवाली हिरनी पर दया करके उस के बच्चों को दूध पिलाने के लिये अपनी ज़िम्मेवारी पर छुड़वा दिया। किन्तु इस के विपरीत इतिहास में ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं मिलता कि किसी जीव के वध किये जाने पर ईश्वर ने उसे राज-पाट दिया हो। मनुष्य अपने घरों में अपने सम्बन्धियों पर दृष्टिपात करे। जिस घर में परस्पर प्रेम-भाव है और परिवार के सब लोग प्यार से रहते हैं, वहां मानो स्वर्ग ही है और जिस घर में अनबन रहती है तथा परिवार के मनुष्य एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं, समझना चाहिये कि वहां के लोग नरक के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह हाल तो केवल घर के कुछ मनुष्यों के विषय में रहा। किन्तु जहां करोड़ों की जनसंख्या हो और सहस्त्रों धर्म एवं असंख्य प्रकार के विश्वास हों उस देश के लोगों में यदि अनबन हो तो वहां भी नरक ही समझना चाहिये, रामायण में एक चौपाई आती है—

'जहां सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहां कुमति तहँ विपति निदाना॥

अर्थात् जहां बुद्धिमत्ता और प्रेम हो वहां हर प्रकार का सुख और जहां अज्ञानता तथा लड़ाई हो वहां हर प्रकार का दु:ख ही दु:ख रहेगा।

प्रेम तथा अत्याचार—जो लोग मांसाहारी हैं, उन्हें समझना चाहिये कि माँस, प्रेम से नहीं अपितु अत्याचार से प्राप्त होता है। प्रेम और अत्याचार एक दूसरे से विपरीत हैं, जहां अत्याचार है वहां प्रेम नहीं और जहां प्यार है वहां अत्याचार नहीं। अत्याचार करना असुरों और मूर्खों का काम है।

जहां प्रेम और स्नेह को स्थान नहीं वहां उपदेश भी काम नहीं करता और अत्याचार स्वयं पैदा हो जाता है और इस कहावत के अनुसार कार्य होने लगता है :—

'गुणी रे गुणी ए, मुनि रे मुनि ए,
धींगता ता धींगता।
और लंगर आप लंगर, पंडता ता पंडता।'

अर्थ—जैसा मनुष्य हो उसके साथ वैसे ही वर्ताव करना चाहिये। गुणियों के साथ गुणवानों-जैसा, मुनि के साथ मुनि—जैसा; लड़ाई झगड़ा करने वालों के साथ उन जैसा और ज्ञानियों के साथ बुद्धिमत्ता से काम करना चाहिये।

उपयुक्त और अनुपयुक्त की समझ केवल मनुष्य को ही है और समझ अत्याचार को अनुपयुक्त ही समझती है।

एक ओर डारविन का यह सिद्धांत है कि बलवान् निर्बल को खा जाता है, इस लिए मांसाहारी मांस खाना उपयुक्त समझते हैं। दूसरी ओर प्रेम और मुहब्बत का समुद्र सम्पूर्ण विश्व में ठाठें मार रहा है जिससे प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी से लेकर हाथी तक गवाही दे रहे हैं कि प्रेम और स्नेह के बिना संसार नहीं रह सकता।

★

न्याय

बुद्धि और चौधरात—न्याय शब्द का अर्थ केवल मनुष्य ही समझ सकता है। संसार के किसी और प्राणी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। मनुष्यों में सब से ऊंचा स्थान राजा-महाराजाओं का है। फिर उन चौधरियों का, जिन की समझ को बहुत से मनुष्य अपनी समझ से अच्छा समझते हैं। यह पदवी इन्हें सरकार की ओर से नहीं मिलती किन्तु अच्छी समझ के कारण नगरों और गांव के दूसरे लोग स्वयं इन को चौधरी समझने लग जाते हैं। राजा की स्वीकृति के बिना ही अच्छी बुद्धि का मनुष्य चौधरी बन जाता है और राजा को भी उसकी चौधरात माननी पड़ती है। इस प्रकार सीमाप्रान्त (पाकिस्तान) में 'खाँ' अपनी अच्छी समझ के कारण उँचे समझे जाते हैं और वह अपने कबीले में अधिकारी चौधरी, या खान कहलाते हैं।

उस प्रदेश में उपज थोड़ी होने के कारण कोई राजा नहीं है, इसलिये वह चौधरी या खान ही अपने सीमित प्रदेश में न्याय और शान्ति की व्यवस्था का काम करते हैं। मैंने इस पुस्तक में आरम्भ से अन्त तक समझदार मनुष्यों से अपील की है कि मांस खाने और न खाने का सम्बन्ध समझ से है।

दो विपरीत बातें—बेसमझ मनुष्य तो थोड़ी थोड़ी बात पर जानवरों, जिन बेचारों की कोई सुनने वाला नहीं, और मनुष्यों तक

का रक्तपात करने में संकोच नहीं करते । मेरा आशय यह है कि राजा या मैजिस्ट्रेट या खान, जिनको मनुष्य का जीवन लेने तक का अधिकार है, हत्यारों को फांसी पर चढ़ाते हैं ताकि दूसरे लोग आराम से जीवन व्यतीत कर सकें। हत्यारों को फांसी देना न्याय को पूरा करना है। किन्तु एक ओर हत्यारों को फांसी देना और दूसरी ओर मांस खाना, क्या ये बातें एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं ? जो नर-हत्या करने वालों को तो सूली पर चढ़ाते हैं और स्वयं पशु-पक्षियों की हत्या करके उनका मांस खाते हैं वे भी क्या, राजा मैजिस्ट्रेट अथवा खान कहला सकते हैं ? तनिक सोचें और विचारें कि जिन लोगों पर न्यायका उत्तरदायित्व है, वे स्वयं अपने शरीरपोषण के लिये मूक जीवोंपर अत्याचार करते हैं । जब इन न्यायधीशों के शरीर का प्रत्येक भाग निपराध जीवों पर किये गये अत्याचार से बना हुआ है तो वे न्याय क्या करेंगे । इस समय संसार में ऊधम मचा हुआ है। लोगों में आपा-धापी पड़ी हुई है। क्या ही अच्छा हो, यदि समझदार लोग इन बातों पर ध्यान दें और ऐसे बुरे कामों को छोड़ दें।

मानव के अत्याचार जिसमें हिन्दुओं के मन्दिर भी हैं।
'सर्वोत्कृष्ट प्राणी' मनुष्य के अत्याचारों की दुःखद कहानी—

(लेखक प्रेमनाथ प्रताप १४ जुलाई १९३४)

महात्मा गान्धी जी से—प्यारे महात्मा ! तू ने भारत वासियों में प्रेम का सृजन किया। करोड़ों मनुष्य प्रेम के गीत सुनने के लिये तेरे आस-पास एकत्रित हो गये हैं। तू ने बिखरे हुए मनों को प्रेम की माला में पिरो दिया है और तू ने अहिंसा का सन्देश दे कर कमाल कर दिया है। किन्तु तुझे यह सुनकर आश्चर्य होगा कि तेरे सिद्धान्तों पर चलने का दावा करने वाले तेरे देश-वासियों ने बहुत हद तक तेरी शिक्षा को नहीं समझा। उनकी अहिंसा केवल

मनुष्यों तक ही सीमित है। मूक निर्दोष पशु-पक्षियों पर उनकी हिंसा पहले की तरह ही चल रही है। गाँव गाँव में और नगर नगर में बूचड़खाने खुले हुए हैं जहां लाखों जानवरों का नित्यप्रति वध किया जाता है। बाजारों में उनके शव लटकते हैं। किन्तु मनुष्यों के ठाठें मारते हुए समुद्र के कारण, जिससे कि तू घिरा रहता है, वह तेरी दृष्टि से ओझल रहती हैं। तेरे देखने वाले, तुझे नहीं देखने देते। यदि तेरी कार्य-सूची बनाने में मुझे पूछा जाता तो मैं तुझे हरिजनों की झोपड़ियां दिखाने के पश्चात् बूचड़-खाने में ले चलता और तुझे तेरी उस बकरी की दुर्दशा दिखाता जिसने तुझे कभी धोखा नहीं दिया। यदि तू मेरे साथ चले तो तुझे मैं वह दृश्य दिखाऊं। वह हालत लेखनी से लिखे जाने योग्य नहीं है। चल कर जल्लाद की छुरी से पूछ ले कि तेरी बकरी, धूल और रक्त में किस प्रकार तड़पती है? यदि तू जा कर उसकी मरने की अवस्था देख ले तो उसे बिन-आई मृत्यु से बचाने के लिये कटिबद्ध हो जाय। आठ नौ वर्ष हुये जब तुझे मूक प्राणियों के दुःखों के विषय में लिखा था, तो उसका उत्तर तू ने यह भेजा था कि यह अत्याचार इतने भयानक हैं कि मुझे इनका विश्वास नहीं होता। अब यदि तू विश्वास करे तो तुझे थोड़ी सी दुःख की कहानी और सुना दूँ।

बकरी के बच्चों का बध—कुछ वर्षों से हमारे देश में एक और अत्याचार का आरम्भ हुआ है। वह यह है कि भेड़-बकरी के बच्चों को जन्म लेते ही मार दिया जाता है, क्योंकि इस समय उन की खाल और समूर बहुत नरम होती है। इस का अधिक मूल्य मिलता है। यह अत्याचार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। कई बच्चों को जन्म लेने से पहले ही माता के पेट में दुष्टता से मार दिया जाता है, ऐसी अवस्था में माता अंधी हो जाती है अथवा दुःख से मर जाती है। खाल और समूर के लिये बच्चों को जन्म

लेते ही बुरी तरह मार डालना अथवा माता के पेट में ही मार डालना कितना भारी अत्याचार है, यह मुझे बतलाने की आवश्यकता नहीं। यदि मेरी बात पर विश्वास न हो तो पंजाब के चमड़े और ऊन के व्यापारियों से पता लगा ले, जिन्हों ने कमर्शियल डायरैक्टर जनरल को एक पत्र लिख कर उन का ध्यान इस बुराई की ओर आकर्षित कराया है।

दक्षिण भारत की ह्यूमन ब्रेन लीग के एक सदस्य का हाल सुन। वह कहता है कि कई स्थानों पर बकरी के टुकड़े टुकड़े कर दिये जाते हैं, और उसे बहुत निर्दयता से मारा जाता है। बकरी का मेदा खोला जाता है और अन्तड़ियां बाहर खींच ली जाती हैं। तेज़ कील भूमि में गाड़ दिये जाते हैं। शूकर को बांध कर उन पर फैंक देते हैं। वे लहूलुहान हो जाते हैं और तड़प तड़प कर मर जाते हैं। एक सांड को वर्ष भर पाल कर उसे हैज़े की देवी के भेंट चढ़ा दिया जाता है। एक गढ़ा खोदते हैं। उस में उस दयनीय पशु को फैंक देते हैं। सात पुरुष सात तलवारों से एक साथ उसके शरीर पर सात प्रहार करते हैं। उस पशु का जो रक्त बहता है, उसे देवी के भक्त अपने शरीर पर मल लेते हैं और वह मर जाता है।

निर्दयता की कहानी – अब जानवरों पर निर्दयता बन्द करने के लिए बम्बई विभाग के पिछले प्रधान मिस्टर जस्टिस जैक्स से मूक प्रणियों की कहानी सुनिए। वह भारतवर्ष में बलिदान की प्रथा के विषय में इस प्रकार लिखते हैं। भेड़ों को भेंट चढ़ाने से पहले उन के कान और पांव काट दिए जाते हैं और तत्पश्चात् उन्हें मार दिया जाता है। कई जीवित भेड़ों को ३२ टुकड़ों में काट दिया जाता है। जीवित सूअरों को तेज़ और धार वाली सलाखों पर ऊँचाई से फैंक दिया जाता है। भैंसों को विशेष प्रकार के गढ़ों में बन्द करके उन के शरीर पर तेज़ तलवारों से कई घाव लगाये जाते

हैं, और काफी दु:ख देने के पश्चात् उन के सिर अलग किये जाते हैं। पक्षियों को मन्दरों पर उड़ाया जाता है और उन्हें उड़ता पकड़ कर दांतों से काटा जाता है। इन का पवित्र रक्त पुजारी पी जाते हैं। उस ईरावती में, जिस के तट पर स्वतन्त्रता का झण्डा लहराया गया, और चम्बे में हर वर्ष एक भैंसे को सहस्रों लोग एकत्रित हो कर नदी की भेंट कर देते हैं। ऐलोर का हाल आप ने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा, जहां प्रतिवर्ष सहस्रों जानवरों को बहुत निर्दयता से मौत के घाट उतारा जाता है। इस प्रकार जो भीषण बलिदान किये जाते हैं उन से मद्रास सरकार का सिंहासन भी हिल गया है और वह उन्हें रोकने का उपाय सोच रही है। अभी मैंने गाय का हाल तो लिखा ही नहीं कि इस दीन पशु के गले पर किस प्रकार रुक रुक कर छुरी चल रही है लिखूँ तो क्या लिखूं और किस प्रकार लिखूँ –

'जिगर में दर्द रह रह के दिल में ठेस उठती है,
चुभी है जो कलेजे में निकालूँ बरछियां क्यों कर,

कलकत्ता में एक मदारी को दण्ड—मिस्टर एफ० हक्क, सैकण्ड पुलिस मैजिस्ट्रेट अलीपुर ने दुर्योधन दास को दो सौ रुपया जुर्माना अथवा छ: सप्ताह का कारावास दण्ड दिया। अपराधी के विरुद्ध दो बकरियों को बहुत निर्दयता से मार डालने का अभियोग है। अपराधी सड़क के किनारे लोगों को अपने करतब दिखा रहा था। उस ने कहा वह किसी भी जानवर को कच्चा खा सकता है। उसके सामने दो बकरियां लाई गईं। अपराधी उन्हें कच्चा खा गया। अपराधी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

—(प्रताप कृष्ण नं० अगस्त १९३८)

मैक्सिको के अज़टैनर ने एक प्रकार की व्यवस्था की थी जिस से उन के निकट युद्ध में मारे गये सैनिकों का मांस खाना

अपना प्रथम कर्त्तव्य समझा जाता था। नाज़ियों की तरह वे अपने लोगों की अपेक्षा दूसरों को खाना अच्छा समझते थे। इस के लिये उन्हों ने दासों का एक कबीला रखा हुआ था। राजकीय दावतों के लिए जितने लोगों की आवश्यकता होती थी वे उन में से ले कर मार दिये जाते थे, वह लोग इस प्रकार पराजय का भय उठाये बिना युद्ध के आदर्श को स्थिर रखते थे।

अत्याचार हिंसा वैसे तो एक छोटा सा शब्द है किन्तु इस का अर्थ बहुत व्यापक तथा भयानक है। मांसाहारी मनुष्यों की जनसंख्या, संसार में जंगल के जानवरों से भी अधिक है। इस लिये मनुष्यों की मांसाहारी श्रेणी वन के मांसाहारी पशुओं की अपेक्षा जानवरों की बहुत अधिक हानि करती है संसार की बहुत सी बड़ी बड़ी जातियां मांसाहारी हैं। ये तो समुद्र के खूँखार जानवरों से भी बढ़ जाती हैं। यद्यपि समुद्र संसार में २/३ भाग है तथापि उन की आवश्यकतायें, जिनके लिए ये जानवरों को मारती हैं, बहुत अधिक हैं। ये जानवरों का बध भी बड़ी व्यवस्था और वैज्ञानिक रीति से करती हैं। खाने के लिये तो जीवों के बध होते ही हैं, इसके अतिरिक्त केवल मनोरंजन के लिये शिकार में तथा इन के परों या समूरों के लिये भी बध किये जाते हैं, शहद, रेशम और बहुत सी वस्तुओं के लिये भी जीव बध किये जाते हैं। असंख्य तितलियों को केवल सजावट के लिये मारा जाता है। जानवरों पर यह निर्दयता तथा अत्याचार वे ही लोग करते हैं जो मांसाहारी हैं। वास्तव में मनुष्य शरीर रखते हुए भी ये लोग मन और बुद्धि से रहित हैं। यह कार्य इन को बहुत खोटे, निर्दयी और पापी बना देता है, और इन्हें मुक्ति से दूर ले जाता है। धर्म के नाम पर बलिदान के लिये असंख्य बध होते हैं, इन के लिये धार्मिक पुस्तकों से सहायता ली जाती है। जहां दो शब्द इस प्रकार के मिल गये कि अमुक पीर

अथवा पैगम्बर ने कोई जानवर वध किया था, बस उसी का अनुसरण करते हुए लाखों जानवरों का रक्तपात होता है और उस को मुक्ति का एक मार्ग बताया जाता है। किन्तु जहां इन पुस्तकों में मांस खाने के विरुद्ध स्पष्ट आदेश हैं उन से यह लोग झट मुख मोड़ लेते हैं, क्योंकि वह इनकी बुराई से भरी हुई वृत्ति के विरुद्ध है। धार्मिक पुस्तकों के उदाहरण पाठक इसी पुस्तक में दूसरे स्थान पर पढ़ें, जिनसे सिद्ध होगा कि अपनी रक्षा के अतिरिक्त पशुओं को मारना कितना अत्याचार और निर्दयता का कार्य है। प्रत्येक स्थान पर इस के विपरीत भी आदेश प्राप्त होते हैं, किन्तु पापी लोग अपना पेट भरने एवं जिह्वा के स्वाद के लिए इन सब पर ध्यान न देते हुए मांस खाने के विषैले रोग को फैलाते हैं।

आधुनिक युग की दशा पुकार २ कर कह रही है कि मांस खाने के कारण मनुष्य कितना पशुओं के समान और पत्थर दिल वाला बन जाता है। जर्मनी ने पोलैण्ड पर कैसे २ अत्याचार किये जिन के वर्णन मात्र से शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन अत्याचारों के कारण ही इंग्लैण्ड को भी उसकी सहायता करनी पड़ी। और वायसराय बहादुर को भी भारत के नाम संदेश भेजना पड़ा कि भारतवर्ष जंगली शक्ति के मुकावले में न्याय और स्वतन्त्रता का साथ देगा। किन्तु उन व्यवहारों को जो जर्मनी ने अपनाये ठीक मान लिया जाय तो इसका आशय अत्याचार और शक्ति के शासन की विजय होगा। ऐसा ही रूस ने फिनलैण्ड के साथ वर्ताव किया। इन जातियों के मन में तनिक भी दया नहीं। वे देखते ही देखते हज़ारों अमूल्य जानों का सफ़ाया अपने बड़े २ वायुयानों, तोपों ओंर बन्दूकों से कर डालते हैं, मानव जीवन का कोई भी मूल्य उनकी दृष्टि में नहीं। देखिये सर सैम्युअल होर ने हिन्दू धर्म की अहिंसा के नाम पर भारतियों से हिटलरिज़्म के विरुद्ध अपील करते

हुए क्या शब्द लिखे हैं—

'हिटलरिज़म हिन्दू धर्म के पूर्णतया विपरीत है, क्योंकि हिन्दू धर्म अहिंसा पर आधारित है और हिटलर यद्यपि शाकहारी है, फिर भी राजनैतिक तौर पर मांसाहारी पशु है। इसलिये भारतियों को चाहिये कि वे हिटलर से कोई सहानुभूति न रखें। और इंगलिस्तान का पूरी तरह साथ दें।"

लेखक दिल से इसकी पुष्टि करता हुआ मांसाहारी जनता से अपील करता है कि सब जीवों पर एक ही नियम लागू होना चाहिये। संसार भर की धार्मिक पुस्तकें भी यही आदेश देती हैं। यह भी ठीक है कि हिंसा के बिना संसार में शान्ति सम्भव नहीं। चोर, डाकू, लुटेरे, दूसरों की बहू-बेटियां उठा ले जाने वाले, लालची, मूर्ख, बेसमझ, हत्यारे और अपने आपको शहीद समझने वाले बेचैनी, अशान्ति और अंधेरगर्दी मचाते हैं। यदि इनको दण्ड देने वाला कोई न हो तो संसार में दूसरे लोगों को रहना कठिन हो जाय। इसलिये संसार में शासनप्रणाली प्रचलित हुई और शासक को राय, सरदार, राजा, महाराजा, शाह, सुलतान, शाहनशाह, कैसर आदि की उपधियां दी गईं। किन्तु इन सब के होते हुए भी संसार बहुत दुःखी है। किसी को लाखों, किसी को हज़ारों रुपए मिलते हैं। वे लोग सुख का जीवन व्यतीत करते हैं। कई भूखे पेट पर पत्थर बांध कर तड़पते रहते हैं। संसार में साधारण तौर पर कई प्रकार के जातिभेद हैं। कोई गोरा, कोई काला, यूरोपिन, अफ्रीकन, चीनी, जापानी, पठान, तुर्क, हिन्दू, मुसलमान आदि कहलाते हैं। इनमें से प्रत्येक वीर, गाजी, शहीद आदि बनने के लिये तैयार रहता है और कई प्रकार के अत्याचार और पाप करता है। वे लोग यह नहीं समझते कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर जो सब सृष्टि का मालिक है, एक ही है और उसने मनुष्य से लेकर पशु पक्षियों तक को एक दूसरे पर निर्भर रखा

है। जो मनुष्य ध्यान से इस पुस्तक को पढ़ेंगे उन्हें विदित होगा कि छोटे से छोटे कीड़े से लेकर पशु-पक्षी तक खेती को, जिस पर सब का आधार है, कितना लाभ पहुँचाते हैं। किन्तु यह कृतघ्न मनुष्य इन्हें मारकर अपने पेटों को जीवित कब्रें बनाकर साथ लिये फिरते हैं। इन बेचारों का दशाह (दुसाही) एवं क्रिया आदि सब इनके पेट में ही होती है। बड़े २ राज्य एक दूसरे से दुःखी हैं। सभी एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं। करोड़ों अण्डों और जानवरों को अपने पेट में डालते हैं और मदिरा पीकर एक दूसरे पर मदमस्त होकर टूट पड़ते हैं। वाह रे संस्कृति और सभ्यता के ठेकेदारो ! जानवरों को इस प्रकार दुःख दिया ! मनुष्यों को इस प्रकार नष्ट किया। तुम ने अपनी बुद्धि और थोड़ी सी शक्ति को, जो तुम्हें ईश्वर ने दी है, ऐसे पथ पर लगाने में संकोच नहीं किया और संसार में कीड़े-मकौड़ों, पशु-पक्षियों तथा अपने ही साथियों को सता कर वीरता में नाम पैदा कर लिया है ! किन्तु सुनो, वास्तव में वीर वह है जो इन सब बुराइयों को समाप्त करने वाला हो। जैसे रामावतार में श्री रामचन्द्र जी ने रावण को मारा। रावण ब्राह्मण था, किन्तु सीता को चुराकर पापी बना। इस लिये उसे और उसके सहायकों को मारा और पृथ्वी का बोझ उतारा। श्री कृष्ण आनंदकंद ने बहुत से दूसरे राक्षसों, और अत्याचारियों के अतिरिक्त व्योमासुर को, जिसने बैल के रूप में इन पर आक्रमण किया था, मार डाला। बैल होन का कुछ ख्याल नहीं किया। शत्रु चाहे मनुष्य रूप में हो या बैल रूप में, उसे मार डालना ही उचित है। यह कथा श्रीमद्‌भागवत पुराण से ली गई है। अहिंसा का पालन भी तभी हो सकता है जब मनुष्य इन बातों को समझकर उन्हें कार्य रूप में परिणत करे। इससे डरना, भाग जाना, मुकाबिला न करना अहिंसा नहीं, वह पहले दर्जे की

कायरता होगी शत्रुओं को मार डालना ही अहिंसा का पालन करना है। यह अत्याचार नहीं। जानवरों को मार कर खाना, दूसरे कारणों से लोगों को मार कर उन्हें लूट लेना एवं अशान्ति फैलाना हिंसा है और इस हिंसा ने संसार में बहुत गड़-बड़ मचा रखी है।

भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं – 'अर्जुन। इस समय क्यों डगमगाते हो। अपने धर्म को समझो। एक क्षत्रिय के लिये धर्म-युद्धसे बढ़कर मुक्ति प्राप्त करने का कोई और मार्ग नहीं है। धर्म-युद्ध वह है जिसे तुमने अपनी इच्छा से गले नहीं मढ़ा। किन्तु तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम पर थोपा गया है, और जो धर्म की रक्षा के लिये लड़ा जा रहा है इस प्रकार के युद्ध का अवसर मिलने का आशय यह है कि हमारे लिये स्वर्ग के द्वार खुल गये हैं। ऐसा अवसर भाग्यवान् क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है।

इस उपदेश का अर्थ है कि लोगों को अत्याचारियों से छुड़ाया जाय। युद्ध अत्याचार के लिए नहीं करना चाहिये।

किन्तु यदि अपनी रक्षा के लिये और अत्याचार को समाप्त करने के लिए युद्ध किया जाय तो वह मनुष्य का कर्त्तव्य है। उस समय उसे पूरी शक्ति से युद्ध करना चाहिये। यही धर्म है और यही भक्ति का मार्ग है। भगवान् कहते हैं, "अर्जुन! यदि तुम धर्म-युद्ध न लड़ोगे तो तुम्हारा धर्म और कीर्ति नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पाप लगेगा।"

★

मृत्यु

बच जाने का यत्न—मौत का नाम ही भयानक है। इसे कोई प्राणी भी पसन्द नहीं करता। इसकी वास्तविकता का ज्ञान उस समय होता है जब मनुष्य किसी बड़े रोग में फँसकर मृत्यु के निकट जाने वाला हो। ऐसी अवस्था में ज्यों ज्यों रोगी स्वस्थता को अपने से दूर और मृत्यु को निकट देखता है, वह निराशा से अपने सगे-सम्बन्धियों से दुःख व्यक्त करने लगता है। मानो उसके लिये इस समय ऐसा भयंकर बुलावा आ गया है जिससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव प्रतीत होता है। इसके साथ ही उस के सम्बन्धी, जिनसे उसको बहुत लाभ पहुँचते थे अशान्त रहने लगते हैं और अपनी पहुँच के अनुसार हकीमों, वैद्यों और डाक्टरों से इलाज करवाते रहते हैं और सैकड़ों हज़ारों रुपया खर्च कर डालते हैं। पण्डितों और मौलवियों से प्रार्थना करवाते हैं। जिनको इन पर विश्वास न भी हो उन से भी जा जा कर झाड़-फूंक करवाते हैं। विश्वास हो चाहे न हो, फिर भी कोई स्थान शेष नहीं छोड़ते। मृत्यु मानो शरीर धारण किये सामने खड़ी भयंकर रूप से लम्बी जीभ (जिह्वा) लपलपाती है और न मालूम रोगी को मरने से पूर्व क्या क्या डर दिखाती है। मरने वाले पर तो न मालूम क्या बीतती होगी, वह तो वही जाने, किन्तु पास वालों के दिल भी डर

जाते हैं। अन्त में जब रोगी चल बसता है तो उसके सम्बन्धी फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। रोते पीटते रहते हैं। क्रिया आदि करते हैं। यह हाल उन सब मनुष्यों का है जो अपने आप को हिन्दू, सिक्ख, ईसाई और मुसलमान कहते हैं।

एक अथवा दो ईश्वर—जब इन सब का अपने लिये यह हाल है तो मैं पूछता हूं कि जो लोग स्वयं मृत्यु का रूप धारण करके निर्दयी बनकर जानवरों को मौत के घाट उतारते हैं, वे ईश्वर के पुजारी हैं या अपने पेट के? यदि वे अपने आप को ईश्वर-भक्त कहते हैं तो क्या ईश्वर दो हैं? अथवा मनुष्यों को जन्म देने वाला ही ईश्वर है और जानवरों का कोई भी नहीं। इसलिये एक कवि ने कहा है।

'खान पान और भोग में, सब ही जीव समान।
ज्ञान ध्यान बिनु पुरुष को, अति ही पशु तू जान।'

हाथी से लेकर चोंटी, यहां तक कि दिखाई न देने वाले कीटाणु तक सब प्राणियों का रंग और रूप अलग अलग होता है। किन्तु एक ही सर्व-शक्तिमान् ईश्वर का प्रकाश सब में विद्यमान है। बुद्धि इस बात की आज्ञा नहीं देती कि बलवान् जीव अपने से निर्बल को सताये। यह तो प्रसिद्ध बात है कि विपत्ति के समय ही मनुष्य को ईश्वर याद आता है अन्यथा वह अपने स्वार्थों में ही डूबा रहता है। रहीम कवि ने ठीक कहा है :—

'दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, तो दुख काहे को होय॥'

फिलस्तीन के नेता की मांग—कुछ समय हुआ एक विख्यात अरबी नेता श्री मंसूर ने फिलस्तीन के ब्रिटिश नागरिकों के नाम एक खुला पत्र प्रकाशित किया था, जिसमें लिखा था कि अंग्रेज

यदि अपनी वीरता का प्रदर्शन करना चाहते हैं तो वे हर हिटलर[1] का सामना करें। निहत्थे कृषकों पर अत्याचार करना तो वीरता नहीं है।

(समाचार पत्र 'प्रताप' दिनांक ७ नवम्बर सन् १९३८)

हज्ज के समय वध—मैं संसार के लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। महात्मा मंसूर की यह उक्ति कितनी यथार्थ है। इसको सभी निर्बल जीवों पर लागू करना चाहिये। मक्का-मदीना अरब में हैं और मुसलमानों के सब से पवित्र तीर्थ हैं। हज्ज के अवसर पर सारे संसार के जो मुसलमान वहाँ जाते हैं उनकी संख्या लाखों तक पहुँचती है। और प्रत्येक हाजी को एक जीव का वध करना आवश्यक होता है। इसलिये लाखों जीव प्रति वर्ष इन पवित्र तीर्थों पर अकारण ही वध किये जाते हैं। यद्यपि मक्का की सीमा में जूँ तक मारने का आदेश नहीं है। क्या ही अच्छा होता यदि श्री मंसूर के वक्तव्य पर सारे संसार के मनुष्य अथवा कम से कम उनके अपने धर्म वाले ध्यान दें और यह समझ लें कि निर्बलों पर अत्याचार करना वीरता नहीं है। ऐसा करने से इन लोगों के हाथों से जो असंख्य मूक-प्राणियों पर अत्याचार होता है वह बन्द हो जायगा। मुझे स्वयं श्री मंसूर के वक्तव्य से सहानुभूति है। किन्तु न्यायोचित्त यही है कि सभी के प्रति अत्याचार समान अनुभव किया जाय, जिससे संसार में सत्य के मार्ग पर चलकर स्वर्ग प्राप्त कर सकें।

★

1. जर्मनी का डिक्टेटर, जिसने सन् १९३५ में इंगलैंड, फ्रांस, इटली, रूस और अमरीका के भी दाँत खट्टे कर दिये थे।

रंग और रूप

रंग और रूप—इन दो शब्दों ने संसार की सम्पूर्ण सृष्टि—नदी,पहाड़, समुद्र, पृथिवी, आकाश को विचित्र प्रकार से घेर रखा है। संसार की कोई वस्तु इन से बाहर नहीं। यहाँ तक कि ईश्वर की प्रभुताई भी इन्हीं दो शब्दों में छिपी है। यदि मनुष्य अपने शरीर का फोटो ले तब भी इन्हीं दो शब्दों से उस की पहचान होती है और यदि हज़ारों, लाखों, करोड़ों मनुष्यों का चित्र देखें तो भी यही दो शब्द उन की अलग अलग पहचान बताते हैं। पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों का भी यही हाल है। किन्तु फिर भी मनुष्य अपनी चौधर की टांग ऊपर ही रखता है। कहता है कि मैं ही सर्व-श्रेष्ठ हूँ, क्योंकि ईश्वर ने मुझे ही अपने समान बनाया है। क्यों न हो ? मनुष्य ने स्वयं अपने मन से प्रश्न किया और स्वयं न्यायाधीश बन कर इस का उत्तर भी घड़ लिया। इस अपने ही किये निर्णय पर मैं तो विश्वास नहीं करता, क्योंकि संसार के दूसरे प्राणियों का भी यही दावा हो सकता है।

क्या गाय, भैंस, ऊँट, भेड़, बकरी, सूअर आदि का यह दावा कि ईश्वर हमारे ही समान है, ग़लत है। क्या जानवरों को ईश्वर ने शैतान के समान बनाया है? नहीं, कदापि नहीं, ईश्वर सब सृष्टि का कर्त्ता है। जानवरों का भी वही अधिकार है जो मनुष्य का। इन सब को भी ईश्वर का ही तेज प्रकाशित कर रहा है और

प्रत्येक प्राणी को यह कहने का अधिकार है कि ईश्वर मेरे समान है या ईश्वर ने मुझे अपने रूप में ही उत्पन्न किया है। वास्तव में अदृश्य जीव भी न तो ईश्वर से भिन्न हैं और न ही वह उन से अलग है। अनेक प्रकार की चीजें सब एक ही वस्तु को प्रकट करती हैं। वहीं से आती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं। जिस को जिस रूप में पैदा किया, उस में ही वह प्रसन्न है, यहां तक कि गंदगी का कीड़ा भी न दूसरे स्थान पर जाता है और न ही दूसरे स्थान पर जाने में प्रसन्न होता है। किन्तु अपने आप को सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाले मनुष्य दूसरों को अपने बराबर दर्जा देने को तैयार नहीं। अपितु चाहता है कि उन के शरीर को चट करके अपने में मिला ले। फिर भी यह उत्कृष्टता का दावा करता है। चाहे ऐसा आहार उसे पशुओं से भी बुरा बना दे। संसार की अवस्था को देखिये कि क्या हो रहा है? स्थान २ से हत्या और दुःख का चीत्कार - कहीं मूकभाषा में और कहीं घबराहट के साथ हो रहा है। इस पर भी अत्याचारियों की छुरियां अपना काम करने से नहीं रुकतीं।

रंग और रूप की शिक्षा केवल उन्हीं मनुष्यों पर अपना प्रभाव डाल सकती है जो अपने आप को सूफी और ईश्वर-भक्त समझते हैं और सारी सृष्टि को, जैसा कि कुरान शरीफ़ में भी बताया गया है, एक ही ईश्वर की मानते हैं। दैत्यों और असुरों पर, जो समझ से खाली हैं, किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता।

★

मांस खाना और मितव्ययता

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहता है। इसके लिये वैसे तो असंख्य वस्तुओं की आवश्यकता है किन्तु खाना, पहनना और ठहरने का स्थान यह तीन तो अत्यन्त आवश्यक हैं। रहने के लिये निर्धन लोग मिट्टी की दीवारें बना कर ऊपर घास की छत डाल थोड़े ही खर्च से काम चला लेते हैं। धनी लोग सहस्त्रों और लाखों रुपया व्यय करके बड़े २ पक्के मकान बनाकर आराम का जीवन व्यतीत करते हैं। पहनने के लिये निर्धन फटे पुराने, मोटे कपड़े से निर्वाह कर लेते हैं और धनी सैंकड़ों प्रकार के रेशमी, ऊनी, सूती, बढ़िया और बहुमूल्य कपड़े पहनते हैं। आहार के विषय में मनुष्य गोरखधंधे में फँस जाता है। केवल धनी निर्धन का प्रश्न ही नहीं अपितु शुद्ध और अशुद्ध भोजन का भी विचार करना चाहिये। शुद्ध भोजन वही हो सकता है जो बिना हिंसा के प्राप्त हो और जिस से शरीर का बाहरी भाग ही नहीं, अपितु अन्दर का भाग भी स्वच्छ, रहे, अकारण ही रोगों का घर न बने। यदि व्यय भी अपेक्षाकृत कम हो तो सोने में सुगन्ध का काम देगा और मनुष्य अपना और अपने परिवार का पालन भली प्रकार से कर सकेगा।

कम खर्च और अच्छा आहार—अनाज, फल, सब्ज़ी, दूध, घी ऐसा आहार है जो बिना हिंसा के प्राप्त हो सकता है और शुद्ध भी है। इस पर खर्च भी कम आता है। मांस एक तो हिंसा से

प्राप्त होता है, दूसरे उस पर खर्च भी अधिक पड़ता है। धनियों और निर्धनों को छोड़कर मध्य वर्ग के लोगों का भी मांस की अपेक्षा अनाज, बढ़िया फल और दूध-घी पर कम ख़र्च बैठता है। किन्तु मांसाहारी व्यक्ति को मांस और उसके साथी मदिरा के लिये बहुत ख़र्च करना पड़ता है। शाकाहारी और मांसाहारी व्यक्तियों के भोजन के ख़र्च में प्रायः दुगुने का अन्तर है। शुद्ध आहार की अपेक्षा अशुद्ध आहार पर दुगुना ख़र्च होता है। इसमें भी मदिरा का ख़र्च अलग है। मांसाहारी चाहे किसी भी धर्म से सम्बन्ध रखते हों उन्हें अधिकतर मदिरापान की आदत होती है। यदि परिवार के दूसरे व्यक्ति, स्त्रियाँ और बच्चे मदिरा न भी पीवें तो भी परिवार का मुखिया तो अवश्य ही पीता है।

पशुओं की वंश-वृद्धि—साधारणतया मांस खाने वाले कहते हैं कि भेड़ और बकरी एक वर्ष में दो बार बच्चे देती है और एक झोल में एक-एक बच्चा रहता है। इसलिये यदि इनका वध न किया जाय तो न मालूम ये कितनी बढ़ जायें। गाये कोई एक वर्ष और कोई दो वर्ष के अन्तर से बीस वर्षों में बारह बच्चे देती हैं। अर्थात् भेड़ बकरी की अपेक्षा इनकी वृद्धि बहुत कम होती है। यह इन जानवरों की वृद्धि का हाल है, जिन्हें मुसलमानों ने हलाल बताया है। यद्यपि मांसाहारियों के मुख से बचा हुआ तो कोई जीव नहीं। किन्तु ऊपर लिखे पशुओं पर इनका विशेष अनुग्रह है। यहाँ तक कि ये उनका वंश नष्ट करने पर तुले हुए हैं। किन्तु मेरे दिल में यह विचार उत्पन्न होता है कि इन जानवरों की वृद्धि को तो उन्होंने रोक लिया। किन्तु मनुष्यों की बढ़ती हुई जनसंख्या के विषय में उनका क्या विचार है? जब मैं सन् १८८८ में पढ़ता था उन दिनों भारत की जनसंख्या पच्चीस करोड़ थी और अब पाकिस्तान अलग हो जाने पर भी सैंतीस करोड़ के लगभग है।

ग़लत ख्याल—मनुष्यों की संख्या तो बढ़ रही है और जानवरों की घट रही है। क्या मनुष्य इस प्रकार प्रकृति के नियम में गड़बड़ नहीं कर रहा ? इसके अतिरिक्त शूकरी एक झोल में आठ से सोलह तक बच्चे देती है और वर्ष में दो बार बियाती है। यदि एक झोल में १२ बच्चे भी गिने जायें तो वर्ष में २४ बच्चे दिये। संसार में शूकर खाने वालों की संख्या इतनी नहीं जितनी और जानवरों को खाने वालों की है। तो क्या इससे शूकरों की संख्या संसार के दूसरे जानवरों की अपेक्षा बढ़ गई है ? यदि इसका उत्तर इसके विपरीत है तो वह लोग, जो प्रकृति के नियम में दख़ल देते हुए कहते हैं कि यदि भेड़-बकरी का मांस खाना छोड़ दिया जाय तो उनकी संख्या बहुत बढ़ जाय, कहां तक ठीक है ? यदि वृद्धि का ही ख्याल है तो क्या शूकर का हराम होंना इनके विचारों के विपरीत नहीं है ? इसके अतिरिक्त कद्दूदाना एक बार में १० करोड़ अण्डे देता है तथा कारव नाम की मछली प्रति वर्ष ढ़ाई लाख अण्डे देती है और पचास वर्ष तक ऐसे ही देती रहती है। इस प्रकार और भी जानवर अधिकता से अण्डे देते हैं। कुतिया ४ से ८ तक बच्चे देती है और वर्ष में दो बार बियाती है।

चील, गिद्ध, काग, शिकरा, बाज़, शेर, चीता भेड़िया, बिल्ली, कछुआ आदि का मांस साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति नहीं खाता। वृद्धि का प्रश्न उठाने वालों ने अपने स्वार्थ के कारण यह तो मान लिया, किन्तु इन बातों का इनके पास क्या उत्तर है ? वास्तव में प्रकृति के भेदों को प्रकृति ही समझती है और वही वृद्धि और कमी की जिम्मेदार है। स्वार्थी मनुष्य स्वार्थ के वश में पड़कर दीन जानवरों पर अत्याचार कर रहे हैं। इनको समझ से काम लेना चाहिये और अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहिये।

भेड़ और बकरी से लाभ

मनुष्य का पहनावा—पहाड़ों पर, जहां बर्फ पड़ती है और बहुत सर्दी होती है देखा जाता है कि लोग ठण्ड से बचने के लिये ऊन के कपड़े काम में लाते हैं, जो भेड़ों से प्राप्त होती है। केवल ऊन ही एक ऐसी वस्तु है जिसके कपड़े पहन कर मनष्य सर्दी से सुरक्षित रह सकता है। यह बात निश्चित् ही है कि यदि ऊन न होती तो पहाड़ों पर लोगों का रहना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता। ध्यान देने योग्य बात है कि अपने को सर्वोत्कृष्ट प्राणी कहलाने वाला मनुष्य भेड़ के साथ कैसा बर्त्ताव करता है। इस भलाई के बदले वह उस की गर्दन तन से अलग करता है और उस का मांस स्वाद से खाता है। क्या उस की उत्कृष्टता तथा न्याय उसे यही सिखाते हैं ? कदापि नहीं। जहां तक मेरे व्यक्तिगत विचार हैं ऐसे मनुष्यों को सर्वोकृष्ट होने का दावा छोड़ देना चाहिये।

दूध का लाभ—बकरी ऐसा जीव है जिस का खर्च थोड़ा और लाभ अधिक है। उन गरीब और निर्दोष बच्चों के लिए जिन की माताएँ पैदा होते ही मर जाती हैं बकरी का दूध माता के दूध का काम देता है। गरीब के बच्चे के लिए तो यह और भी अच्छा आहार है, क्योंकि जो लोग जंगलों में या आबादी से कुछ दूरी पर रहते हैं वे इस को जंगल में चरा-फिरा कर इस से दूध प्राप्त कर

लेते हैं। इस प्रकार उनको बिना मूल्य ही दूध मिल जाता है। इस के अतिरिक्त इस में और भी गुण हैं। जहां मांसाहारी कई प्रकार के मांस खाने से यक्ष्मा या क्षय के रोगी बन जाते हैं, वहां बकरी का दूध इन रोगों की ओषधि के समान है। भूमि के नीचे जहां कहीं कूआं दबा हुआ हो बकरी उसके ऊपर नहीं जाती। मानो प्रकृति ने उस में यह गुण स्वभाव से ही रखा है, जो मनुष्य में नहीं है। बकरी की खाल मरने के पश्चात् मशक बनाने के काम आती है। इस के अतिरिक्त बहुत से दूसरे जानवरों की खालें भी बहुत लाभकारी हैं। किसी ने क्या खूब कहा है—

'हाथी के दांतन खिलौने भांत भांतन के,
सिंह की खाल काहु बीर मन भायेगी।
मृगन की खालन पर बैठेंगे योगी यती,
बकरी की खाल हो तो पानी भर पाएगी।
सांभर की खाल से डटेंगे सिपाही लोग,
गैंडे की खाल राव राजा मन भायेगी।
नेकी और बदी रह जायेगी जगत बीच,
मानुष की खाल कहीं काम नहीं आयेगी।

इस निबन्ध को लिखने के पश्चात् मैंने ८ जून सन् १९५८ के 'प्रताप' में पढ़ा कि कराची में सप्ताह में तीन दिन मांस खाने और बेचने की मनाही कर दी है, क्योंकि वहां दिनों-दिन पशुओं की कमी होती जा रही है। अतः पशुओं के वंश की रक्षा के लिये पाकिस्तान सरकार ने सप्ताह में तीन दिन मुर्ग और मुर्गियों के सिवा अन्य पशुओं का मांस खाना और बेचना निषिद्ध कर दिया है। इस विषय में सरकारी रिपोर्ट में बताया गया है कि केवल कराची में, जिस की जनसंख्या प्रायः बीस लाख है, प्रति दिन तीन

हज़ार भेड़ बकरियां तथा ढाई सौ पशु बध किये जाते हैं। यह समाचार पढ़ कर मेरे मन में विचार उठा कि मैं भारत और पाकिस्तान के मुसलमानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करूं कि इससे पूर्व भारत में कई शताब्दियों तक शासन रहने पर भी क्या मुसलमानों का ध्यान पशुओं को सुरक्षित रखने की ओर गया था ? आप शताब्दियों के इतिहास को पढ़ कर देख लें, उत्तर 'नहीं' में ही मिलेगा। वास्तव में बात तो यह है कि यदि अपने घर में आग लगे तो आग और दूसरे के घर में लगे तो वैश्वानर का कौतुक या खेल-तमाशा ही समझा जाता है।

कराची की जनता के लिये तीन हज़ार भेड़-बकरियों और ढाई सौ पशुओं का बध प्रति दिन होता है। पाकिस्तान तो १५ अगस्त सन् १९४७ को बटवारा होने के पश्चात् पृथक् हुआ। यदि उसकी सात करोड़ जनसंख्या के लिये इसी अनुपात से गणना की जाय तो प्रतीत होगा कि समस्त पाकिस्तान के दैनिक आहार के लिये एक लाख पाँच हज़ार भेड़ों और आठ हज़ार सात सौ पचास पशुओं की आवश्यकता होगी। इस प्रकार एक वर्ष के लिये तीन करोड़ तिरासी लाख पच्चीस हज़ार भेड़ बकरियों की तथा इकत्तीस लाख तिरानवे हज़ार सात सौ पचास पशुओं की अपेक्षा होगी। पता नहीं, बटवारे के पश्चात् कितने पशु पाकिस्तान के भाग में आये और इन बारह वर्षों में उसने कितने जीव समाप्त कर दिये हैं। पशुवध पर प्रतिबन्ध तो वहाँ अब लगा है। वाह री भावुकता! वास्तव में भावुकता का अर्थ तो इस्लाम धर्म ने ही समझा है! पर अन्य धर्म भी इस दोष से अछूते नहीं हैं। भारतवासी भी यद्यपि स्वभाव से तो मांसाहारी नहीं हैं तथापि धर्मनिरपेक्षता की आड़ में यहाँ भी यह कुकर्म चल ही रहा है। मुझे यह पढ़कर दुःख हुआ कि केवल ईद-उल्-जुहा

के दिन दिल्ली में मुसलमानों ने पन्द्रह हज़ार भेड़-बकरियाँ वध की थीं। भारत की जनसंख्या तो प्राय: चालीस करोड़ है। अत: यह भी पशु-वध में सम्भवत: पाकिस्तान के बराबर तो होगा ही।

सम्भवत: सत्तर-अस्सी साल से मेरी दृष्टि गोवध पर रही है। इस दीर्घ काल में ऐसा कोई वर्ष नहीं हुआ जबकि इस विशाल भूखण्ड में इद-उल्-ज़हा के अवसर पर मुसलमानों की ओर से झगड़ा न हुआ हो। इन झगड़ों में कई स्थानों पर बीसियों हिन्दू मारे गये और लाखों रुपयों की हानि भी हुई। कई बार देखा गया कि नगरों में एक सुन्दर दर्शनीय गाय को सजा कर 'दुलदुल' निकालते थे। इस प्रकार धूम-धाम से पुलिस की देख-रेख में जलूस निकाल कर सदय मानवों के मन को आघात पहुँचाया जाता था। मुझे स्मरण है कि सन् १८८६ ई० में करनाल में ईद-उल्-जुहा के अवसर पर बहुत बड़ा दंगा हुआ था, जिसमें बहुत-से हिन्दू लूटे और मारे गये थे। वास्तव में अब कुर्बानी (पशु-वध) करना मुसलमानों के अपने लिये भी लाभदायक नहीं है। इस वर्ष तो शाही मसजिद लाहौर के खतीब मियाँ गुलाम मुर्शिद ने भी कहा था कि मुसलमानों को कुर्बानी की अपेक्षा किसी अच्छे कार्य में रुपया लगाना चाहिये।

मुसलमानों में यदि यह कुर्बानी का रोग न होता तो हिन्दुओं से उनका भेदभाव न बढ़ता और न देश का बटवारा ही होता। हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई की तरह जीवन व्यतीत करते और पाकिस्तान के वैमनस्य ने जो अशान्ति कर रखी है उसका चिन्ह भी न होता। विभाजन हो जाने पर दोनों देश जो सुरक्षा के लिये अन्धाधुन्ध धन व्यय कर रहे हैं उसका देश के आर्थिक विकास के लिये उपयोग होता, जिससे थोड़े ही समय में हमारा देश उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता।

आर्थिक दृष्टिकोण

क्या गाय आदि प्राणियों का मांस खाना चाहिये या इनका दूध प्राप्त करने के लिए इन्हें पालना चाहिये ?—

पेट का धन्धा - संसार भर में प्राणियों के जीवन का आधार खुराक है। संसार में जो धंधे किये जाते हैं, सब पेट के लिए ही होते हैं। धर्म चरित्र आध्यात्मिकता—इन सब की अपेक्षा पेट का धंधा अधिक आवश्यक है। जिस व्यक्ति का पेट खाली हो उसका कोई धर्म नहीं। कुरान शरीफ़ ने यहां तक आज्ञा दे दी कि भूख के समय हराम-हलाल की परवाह मत करो। हराम को हलाल समझ कर खा जाओ। मुसलमानों ने एक हज़ार वर्ष पहले भारत पर आक्रमण किया तो पेट के लिये। अंग्रेज़ छः हज़ार मील से भारत आये तो पेट के ही लिये। जब पेट की आवश्यकताएँ पूरी हुईं तो उन्होंने भले और बुरे का विचार छोड़ कर अपने देश की प्रथाओं को भारतियों पर ठूँसने का प्रयत्न किया। किन्तु मांसाहारी जातियां भारत में सैंकड़ों वर्ष रहने पर भी यह नहीं समझ सकीं कि हिन्दू गाय को क्यों पवित्र समझते हैं और गाय को बचाने के लिये जीवन तक बलिदान करने को क्यों तैयार हो जाते हैं ? कारण यह है कि भारत वर्ष में हिन्दुओं की सब छोटी और बड़ी जातियों का धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः, है। यों तो बौद्धधर्मी भी इसी सुनहरी

नियम को मानते हैं और भारत, चीन जापान तथा छोटे २ तीन-चार देशों को मिला कर बौद्धों की संख्या संसार में सब से अधिक है। किन्तु यद्यपि इनका धर्म इन्हें हिंसा करने की आज्ञा नहीं देता तथापि इनमें बहुत से लोग मांस खाने लगे हैं। फिर भी इतने अधिक नहीं जितने दूसरे धर्मों के अनुयायी खाते हैं। अब जो जातियां मांस नहीं खातीं उन की संख्या भी करोड़ों ही है। उनके भोजन का आहार दूध तथा घी है। घी ऐसी वस्तु है जिस का शाकाहारियों की खुराक से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। वे अपने चौके में बिना घी की रसोई को 'भूत रसोई' कहते हैं। कोई मिठाई घी के बिना स्वादु नहीं बन सकती। जो मिठाइयां घी के बिना बनती हैं उनको कहा जाता है कि यह तो निरी खांड है।

दो प्रकार के माँसाहारी—अब मांसाहारियों को देखिये। मेरे विचार में भारत में दो प्रकार के मांस खाने वाले हैं। एक भारतीय पद्धति से खाने वाले और दूसरे यूरोपियन पद्धति से। भारतीय पद्धति से खाने वालों को उस समय तक मांस अच्छा नहीं लगता जब तक उसमें घी न हो और गरम-मसाला, राई, मिर्च, लौंग, जावित्री, लहुसन आदि न पड़ा हो। यह वस्तुएँ मांस की दुर्गन्ध आदि को दबाने के लिये डाली जाती हैं। वास्तव में स्वाद भी गरम मसाला और घी में ही होता है। परन्तु नाम मांस का हो जाता है। जो धनी हैं वे मांस में उसके बराबर घी डालते हैं। ग़रीब कम किन्तु घी डालते अवश्य हैं। आधुनिक युग में मांस खाना ज़ोरों पर है। इतना घी आये तो कहां से आये। परिणाम यह कि मूँगफली का तेल, खसखस का तेल, खोपे का तेल और दूसरे तेल जिनको वैजिटेबल घी का नाम दिया जाता है, सहस्रों, लाखों मन नगरों और गावों में अधिकता से प्रयोग में लाया जाता है, जो

भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों का कारण बन रहा है। मनुष्य की शक्ति दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है गौयें और भैंसें, जो घी के पेड़ हैं, बिना सोचे समझे वध किये जाते हैं। अंग्रेज़ मांस में घी का प्रयोग नहीं करते। केवल उबाल कर खाते हैं। इसलिये उनको परवाह नहीं कि गौयें कम होती हैं या अधिक। भारत में सन् १६२८ में गौओं और बैलों की संख्या चौदह करोड़ छप्पन लाख थी। इन में साँड और बछड़े सम्मिलित नहीं हैं। १९४१ में यह संख्या केवल नौ करोड़ रह गई थी।

खुराक के स्वाद का त्याग—दुःख है कि भारत के मुसलमान यह जानते हुए भी कि गाय की कमी के साथ उनके खुराक का स्वाद भी समाप्त हो रहा है, इस ओर ध्यान नहीं देते। गाय नष्ट करने के पश्चात् घी कहां से आयेगा ? अंग्रेज़ों को मांस खाने के लिये मांसाहारी पशुओं के समान काम करना पड़ता है। खाना खाते समय बजाय अंगुलियों के, जो प्रकृति ने उन्हें इस काम के लिये दी हैं, वे छुरी, कांटे और चमचे प्रयोग में लाते हैं। गौओं की कदर भारतियों को होनी चाहिये, जिनका आहार शुद्ध है। यही कारण है कि हिन्दू हर समय गाय का जीवन बचाने को तैयार रहते हैं। क्योंकि गाय की कमी के साथ ही इनकी संस्कृति और रही-सही शक्ति तथा भोजन का स्वाद पूर्णतया नष्ट होता दिखाई दे रहा है। मांसाहार केवल जिह्वा के चटोरपन के लिये है, और इस भ्रान्त धारणा के कारण ही लोग समझते हैं कि मांस शरीर को शक्ति प्रदान करता है। तनिक मांस के गुणों पर विचार कीजिये। आध सेर मांस प्रतिदिन की बजाय आध सेर घी खा कर देखिये। आध सेर तो क्या पाव भर भी कठिनता से पच सकेगा। वह अपनी इस समय की शक्ति से बहुत अधिक बलवान् होगा। सम्भव है कि भारत में मांसाहारी व्यक्तियों में से प्रति दिन दस सेर मांस खाने वाले तो सहस्रों

निकल आवेंगे किन्तु सम्पूर्ण संसार की जनसंख्या में एक व्यक्ति भी ऐसा निकलना कठिन है जो ढ़ाई सेर घी पचा सके। ऐसी अवस्था में गाय का वही शत्रु हो सकता है जिसे घी के गुणों का पता न हो।

गाय से अन्य लाभ :—गाय में और भी बहुत से गुण हैं। यदि पेट में हवा भर कर अफ़ारा होता हो तो हींग को गौमूत्र में रगड़ कर और गरम करके पेट पर लेप करने से हवा भरनी बन्द हो जाती है। बच्चों को सूखे की बीमारी में गो-मूत्र से नहलाने और सिर पर मक्खन रखने से बच्चा ठीक हो जाता है। जलोदर के रोग में गो-मूत्र पिलाने से रोगी स्वस्थ हो जाता है। यदि चेचक निकली हुई हो तो गोमूत्र से आंखों को धोने से फोला नहीं पड़ता। गोबर से मकान लीपे जाते जाते हैं। मकान में पलस्तर करने के पश्चात् जब तक गोबरी न की जाय, दीवार पर सफ़ाई नहीं आती। गोबर के उपले थोपे जाते हैं और ये रोटी पकाने के लिये जलाने के काम आते हैं। बैलों से खेतों में हल चलाये जाते हैं और तत्पश्चात् अनाज बोया जाता है। इस के अतिरिक्त गोबर खाद का काम देता है। मरने के पश्चात् गौ का चमड़ा जूते बनाने के काम आता है।

★

दस वर्षों का हिसाब

गाय और भैंसों की संख्या जो सरकारी डेयरियों में भारत वर्ष की सम्पूर्ण सेना को मक्खन और क्रीम देती रही

१		२		३		४		५		६		७		८		९		१०	
१९२४-२५		१९२५-२६		१९२६-२७		१९२७-२८		१९२८-२९		१९२९-३०		१९३०-३१		१९३१-३२		१९३२-३३		१९३३-३४	
गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें	गाय	भैंसें
१५०७	११११	१५०१	१८४	१३९८	१०५५	१३१५	१०५५	१३१५	१०५७	११५९	१३४१	१२८७	१९१७	१२०९	१७३९	१३३५	१८८८	१४४९	१८३१

गाय भैंसों की कमी—इस हिसाब से यह स्पष्ट होता है कि जहां १९२४-२५ में सब गवर्नमैंट डेयरी फार्मों में गौओं की संख्या वर्ष में १५०७ थी, जिन में पाँच हज़ार से दस हज़ार पौण्ड तक दूध देने वाली गायें २२·५ प्रतिशत थीं वहां १९३३-३४ में इनकी संख्या १४४९ और दूध देने वाली गायों की संख्या ५३·३ प्रतिशत थी। इस के विपरीत भैंसें १९२४-२५ में ११११ थीं, जिन में पांच हज़ार से दस हज़ार पौण्ड तक दूध देने वाली १३·५ प्रतिशत थीं और १९३३-३४ में १८३१ में से पांच हज़ार पौण्ड से दस हजार पौण्ड तक दूध देने वाली ८८·६ प्रतिशत और एक हज़ार से पाँच हजार पौण्ड तक दूध देने वाली भैंसों की संख्या ८६·५ प्रतिशत थी। इस प्रकार भैंसों की अपेक्षा गायों की संख्या घट गयी। दूध देने का प्रति पशु अनुपात आगे देखिये।

डेयरियों में गाय भैंसें

१९२४-२५ गाय	१९२४-२५ भैंस	१९३३-३४ गाय	१९३३-३४ भैंस	वर्ष में कितना दूध दिया
१	—	८४	—	दस हज़ार पौण्ड से अधिक
४	—	७४	२	नौ हज़ार से दस हज़ार पौण्ड तक
३०	—	७९	६	आठ से नौ हज़ार पौण्ड तक
३५	३	१५२	१७	सात से आठ हज़ार पौण्ड तक
८१	२५	१८३	६१	छः से सात हज़ार पौण्ड तक
१५८	९५	२००	१६१	पांच से छः हज़ार पौण्ड तक
२८०	२५६	२०८	४३९	चार से पांच हज़ार पौण्ड तक
३७५	३८६	१५९	६३१	तीन से चार हज़ार पौण्ड तक
३१०	२१६	१४०	३४६	दो से तीन हज़ार पौण्ड तक
१४०	७६	१७०	१६८	एक से दो हज़ार पौण्ड तक
९३	४८	—	—	एक हज़ार पौण्ड से कम
१५०७	११११	१४४६	१८३१	कुल

इस प्रकार अनुपात की दृष्टि से १९२४-२५ में प्रति गाय पाँच सेर आध पाव के लगभग और प्रति भैंस ४ सेर १३ छटांक दूध होता था। तथा १९३३ ३४ में गाय का दूध सात सेर साढ़े चार छटांक

और भैंस का ४ सेर १५ छटांक था । इससे यह मालूम होता है कि गवर्नमेण्ट डेयरी फार्मों में गायें भैंसों से अधिक दूध देती हैं ।

१६२४-२५ में १५०७ गायों ने प्रतिदिन दूध दिया		१५४४६—१२
,, ,, ,, १११९ भैंसों ने ,, ,, ,,		१०६९३— ६
	कुल	२६१४०— २
१९३३-३४ में १४४९ गायां ने प्रति दिन दूध दिया		२११०१ —१
,, ,, ,, १८३१ भैंसों ने ,, ,,		१८०८१—$\frac{1}{4}$
	कुल	३९१८२—१$\frac{1}{4}$

इस हिसाब से १९३३-३४ में गाय और भैंसों की कुल सख्या ३२८० थी और उन्हों ने ६५,००० गोरे सिपाहियों को प्रति व्यक्ति ५ छटाँक अथवा दस औंस दूध दिया ।

सरकारी पशुओं का, जो गवर्नमेण्ट डेयरियों में १६२४-२५ और १९३३-३४ में दूध देते रहे है हिसाव यहां देता हूँ । मैंने १६२३-२४ से १९३२-३३ तक के आठ वर्ष छोड़ दिये हैं ।

१९३३-३४ में प्रति गोरा सिपाही को दस औंस अथवा ५ छटांक दूध मिला, यदि उन्हें आध सेर अथवा १६ औंस दूध प्रतिदिन दिया जाय तो १९६८ पशुओं की और आवश्यकता पड़ती है और डेयरी फार्मों के खर्च में प्रति रुपया छः आने बढ़ाने पड़ते हैं । गाय का मांस सरकार प्रति गोरा १ पोण्ड देती थी । उसमें बहुत सी हड्डियां निकल जाती थीं । शेष मांस आध पाव घी की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि जहां संसार में २५ सेर मांस खाने वाले कई व्यक्ति होंगे वहां ढाई सेर घी पहले तो कोई खा नहीं सकता और यदि कोई एक आध व्यक्ति ऐसा निकल भी आवे तो वह उसे पचा नहीं सकेगा । इसलिये आध सेर दूध अथवा आध पाव घी प्रतिदिन शक्ति प्रदान करने में आध सेर मांस से अधिक है । इसपर खर्च भी प्रायः एक जैसा ही पड़ता है ।

अमरीकन गाय—मैंने समाचारपत्र 'प्रताप' कृष्ण नम्बर अगस्त १९३८ में अमरीका में दूध देने वाली गौओं का हाल पढ़ा। वहां एक महीने में अपने भार के बराबर दूध देने वाली गौएँ भी हैं। जो वर्ष में औसत हिसाब से १६१८४ पौंड दूध अथवा ५३२ पौण्ड मक्खन देती हैं। सब से बढ़िया गाय वर्ष भर में २०५१३ पौण्ड दूध देती है। औसत दर्जे की अमरीकन गाय चार हज़ार पौण्ड दूध अथवा १६० पौण्ड मक्खन देती है। हैनरी फोर्ड का कहना है कि अमरीका की एक गाय वर्ष में ५०३ पौण्ड से कम दूध नहीं देती।

दूध के रसायनिक गुण—दूध का एक प्याला, जो चाय के प्याले के बराबर हो, ३½ पौंड ३¾ औंस मांस अथवा ८½ औंस मटरों के बराबर शक्ति प्रदान करता है। यह संख्या उस खोज से ली गई है जो अमरीका की एक सुप्रसिद्ध कम्पनी ने डाक्टरों से तैयार करवाई है और जिसके द्वारा उसने अपने ग्राहकों से अधिक दूध पीने का आग्रह किया है।

★

गणित से मांसाहार का निर्णय

सन् १५३५ की गणना में गौओं, भैंसों तथा उनके बच्चों की संख्या भारत में २१४५७४१६६ और भेड़ों तथा बकरियों की संख्या ६७०६६५२७ थी

एक समय समाचारपत्रिका में मैंने पढ़ा था कि कलकत्ता, बम्बई बन्दर, शाहजहांपुर, देहली, हावड़ा, लाहौर, लाहौर छावनी, स्यालकोट, स्यालकोट छावनी, शोलापुर, मेरठ, मेरठ छावनी, कानपुर कानपुर छावनी, लखनऊ, लखनऊ छावनी, अहमदाबाद, अहमदाबाद छावनी, रंगून, रंगून छावनी, कराची, कराची छावनी, आगरा, आगरा छावनी, सूरत, सूरत छावनी, और हिंगर इन सत्रह (१७) नगरों और छावनियों की सन् १९२१ की जन-गणना में कुल संख्या (४८६०३३९) अड़तालीस लाख नव्वे हज़ार तीन सौ सैंतीस थी, जिन में मुसलमान, ईसाई और अन्य गौ-भैंसे खाने वालों की संख्या १६१७०५३ थी। उन्हों ने सन् १९२१ में ३३७७९८ गौ-भैंसें भक्षण कीं अर्थात् पांच मनुष्यों ने एक पशु खाया। पशुओं के अतिरिक्त इन नगरों में २२६६१५५ बकरियां तथा भेड़ें भी खायी गयीं। यह एक मनुष्यके लिए प्रति वर्ष आधी भेड़ या बकरी का अनुपात बैठता है। इस प्रकार अब यह गणित सुगमता से समझ में आ सकता है। यदि देश की सारी जनसंख्या मांसाहारी हो तो भारत की पैंतीस करोड़ जनता के लिये आधा पशु प्रति मानव के हिसाब से

भेड़-बकरी साढ़े सत्रह करोड़ अपेक्षित हुईं। परन्तु इनकी संख्या ६७०६६५२७ थी, यह तो केवल छः मास ही की भोजनसामग्री हुई। यह संक्षिप्त विवरण है। इसके समर्थन के लिये मेरी १६५१ में छपी उर्दू की पुस्तक के पृष्ठ २२६ से २५६ तक अवलोकन करें, जो कि मैं ने लगातार तीन वर्ष तक संग्रह करके सूची बनाई है। उसमें पशुओं के मांस की अपेक्षा उनके दूधसे जो विशेष लाभ होता है वह व्यौरेवार समझाया गया है। अगले प्रकरण में उसका संक्षिप्त विवरण देता हूँ।

मुझे समाचारपत्रों में यह पढ़ कर खेद हुआ कि सन् १६५८ में पाकिस्तान सरकार की विज्ञप्ति के अनुसार वहां के निवासियों ने २४५७५००० पशुओं का वध करके अपनी उदर-पूर्ति की। इस से मुझे अपनी उर्दू की पुस्तक का वह प्रसंग स्मरण हो आया जिस में मैं ने कई वर्षों के अथक परिश्रम से भारत के नगरों की सामूहिक जन-संख्या और उस में अहिन्दुओं की संख्या मालूम करके यह पता लगाया था कि वहां की अहिन्दू जनता ने एक वर्ष में अपनी उदर-पूर्ति के लिए कितने पशु वध किये। उन की गणना इस प्रकार है –

सन् १६४१ में भारत के नगरों की सामूहिक जनसंख्या ३८९८८५४२७ थी। उन में अहिन्दू (मुसलमान तथा ईसाई) तृतीयांश अर्थात् १२९९५१४२ थे। उन्हों ने एक वर्ष में १८९९४५१४ गाय, भैंस और बछड़े हलाल किये। यदि भारत की सम्पूर्ण जनता को अहिन्दू या मुसलमान मान लिया जाय तो उस समय जो भारत में २१४५७४१६९ गाय, भैंस और बछड़े थे वे सभी समाप्त हो जाते। इस बात का उल्लेख मैं ने सन् १६४१ में प्रकाशित अपनी उर्दू की पुस्तक 'नुक़ायास गोश्तखोरी' के पृष्ठ २३२ पर किया है। दैव-वश देश में क्रान्ति हुई और दुर्भाग्य से उसका विभाजन हो कर

पाकिस्तान की रचना हुई। मुझे गौरव है कि मैंने अपनी पुस्तक में गणित करके जो यह बात लिखी थी कि ये मुसलमान महाशय जहाँ भी पदार्पण करेंगे वहां के सभी प्राणियों को चट कर जायँगे—अब पश्चिमी पाकिस्तान की अपेक्षाकृत अल्प जनसंख्या ने, जो भारत की सन् १९४१ की केवल नगरों की अहिन्दू जनसंख्या से बहुत कम है—एक साल में २४५७५००० पशुओं को मार कर सत्य सिद्ध कर दिया है। निर्मम पशुवध के विषय में मैं अपने भाव निम्नाङ्कित पद्यद्वारा प्रकट करता हूँ—

बेरहमों[1] का सरदार

कुछ नहीं रहमान[2] की दरगाह[3] में उसका है कार[4]।
पेट कबरिस्तान जिसका और मुँह खूँखार[5] है॥
सोहबते हक्क[6] से भला खूँखार कब हो सरफराज़[7]।
साहिबे दिल क्या बने जिसकी गिज़ा[8] मुरदार है॥
पेट की दोज़ख[9] भरे मासूम[10] जी रूहों[11] से जो।
वास्ते इसके भी इक दोज़ख बड़ी तैयार है॥
रहम है अज़बस[12] ज़रूरी रहमते हक्कके लिये।
खालिके रहमान कातिल से बहुत बेज़ार[13] है॥
जीते जी मरज़[14] व मुसीबत में रहेगा मुब्तिला।
गोश्तखोरी के नशे से जो कोई सरशार[15] है॥
एज़दी बरकात[16] का तो बस वही है मुस्तहिक।
बेज़बान हैवान का दुनिया में जो गमखार है।

1. निर्दयी 2. ईश्वर 3. दरबार 4. अच्छा कर्म 5. खून से भरा हुआ 6. ईश्वर 7. लाभकारी 8. आहार 9 नरक 10. निर्दोष 11. प्राणियों 12. अत्यन्त 13. दुःखी, नाराज 14. रोग 15. मस्त 16. ईश्वर की दया।

गोश्त है खुराक जिसकी खलके हैवान जिसकी मशक़
यह खुदा लगती है बेरहमों का वह सरदार है ॥

अतः उन सर्वसमर्थ प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि वे इस्लामधर्म में कोई ऐसा बुद्धिमान् सत्पुरुष प्रकट करें जो उन लोगों को इस कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करे।

★

गाय से आर्थिक तथा रासायनिक लाभ

गाय से बहुत से लाभ होते हैं। यदि आर्थिक दृष्टिकोण से भी विचार किया जाय तो गाय कई प्रकार से मनुष्य के लिये उपयोगी और लाभकारी है।

(१) भारत में गरमी और खुश्की बहुत होती है। मांस यदि लाभकारी हो सकता है तो ठण्डे देशों में, गरम देशों में नहीं। इस लिए भारत जैसे गरम देश में तो गाय का दूध, दही, मक्खन, घी, और छाछ आदि गुणकारी हैं।

नोट—मेरी आयु ८५ वर्ष की है। मैं सर्दी-गर्मी बारहों महीने कसौली में रहता हूँ। सर्दी के दिनो में जब पारा ३२ डिगरी तक गिर जाता है और पानी के अतिरिक्त मूत्र भी करते करते जम जाता है. मैं ने मांस को कभी छुआ तक नहीं है। सर्दी के दिनों में जब रातें बड़ी होती हैं, और ठण्ड के कारण बिस्तरे से अंगुली भी निकालना कठिन होता है, मैं सदा सवेरे तीन बजे उठता हूँ। दिन चढ़ने से पहले मैं सदा अपने नित्य-नियम से छुट्टी पा लेता हूँ। फिर मैं किस प्रकार कहूँ कि ठण्डे देशों में मनुष्य मांस के बिना नहीं रह सकता। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि ऐस्कीमो बिना माँस के नहीं रह सकते, क्योंकि वहां खेती-बाड़ी की उपज नहीं होती। उनके जीवन का हाल इसी पुस्तक में दिया गया है। उनका सब रहन-सहन पशुओं के समान है।

(२) गाय का दूध गुणदायक है। इसलिए बहुत से रोगों में उसका प्रयोग होता है।

(३) गाय दूध पीते बच्चों के पालन-पोषण के लिये आवश्यक है। उसके दूध से घी, दही, मक्खन, खोया रबड़ी, पनीर आदि तैयार होते हैं और यह चीज़ें मनुष्य के स्वास्थ्य, शक्ति और दीर्घायु आदि के लिये बहुत अच्छी है।

(४) गायके बछड़ों से खेती-बाड़ी में बहुत सहायता मिलती है।

(५) गाय का गोबर लिपाई, सफ़ाई में काम आता हैं और कीटाणुनाशक है।

(६) गाय बैल के चमड़े से मनुष्य के काम की बहुत सी चीजें तैयार होती हैं।

(७) गाय का मूत्र कई रोगों के काम आता है।

(८) इस्लाम धर्म में अपने साथ की दूसरी जातियों से अच्छा वर्त्ताव करने और उनके विचारों का आदर करने का आदेश है। गोवध बन्द करने से हिन्दूओं के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध बहुत मित्रतापूर्ण रह सकते हैं और देश में शान्ति रह सकती है।

(९) गाय और बैल सवारी और सामान ढोने में काम आते हैं।

(१०) वैद्यक के ग्रन्थों में गाय के मांसको देर में पचने वाला, रक्त में विकार उत्पन्न करने वाला, वायु उत्पन्न करने वाला और कई रोगों का कारण बताया गया है।

मुसलमान विद्वानों के विचार

मुसलमानों में जो व्यक्ति शान्तिप्रिय, देश के हितकारी और देशभक्त हुए हैं उन्हों ने गो-हत्या के विरुद्ध सम्मति प्रकट की, फतवे और आदेश दिये और पूरा प्रयत्न किया। इनमें से कुछ महानुभावों का उल्लेख यहां किया जाता है।

(१) खलीफ़ा अब्दुल मलिक—अमिया वंश का एक प्रसिद्ध खलीफ़ा अब्दुल मलिक बिन मरदान था। उसने इराक और अरब से बीरानी दूर करने का आदेश देते हुए कहा था कि आज से किसी गाय की हत्या न हो और कोई मुसलमान गाय का मांस न खाय। इस आदेश के कारण जो खेती-बाड़ी की उन्नति के लिये था, गो-हत्या एक दम बन्द हो गई।

(२) अकबर महान् और जहाँगीर—भारतवर्ष में सम्राट् अकबर ने अपने जन्म-दिन तथा सिंहासन पर बैठने के दिन और पुत्रों तथा पौत्रों के जन्मदिवसों पर जानवरों का वध किया जाना नियमित रूप से बन्द कर दिया था। जहांगीर ने यह प्रथा उसी प्रकार स्थित रखने के अतिरिक्त आदेश दिया कि वर्ष के छः महीनों में जीवों का वध बिल्कुल बन्द कर दिया जाय। उसने गो-हत्या पूर्णतया बन्द कर दी थी।

(३) बाबर सम्राट्—भारत सम्राट् ज़हीरुद्दीन बाबर का

एक आदेश भोपाल के पुस्तकालय में मौजूद है, जिसके अनुसार गाय के बलिदान को क़ानूनन बन्द किया गया था।

(४) काबुल का बादशाह—अमीर हबीबुल्ला खां, सम्राट् काबुल जब भारत आये तो नुमाज़े बकरीद के अवसर पर दिल्ली में उन्हों ने गाय का बलिदान बन्द करने की अनुमति दी।

(५) निज़ाम हैदराबाद—निज़ाम की आज्ञा से हैदराबाद में गाय का बलिदान बन्द है।

(६) मिस्टर मज़हर-उल-हक़—बिहार के प्रसिद्ध बैरिस्टर तथा राजनीतज्ञ थे। उनकी राय में गाय का बलिदान सम्पूर्ण भारत में बन्द होना चाहिए।

(७) मसीह-उल्-मलिक हकीम अजमल खां—मौलाना अब्दुल बारी और अफ़ग़ानिस्तान के विद्वानों का आदेश है कि गाय की बजाय और किसी जानवर का बलिदान इस्लाम के नियमों के विरुद्ध नहीं। मेरी मुसलमान भाइयों से अपील है कि जहां तक सम्भव हो सके, बकरीद पर गाय का बलिदान न करें।

(८) नवाब करनाल—खान बहादुर नवाब उमर दराज़ अली खान की राय है कि हम सब लोगों को चाहिए कि एकदिल और एकजान हो कर गो-रक्षा के लिये प्रयत्न करें और जहां तक हो सके इस लाभकारी जीव के पालने में सब मिल कर सहायता दें।

(९) मौलाना अब्दुल बारी लखनऊ—मुसलमानों के धर्म ने किसी के दिल को दुखाना अच्छा नहीं समझा, इस लिए गाय का बलिदान बन्द होना चाहिये।

(१०) कुरानशरीफ़ सूरा हज्ज में जो आदेश है वह इस प्रकार है—बलिदानों का मांस और रक्त ईश्वर तक नहीं पहुँचता, अपितु उनकी पवित्रता, सचाई, सेवा और दया पहुँचती है।

(११) पाकिस्तान सरकार ने मांस खाने के विषय में एक और भी लम्बा कदम उठाया है। बृहस्पतिवार और शुक्रवार दोनों दिन किसी भी जीव का वध नियमित रूप से बन्द कर दिया है, जिसका उल्लंघन करने वाले को कारावास तथा जुर्माना दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं।

वास्तव में मुसलमान भारत वर्ष में बहुत हद तक अशिक्षित थे। वे बहुत कम लिखे-पढ़े थे और आर्थिक तौर पर निर्बल, इस लिए वे सदा झगड़े की टोह में रहते थे और ईद के बलिदान के दिन इनको दंगा करने का खूब बहाना मिल जाता था। जो थोड़े बहुत विद्वान् तथा समझदार थे, उनकी दूसरे करोड़ों की संख्या में कौन सुनता था।

इस प्रकार समझदार लोग अंग्रेज़ी की इस लोकोक्ति के अनुसार चलते रहे—

'In all superstitions wise men follow fools'

अर्थात् सभी अन्धपरम्पराओं में समझदार आदमी मूर्खों का अनुसरण करते हैं।

इसका परिणाम पाकिस्तान के रूप में सामने आया। पाकिस्तान बने हुए ग्यारह वर्ष हो चुके हैं। बारहवां वर्ष आरम्भ हो गया है। जो लोग भारत छोड़ कर पाकिस्तान पहुँचे वे अपने किये की सज़ा भुगत रहे हैं। बहुत से लोग पाकिस्तान से लौट आये और उन्हें सरकार ने उनकी भूमि तथा मकान लौटा दिये। बहुत से अब भी भारत आने को तैयार हैं, यदि भारत सरकार उन्हें आने की अनुमति दे।

★

मांस, दुग्ध और घृत

समाचारपत्र 'प्रताप' दिनांक २६ नवम्बर १९५८ में एक लेख था, जो उसने 'नवाये वक्त' लाहौर से उद्धृत किया था। उसमें लिखा है कि मुसलमान मांसाहारी होने के लिये विख्यात हैं। परन्तु इन दिनों असीमित और अनुचित मांस विक्रय हो रहा है। इसके अतिरिक्त जितना अधिक मांसप्रयोग हो रहा है उस की तुलना के अनुसार नवीन पशुओं की उत्पत्ति नहीं हो रही है। पश्चिमी पाकिस्तान में मांस का नागा एक से दो दिन कर दिया है, परन्तु मांस की कमी की आज भी वही समस्या है। यदि पशुओं के वध करने का क्रम इसी प्रकार चलता रहा तो कुछ ही वर्षों में न केवल मांस की बहुत कमी हो जायगी अपितु दूध और घृत की वर्तमान रही सही उपलब्धि भी शेष न रह सकेगी। इस अवस्था में जाति के स्वास्थ्य को जो हानि पहुँचेगी उसका अनुमान लगाना सम्भव नहीं। यही नहीं, डेयरी और पशुओं के फार्म खोलने में भी अधिक समय व्यय होगा। मांस, दूध तथा घी की समस्या पहले ही साधारणतया असमंजस बन चुकी है। इस लिए आवश्यकता है कि पशुओं का अन्धाधुन्ध वध करना स्थगित कर दिया जाय और इस धन-राशि को सुरक्षित रखने के लिये भोजन-सम्बन्धी उचित प्रबन्ध किये जायँ।

भारत में मुसलमानों का शासन सैंकड़ों वर्ष तक रहा।

उनके पश्चात् दो सौ वर्ष अंग्रेज़ों ने शासन किया । हर समय मुसलमाल गोवध पर अधिकाधिक तत्पर रहे । यहां तक कि ईद के अवसर पर तो बड़े बड़े नगरों में ये लोग अंग्रेज़ी शासन का योग पा कर स्वस्थ और सुन्दर गाय का बलिदान के लिये बाज़ारों में से जुलूस निकालकर हिन्दुओं को मर्माहत करते रहे । उस एक ही दिन में हज़ारों पशुओं का अन्त कर दिया जाता था । शोक है कि इस समय किसी भी मानव के हृदय में यह विचार उत्पन्न नहीं हुआ कि हम क्या कर रहे हैं ।

जो पशु इनको घी और दूध देकर इन की और इनके बच्चों की सुरक्षा व पालन-पोषण करते थे, ये बदले में उन के सिर काट कर उन्हें पुरस्कृत करते थे । अब पाकिस्तान में भी उन्हों ने वही कार्यक्रम चालू रखा है । इस से अल्प समय में ही पशुओं की कमी से भविष्य के लिये घी दूध की कमी का महान् सकट उपस्थित हो गया है । मेरे विचार में यदि देश सम्मिलित रहता तो किसी भी मनुष्य को, जो पाकिस्तान बनने के जिम्मेवार हैं, ये शब्द निकालने का साहस न होता कि गोवध से हम घी और दूध से वंचित रह जायेंगे । अच्छा हुआ जो पाकिस्तान बन गया, क्योंकि पाकिस्तानियों को इस अनुपम लाभकी प्रतीति नहीं हो सकती थी । वे इसी प्रकार के और भी बहुत से लाभों से, जो उनको प्राप्त थे, वंचित होकर अपने कुकर्मों का परिणाम भुगतेंगे । शेख शादी ने कहा है :–

"कद्रे मुसीबत ओ दानद, जो मुसीबते गिरफ्तार आयद"

अर्थात् - मुसीबत की कदर वही जानता है जो मुसीबत में फँसा हुआ है ।

यदि पाकिस्तान या हिन्दूस्तान के मुसलमान मेरी उर्दू की पुस्तक गोश्तखोरी, जुलाई सन् १६४९ पृष्ठ २०० से २४२ तक पढ़ने का कष्ट करें तो उन को विदित हो जायगा कि मैंने

जो गौओं की उपस्थिति में दूध और घी की प्राप्ति से होने वाले लाभों का और न होने से हानियों का वर्णन किया है वे अब पाकिस्तान में प्रकट हो गए हैं। यह पुस्तक पाकिस्तान में भी होनी चाहिये, क्यों कि ५-११-४१ को मैंने दिन भर के लिये तांगा किराया करके लाहोर में आर्यसमाज, सनातन धर्म और दूसरी हिन्दू संस्थाओं (Institutions)के अतिरिक्त ट्रिव्यून, वीर भारत, प्रताप, मिलाप तथा इकबाल आदि पत्रों के सम्पादकों को भी यह पुस्तक भेंट की थी। सब की रसीदें मेरी डाक-बुक में विद्यमान हैं।

वास्तव में भारत व पाकिस्तान में क़साइयों की दुकानें सब उठ जानी चाहियें, क्योंकि बाईबल, कुरानशरीफ़ या हिन्दू शास्त्रों में कहीं भी इस व्यापार के लिये आज्ञा नहीं है। ये दुकानें धार्मिक नियमों के विरुद्ध हैं। इस पुस्तक में मैं ने जहां मौलवी अलादीन के इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि हिन्दुओं की कई जातियों में मांस खाने का परहेज़ नहीं, वहां पर यह भी लिखा है कि इन परहेज़ न करने वाली जातियों की सम्मिलित भारत में और बटवारे के पश्चात् भी कोई दुकान नहीं है। जो मानव मांस सेवन का अधिकार समझते हों वे घृणा-पूर्वक भले ही झटका या हलाल (जो दोनों घृणा के योग्य हैं) उपयोग में लावें। इस प्रकार पशुओं का वध समाप्त हो सकता है। मुसलमानों में हज के अवसर पर मक्का में यही रीति प्रचलित है। कहते हैं कि एक मुसलमान बादशाह ने यह समझ कर कि क़साई निर्दयी होते हैं उनकी एक सेना बनाई। परन्तु जिस समय युद्ध में शत्रु सेना से सामना हुआ तो उन में से अधिकांश मारे गये। जो कुछ बचे उन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि महाराज ! हम को बड़े धूर्त सैनिकों से सामना करना पड़ा, ये न हड्डी देखते हैं न पसली, जहां इनका दांव लगता है, बेतुकी मार मारते हैं। वास्तव में वीरता पशुओं को मारने वालों

में नहीं, अपितु युद्धविद्या में निपुण सैनिकों में होती है। हिन्दू जाति में चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वैश्यों का धर्म व्यापार है। वे हर प्रकार का व्यापार करते हैं, तथापि वैश्यों की एक भी दूकान देश के किसी भी भाग में मांस की नहीं है, क्योंकि यह नीच प्रकृति का कार्य है। इस लिए नीच मनुष्य ही इसे अपनाये हुए हैं।

★

उपसंहार

जहां तक मेरी समझ और अध्ययन का सम्बन्ध है—पुस्तक की भूमिका में मैं ने अपने विचारों को संक्षेप से वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त दूसरे देशों के विद्वानों पर भी हर दृष्टिकोण से विचार किया गया है। अब कुछ प्राकृतिक अनुभवों का वर्णन करना भी मनोरञ्जक होगा। इस बात से बहुत कम पुरुषों को आपत्ति होगी कि संसार में हमारा लक्ष्य एक ही है। परन्तु उस पर पहुँचने के पथ भिन्न हैं। प्रकृति का अध्ययन करते समय हम कई विचित्र बातें देखते हैं—वनस्पति, वृक्ष-पौधे, पशु-पक्षी, भूमि पर रहने वाले मनुष्य और पशु तथा समुद्र में रहने वाले जीवों में विचित्र भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ—मछलियों में एक प्रकार की मछली ऐसी होती है, जिसकी आंखें टार्च की तरह आगे निकल कर प्रकाश का कार्य करती हैं। कार्ब नाम की एक मछली ऐसी होती है जो एक समय में ढाई लाख अण्डे देती है और यह क्रम पचास साल तक चलता रहता है। उस में एक अद्भुत मछली पाई जाती है जिससे बच्चे फुटबाल की भांति खेलते हैं। यह मछली फिगाक़ के नाम से प्रसिद्ध है। यह बच्चों और शिशुओं को बहुत प्रिय होती है। इसलिये वे कभी कभी इससे फ़ुटबाल, बालीबाल, तथा बास्किटबाल भी खेलते हैं। इसका शरीर फूल कर पूरा गोलाकार हो जाता है। जब वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम इसको देखा तो उनको बहुत आश्चर्य

हुआ। यह गुब्बारे की भांति पानी के तल पर आ जाती है अथवा वायु के आधार पर इधर-उधर बहती रहती है। इस का पेट ऊपर को होता है। जब यह मछली भय मानती है तो झट जल पीना आरम्भ कर देती है जो इसके उदर में पहुँच कर आक्सीजन बन जाता है। इसके शत्रु इसे भक्षण करने से घबराते हैं। इसका कारण यह है कि पहले तो वह कण्ठ से नीचे उतर ही नहीं सकती। यदि कोई लोभवश इसको निगल जाय तो यह उसका बदला लेती है। शार्क मछली के उदर में फिगाक फूलती ही रहती है और इसके तीव्र कांटे शार्क के पेट तथा आँतों में छिद्र करके उस को मार डालते हैं। इसलिये बड़ी से बड़ी मछली भी फिगाक से बचकर ही रहती है। पर्वत पर रहने वाले रीछ और रीछनी शीतकाल में अपने बच्चों के सहित बर्फ में दब जाते हैं। उनके ऊपर कई कई फुट हिमपात हो जाता है किन्तु रीछनी बिना खाये-पिये छः महीने तक बर्फ में दबी रहने पर भी बच्चों को दूध पिलाती रहती है और उनका पालन करती है। इस को नासिका की वायु से हिम के ढेर में ऊपर को छिद्र बना रहता है। कद्दूदाना एक ही समय में दस करोड़ अण्डे देती है। यदि इस तुच्छ कीटाणु का विचार करें तो एक मनुष्य की चुटकी में इतने कीटाणु आ जाते हैं जितनी कि सम्पूर्ण पृथ्वी की जनसंख्या है।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया के समुद्र तट पर एक प्रकार की ऐसी मछली पकड़ी गई थी जो पाँच इञ्च लम्बी थी और समुद्रतल पर दो छोटी-छोटी टाँगों के सहारे सीधी खड़ी हो कर चलती थी। उसके दाँयें बाँयें के काँटे उसे समतोल रखने के काम आते थे।

इसी प्रकार सहस्रों भांति के वृक्ष तथा पौधे हैं। नौ नौ मील गहरे समुद्र जिनमें सौ सौ फुट लम्बी ह्वेल मछलियां और दो दो तीन तीन सौ फुट लम्बे सर्प हैं। इसी प्रकार सहस्त्रों भांति के पक्षी,

पृथ्वी पर रहने वाले विविध प्रकार के सुन्दर जीव और नाना प्रकार के हिंसक जीव जैसे चीता, शेर आदि हैं। इनकी भयानक आकृति होती है। पंजों में बड़े बड़े नोकदार नख और मुँह में ऊपर-नीचे की ओर लम्बे २ सूए की भांति चार दाँत होते हैं। तो भी इनकी पृथक् २ पहचान होती है। चीते के शरीर पर फूलों की भांति काले २ चिह्न, सिंह के शरीर पर सर्प की भांति लम्बी २ धारियां, शेरे बबर की ग्रीवा पर गुच्छेदार केश आदि विचित्र चिह्न होंते हैं। समुद्रतट पर एक ट्यूब की तरह जीव होता है। उसको यदि मध्य से काट दिया जाय तो वह मरता नहीं प्रत्युत उस के कटे हुए भाग मुख बन जाते हैं और वह जब उन से भोजन खाने लगता है तो वास्तविक मुख उन से भोजन छीनता है। अतः दोनों मुखों में छीना-झपटी होती रहती है। इस प्रकार दोनों में से कोई मुख भोजन को भीतर नहीं जाने देता। परिणाम यह होता है कि स्वयं उसी की मृत्यु हो जाती है। तालाबों और समुद्र में रहने वाली अनेक रंग की मछलियां दृष्टि में आती हैं। किस किस वस्तु का वर्णन किया जाय। कछुवी के अण्डे कछुवी की दृष्टि से पलते हैं। कछुवी अपने अण्डों पर दृष्टि रखती है। उस की दृष्टि से ही अण्डों में बच्चों का पोषण होता है। जो अण्डा कछुवी की दृष्टि से बाहर हो जाता है वह सड़ जाता है। यह सब प्रकृति के चमत्कार हैं। सहस्रों भांति के पुष्प हैं। कोई वृक्ष पुष्पों से लाल दृष्टिगोचर होते हैं और कोई दूसरे रंग के पुष्पों से लदे हुए। भारत के उत्तर की ओर हिमालय पर्वत की दो हज़ार मील लम्बी दीवार है। उसके नीचे की ओर हज़ारों मील तक फैली हुई समतल भूमि है और उस में भांति २ के वृक्ष, पौधे एवं संसार के अगणित जीव हैं। हिमालय से निकल कर कल-कल करती हुई सैकड़ों नदियां हैं। इसी प्रकार जीवन में अनेकों वस्तुएँ दृष्टि में आती हैं। जहाँ तक विचार

किया जाता है, बहुत कुछ इस के आगे भी देखने में आता है। इस बात का कहां तक वर्णन किया जाय । सूर्य, जो अपने समस्त मण्डल को प्रकाशित करता है पृथ्वी से नौ लाख गुणा बड़ा है। इतना ही नहीं, ऐसे असंख्य सूर्य हैं, जिनकी वास्तविक गणना इस वैज्ञानिक काल में भी मानव को विदित नहीं है। उन के आकार का विचार करें तो अन्य सूर्य हमारे सूर्य से बहुत बड़े हैं। इसी लिये कहा गया है कि ईश्वर तेरी महिमा अपरम्पार है! वह ईश्वर हर स्थान पर और हर एक चीज़ में है, वह चाहे जीवित हो या निर्जीव। सभी वस्तुओं को बनाना या मिटाना उसी का कार्य है।

ईश्वर के अस्तित्व के विषय में मनुष्यों के भिन्न भिन्न विचार हैं। उनके विचारों के अनुसार उनको परमात्मा की अनुभूति होती है। यद्यपि ईसाई और मुसलमान भी ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं और इन के सिद्धांन्त के अनुसार ईश्वर दयालु और न्यायकारी है, तो भी आज ये दोनों धर्म जीवों का वध करने के लिए सब से अधिक उत्तरदायी कहे जा सकते हैं। वर्तमान समय में यह भौतिक शरीर ही इन लोगों के लिये सब कुछ है। अब ये ईश्वर के उपासक न रह कर शरीर व संसार को ही सब कुछ समझने लगे हैं। मानो ये सदा इनके साथ ही रहेंगे।

एक बार मुझे एक अंग्रेज़ से जो बारक मास्टर था, बातचीत करने का अवसर मिला। वह ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता था। मैं ने उससे इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया, "पिछली लड़ाई में हमारी सेना अरब के एक ग्राम में गई। वहाँ देखा कि गांव के सब युवक चले गये हैं। केवल स्त्रियां, बच्चे तथा वृद्ध ही रह गये हैं। हमारे कमांडिग आफिसर ने उनको आदेश दिया कि वे सब घरों को खाली करके चले जाएँ, क्योंकि उन गृहों पर

अब उन्हें अपना अधिकार करना है। स्त्रियों ने उत्तर दिया कि यह हमारे घर हैं। हम और हमारे बच्चे कहाँ जाएँ ? इस पर हमारे अफसर ने फिर आदेश दिया कि घरों को इसी समय खाली कर दो, अन्यथा हम तुम सब को गोली मार देंगे। इस पर शिशु, वृद्ध तथा स्त्रियां सब घर छोड़ कर चले गये। यदि ईश्वर होता तो क्या उन निरपराधों पर दया न करता और उनको न बचाता ? फिर हम एक समतल भूमि पर पहुँचे, जहाँ पर आश्रय-गृह बने हुए थे और श्रमिक काम कर रहे थे। अचानक वहाँ शत्रुसेना के वायुयान आये और बमवर्षा प्रारम्भ कर दी। वहाँ पर जो सैनिक थे, वे सब आश्रय-गृहों में छिप गये और श्रमिकों पर बम गिरे, जिससे अधिकांश श्रमिक मर गये और बहुत से घायल हुए। भला इन श्रमिकों का क्या अपराध था ? मरना तो सैनिकों को ही था, परन्तु वह आश्रय-गृहों को जानते थे, इसलिये बच गये। यदि भगवान् होता तो निरपराध श्रमिक न मारे जाते।"

यह कथन उस अंग्रेज का था। परन्तु हिन्दू अपने दृष्टि-कोण से इसको ऐसे समझता है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्मकृत, कर्मों को भोगने के लिये विवश है और ये सब बातें उन कर्मों का ही परिणम हैं जो उन्हों ने पूर्व जन्म में किये थे।

इसके उपरान्त मैंने ईश्वर के अस्तित्व के विषय में पूछा कि करोड़ों वर्षों से सूर्यमंडल तथा चन्द्रमा आदि तारागणा अपना कार्य कर रहे हैं तथापि इनकी चाल में तनिक भी अन्तर नहीं आया। क्या इनको बनाने और इनको नियन्त्रण में रखने वाली कोई शक्ति नहीं है ? इस पर यह उत्तर दिया कि प्रकृति इन सब वस्तुओं की व्यवस्था करती है। परन्तु मैं पूछता हूं कि प्रकृति क्या वस्तु है ? वह स्वतन्त्र है अथवा परतंन्त्र ? जड़ है या चेतन ? यदि वह जड़ है तो पर-प्रकाश्य है या स्वयं-

प्रकाश्य ? यदि वह जड़ है तो परतन्त्र भी होगी और जो इसका प्रकाशक या प्रभु होगा वही ईश्वर है और यदि वह चेतन है तो स्वयंप्रकाश एवं स्वतन्त्र भी होनी चाहिये । तब तो केवल नाम-मात्र का अन्तर हुआ जिसको वह प्रकृति कहते हैं हम उसको ईश्वर कहते हैं। वही इस सम्पूर्ण सृष्टि तथा लोक-लोकान्तरों को धारण और नियन्त्रण करने वाली सत्ता है। उसी के आश्रित समस्त जीव स्थित हैं। हिन्दू उस चित् सत्ता के ही गुणभेद से तीन रूप मानते हैं। रजोगुण द्वारा संसार की उत्पत्ति करते के कारण उसे 'ब्रह्मा' कहते हैं, सत्वगुण द्वारा पालन करने से उसे 'विष्णु' कहते हैं और तमोगुण द्वारा इस सृष्टि का अन्त करने से उसी को 'रुद्र' कहते हैं। ईश्वर वह शक्ति है जो सब ही में विराजमान है। किन्तु वह किसी को दीख नहीं सकती। बिना ज्ञान या भक्ति के उसे कोई पा नहीं सकता।

छान्दोग्योपनिषद् में एक कथा है कि आरुणि ऋषि अपने आज्ञाकारी पुत्र श्वेतकेतु को आध्यात्मिक विद्या की शिक्षा दे रहे थे कि जिस तरह दही बिलोने से उसका सर्वोत्कृष्ट भाग मक्खन बन कर छाछ के धरातल पर तैरने लगता है। इसी प्रकार जो अन्न खाया जाता है उसी का उत्कृष्ट भाग मन बनता है। इसी प्रकार जल का उत्कृष्ट भाग आकाश और तेज का श्रेष्ठ भाग वाक् बनता है।

श्वेतकेतु ने इसका स्पष्टीकरण कराना चाहा तो महर्षि आरुणि ने कहा, 'अच्छा वह सामने बरगद का वृक्ष है। उसका एक फल तोड़ लाओ।" श्वेतकेतु ने आज्ञा पालन की। आरुणि ने कहा-"इसे तोड़ो और देखो।" श्वेतकेतु ने फल तोड़ कर देखा। उसमें सैकड़ों बहुत छोटे छोटे बीज थे। वह बोला, "भगवन् बीज हैं।" ऋषि जी ने कहा "इसी एक बीज को तोड़कर देखो।" श्वेतकेतु ने बीज तोड़ा तो कुछ भी दृष्टि न पड़ा। वह कहने लगा—"महाराज कुछ भी दृष्टि

में नहीं आया।"[1] फिर तो महर्षि ने कहा, "बस तू, इस बरगद के उस उत्कृष्ट बीज को नहीं जानता, जिससे इस महान् वृक्ष की उत्पति हुई है। ऐसे ही सर्वोत्कृष्ट आत्मा पर इस सृष्टि का आधार है। वही सत् है। मैं सत्य कहता हूं। तू विश्वास कर—यह सत् तू ही है।" मनुष्य ज्ञान की दृष्टि उपार्जन करने पर मानव आत्मा का साक्षात् अनुभव कर सकता है। वेदान्त तो आत्मा परमात्मा को एक ही मानता है।

यूरोप के विद्वान् ए० क्रेस मौरीसन का विचार ईश्वर के अस्तित्व के विषय में—यह एक सत्य है कि यूरोप और अमेरिका के नास्तिक भी अब आस्तिक बनते जा रहे हैं। अमरीका का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आइन्स्टीन ईश्वर को ही सृष्टि का रचयिता मानता है। पहले यूरोप के वैज्ञानिक कहते थे कि सृस्टि की रचना ईश्वर ने नहीं की। यह तो अपने आप अनेकों रूप धारण करने के पश्चात् वर्तमान अवस्था में आई है। प्रोटोप्लाज़्म (Protoplasm) से मछली, मछली से हाथी, हाथी से बन्दर और बन्दर से मनुष्य बनने की मन: कल्पित बातों का 'डारविन' जैसे नास्तिक ने प्रचार किया। परन्तु समय आया जब स्वयं यूरोप वालों ने डारविन के सिद्धान्तों का खण्डन कर दिया। अब वह विज्ञान के आधार पर ही विचार प्रकट कर रहे हैं कि ईश्वर है और उसने समस्त सृष्टि की रचना की है। वैदिक धर्म यह बतलाता है कि यह सृष्टि

---

1 श्वेतकेतु के उत्तर से प्रतीत होता है कि ईश्वर का विधान अनुभव गम्य है, जिसको मानव के चर्मचक्षु देखने में असमर्थ हैं। यदि बीज टूटने पर कुछ नहीं दृष्टिगोचर हुआ तो बरगद् के महान् वृक्ष का कैसे प्रादुर्भाव हुआ अर्थात ईश्वरीय सत्ता से ही समस्त सचराचर जीव, समुद्र तथा पहाड़ आदि संसार रूप में प्रत्यक्ष भास रहे हैं। यही 'जगत' नाम से प्रसिद्ध है।

अपूर्व घटना से अपने आप नहीं बनी। सृष्टि के प्रारम्भिक नियम अटल हैं। पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण सब नियमपूर्वक कार्य कर रहे हैं। यदि सृष्टि बिना ईश्वर के अपने आप बन जाती तो कमरे में काग़ज़, पेन्सिल तथा रंग आदि रख देने से भी अपने आप चित्र बन जाते। चूना, गारा आदि वस्तुएँ रख देने मात्र से अपने आप सुन्दर मकान नहीं बनते। समुद्र की लहरें, सूर्य और चन्द्रमा की गति तथा वृक्षों के फल, फूल, बूटे और रंग-बिरंगे उद्यान सब प्रभु की महिमा गा रहे हैं।

मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं कि एक चींटी को मार कर जीवित कर दे अथवा दूसरी उसी प्रकार की चींटी बना दे। प्रभु की महिमा अपरम्पार है। इसका किसी ने पार नहीं पाया। यूरोप के वैज्ञानिकों ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'Man does not stand alone (मैन डज़ नॉट स्टैण्ड एलोन)' अर्थात् मनुष्य अकेला कुछ नहीं कर सकता। ईश्वरीय सहयोग हर कार्य में अनिवार्य है। हम अभी तक विज्ञान की प्रथम अवस्था में हैं। डारविन की मृत्यु हुए ६० साल हो गये हैं। उस समय से अब तक विज्ञान ने सफलता के कितने ही प्रयोग पूर्ण किये हैं। और प्राचीन वैज्ञानिकों की कई उक्तियों को झूठा कर दिया है। नित्य नवीन आविष्कार हो रहे हैं और नित्य नवीनतम प्रयोग किये जा रहे हैं। ज्यों ज्यों नवीन आविष्कार तथा प्रयोग हमारी दृष्टि में आते हैं त्यों त्यों हम परमात्मा के समीप होते जा रहे हैं। इस सृष्टि और ब्रह्माण्ड की रचना को देख कर यूरोप के वैज्ञानिकों के मुख से यही बात निकल रही है कि इस सृष्टि का रचयिता एक महान् इंजीनियर है। वह बड़ा ही गुणज्ञ है। शरीर का निर्माण, वृक्षों का निर्माण और भिन्न भिन्न प्रकार के फल-फूलों की कलाकारी उस प्रभु की महिमा है। कितनी सुनियोजित

ढंग से यह अद्भुत रचना की गई है, जिसको देखकर हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं । पृथिवी अपने ठीक स्थान पर घूम रही है, यों ही अटकल-पच्चू नहीं घूम रही । अर्थात् ठीक क्रम से घूम रही है । एक घण्टे में एक हज़ार मील के अनुसार भ्रमण करती है । यह ऐसा नियम है जो कदापि टूट नहीं सकता । यदि टूट जाय तो उत्पात हो जाय । हम प्राणियों का जीवन आपत्ति में पड़ जाय । यदि पृथिवी एक सौ मील एक घण्टे के क्रम से घूमने लगे तो हमारे दिन और रात अब की अपेक्षा दस गुना लम्बे हो जायँ । पर क्या हो ? सूर्य का ताप हमारी सब हरियावल को जलाकर राख कर देगा, क्योंकि दिन जैसे लम्बे व बड़े होंगे, वैसी ही गरमी अधिक होगी । इस प्रकार रात लम्बी होने से सब उगने वाले अंकुर बरफ़ से जम कर कुम्हला जायेंगे ।

सूर्य हमारे जीवन का स्रोत है । इसका ताप बारह हज़ार फारेनहीट रहता है । जिस पृथिवी पर हम रहते हैं सूर्य से बहुत दूर है । इसी कारण हम तक उसका सहनीय ताप पहुँचता है । यदि पृथ्वी सूर्य के समीप होती तो सूर्य के ताप से हम जल कर भस्म हो जाते । जितना ताप अब सूर्य का है यदि वह इससे आधा कर दे तो भी हम गर्मी से भुन कर मृत्यु-ग्रस्त हो जायेंगे । भगवान् बड़ा दयालु है । उस का कार्य उसके अटल विधान से नियमपूर्वक चल रहा है । चन्द्रमा जिस स्थान पर अब है यदि इससे पचास हज़ार मील और दूर होता तो समुद्र का ज्वारभाटा और लहरें इतनी अधिक होतीं कि दिन में दो बार समस्त भूमि के चिह्न डूब जाते और सारे पर्वत बह जाते । यदि पृथिवी की तह दस फुट और गहरी होती तो आक्सीजन गैस उत्पन्न ही न होती और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बिना आक्सीजन के संसार का कोई भी प्राणी जीवित न रह सकता । यदि समुद्र कुछ और गहरा होता तो

कारबन डाय ओक्साइड और आक्सीजन घुल-मिल जाते और किसी प्रकार के वृक्ष, लता, पत्ती, खेतियां हरियाली उत्पन्न न हो सकतीं। यदि वायु वर्त्तमान वायु से अधिक तेज़ होती तो तारागण जो हमें चमकते दिखाई देते हैं, वे सब आपस में टकरा कर जगह २ आग लगा देते। इसी कारण यूरोप के विद्वान् ए० क्रेस मौरीसन ने ईश्वर के अस्तित्व के लिए उपर्युक्त सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। उन्हों ने यह सिद्ध किया है कि पृथिवी पर हमारा जन्म यों ही अपने आप नहीं हुआ। यह बात अब कोई वैज्ञानिक नहीं मान सकता। अब तो सिद्धान्तों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि सृष्टि की उत्पत्ति नियमपूर्वक और सुयोजित ढंग से हुई है।

संसार में कुछ प्राणी ऐसे हैं जो ईश्वर को न तो सत् मानते हैं और न उसे अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य को भले कार्य करने आवश्यक हैं। सब बुराइयों से बचना, प्राणियों पर दया करना, मांस न खाना, निर्धनों की सहायता करना आदि उनके नियम हैं। ऐसे मानव भले ही ईश्वर के विषय में विश्वास न रखते हों, तब भी वे उन ईश्वर के मानने वालों की अपेक्षा अच्छे ही हैं, जो धर्म के ठेकेदार तो हैं परन्तु जीवों को मारना, उनको सताना, स्त्रियों का हरण करना और लूट-मार करना आदि दुष्कर्मों में जिनको कोई बुराई नहीं भासती। क्या ऐसे ईश्वर को मानने वाले, जो दूसरों को दुःखी करते हैं, वास्तव में भले मानव कहे जा सकते हैं? वे लोग इस तरह धृष्टता करने के लिए ईश्वर से सहायता चाहते हैं। क्या ऐसे कर्म करने से वे ईश्वर और उसकी सृष्टि की भली प्रकार सेवा कर रहे हैं और क्या वे ईश्वर की दृष्टि में मान पा सकते हैं? वे तो प्रभु को धोखा देना चाहते हैं।

अब तनिक इस विषय पर विचार करें कि क्या मानव प्रारम्भ से ही आमिषभोजी हैं अथवा अन्न व साग सब्ज़ी का प्रयोग

करने वाले। बालक के उत्पन्न होने से पूर्व ही प्रकृति की ओर से माता के स्तनों में दुग्ध उत्पन्न होना आरम्भ हो जाता है। इसी भाँति वृक्ष और पौधे पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं। जहां तक मनुष्य की बुद्धि का सम्बन्ध है मांसभोजी जंगली पशु तथा घास खाने वाले चौपाये और दोपाये पशु के पश्चात् ही उत्पन्न हुए होंगे। यदि प्रथम ही मांस-भोजी पशु उत्पन्न होते तो उनका बिना मांस के जीवित रहना असम्भव था। इस लिए निश्चय होता है कि आदि में उत्पन्न हुए जीव-जन्तु और मनुष्य निरामिष-भोजी ही थे। यह सिद्धान्त सर्वथा इस विचार को मिथ्या सिद्ध करता है कि मानव अनादि काल से ही आमिष-भोजी है।

अभी थोड़ा समय हुआ देहली में (International Vegetarian Conference) अन्तर्जातीय निरामिष भोजी सम्मेलन हुआ था। यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। इससे निश्चित ही यह अनुमान लगाना होगा कि मांम-भक्षण करने से मानव का मन कुछ असन्तुष्ट हो गया है और अब उसकी रुचि सब्ज़ी की ओर होने लगी है। मेरा विश्वास तो यही हैं कि जैसे २ मनुष्यों को शाक-सब्ज़ी के लाभ और मांस खाने की हानियों का ज्ञान होता जायगा, उतना ही वे अधिक से अधिक शाक-भोजी होते जाएँगे, क्योंकि प्रकृति ने संसार में मनुष्य के जन्म लेने से पूर्व उस के लिए ठीक आहार—वृक्ष, पौधे और अनाज की उत्पत्ति कर दी थी, अतः उन पर उसका निर्भर होना यथार्थ ही है। आधुनिक विज्ञानिकों के कथन के अनुसार पृथिवी आदि पंच भूतों में एनर्जी (Energy) ही सारभूत है। इस एकता को जानने के लिए मैं ने समाचारप्रसारण (ब्राड्कास्टिंग) पर विचार किया। प्राकृतिक विद्युत् तो आकाश से पृथिवी तक फैली हुई है। जब प्रसारणस्थान (ब्राडकास्टिंग स्टेशन) से कोई समाचार प्रसारित किया जाता है तो चाहे कितने स्थानों पर

रेडियो हों हज़ारों व लाखों की संख्या नहीं अपितु असंख्य स्थानों में भी एक ही समय पर उसकी ध्वनि सुनी जाएगी।

पशुओं के कार्य अथवा स्वभाव का अध्ययन करने से मनुष्य एक दुविधा में पड़ जाता है। उदाहरणार्थ—भेड़ों में भेड़-चाल, कुत्तों में अपने सजातीय से शत्रुता, सिंहों का परस्पर प्रेम आदि ऐसी ही बातें हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में एक का दूसरे से भिन्न स्वभाव होता है। न एक दूसरे से रंग मिलता है, न रूप, न स्वभाव, न धर्म। आर्थिक दशा भी भिन्न होती है। प्रकृति ने सब जीवों में मनुष्य को ही विवेकशक्ति प्रदान की है, जिस से वह भले-बुरे कार्यों की जांच कर सकता है तथा चोरी, झगड़ा, हत्या एवं मादक वस्तुओं से बच सकता है। मनुष्य भले व बुरे कार्य करके अपने भाग्य को स्वयं बनाता है। यह सदा से ऐसा ही चलता आया है और ऐसा ही चलता रहेगा। यही हिन्दुओं के आवागमन का सिद्धान्त है। कई धर्मों वाले इसे नहीं मानते। यदि इस सिद्धान्त को मान लिया जाय तो मानव बहुत सी बुराइयों से बच सकता है।

आत्मा है या नहीं—इस पर भिन्न भिन्न विचार हैं। हम आत्मा को सदा रहने वाला मानते हैं। यद्यपि स्वप्न और सुषुप्ति में उस शरीर का बोध नहीं रहता, तथापि आत्मा इन अवस्थाओं में भी कई प्रकार के सुख और दुःख अनुभव करता है। बोध हो जाना ही उसकी विशेषता है, और वह बोध की अवस्था सदा एक-रस रहती है। यद्यपि पागलपन और बेहोशी आदि की अवस्था में बुद्धि तो विकृत हो जाती है परन्तु, उसके विकार को प्रकाशित करने वाली शक्ति ज्यों की त्यों रहती है। जो भी परिवर्तन होता है वह बुद्धि आदि नश्वर वस्तुओं में ही होता है। आत्मा तो बुद्धि से परे है। उस में किसी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना नहीं है। निर्विकार होने के कारण वह सदैव विद्यमान रहता है।

गीता में आत्मा के सम्बन्ध में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

(गीता अ. २ श्लोक २२)

अर्थ—जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है।

आत्मा के तत्त्व को समझाते हुए भगवान् ने कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

(गीता अ.२ श्लोक २०)

अर्थ—यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है, अथवा न यह आत्मा हो कर फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर का नाश होने पर भी यह नष्ट नहीं होता।

इस आत्मतत्त्व को अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान् ने कहा है कि यह सदैव एकरस और एकरूप रहता है। न इसमें बाल्यावस्था, न युवावस्था और न ही जरठ अवस्था है; हाँ यह ईश्वर का एक अंश है। इसको तलवार काट नहीं सकती है, न पानी गीला कर सकता है, न आग जला सकती है और न वायु सुखा सकती है। आवागमन का सिद्धान्त समझाते हुए भगवान् श्री कृष्ण

ने कहा है कि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म भी निश्चित है, यही हिन्दू फिलासफी का मनोविज्ञान (रहस्य) है।

हिन्दू श्री राम चन्द्र जी तथा श्री कृष्ण चन्द्र जी को भगवान् का अवतार मानते हैं अथवा इस अनन्त शक्ति ने, जो समस्त ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विद्यमान है, ऐसे महान् व्यक्तियों को उत्पन्न किया, जिन के अद्भुत कार्यों ने समस्त सृष्टि को आध्यात्मिक मार्ग का प्रकाश प्रदान किया।

श्री राम चन्द्र जो, ने अपने पिता की आज्ञा पालन करने के लिए राजपाट को त्याग दिया और चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार किया। उनके कनिष्ठ भ्राता श्री लक्ष्मण जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सीता जी ने उनके साथ रह कर उनकी बन की आपत्तियों में भाग लेने का आग्रह किया और सहयोग दिया। उनके दो छोटे भ्राता श्री भरत तथा शत्रुघ्न ने उनकी अनुपस्थिति में प्रजा के आग्रह करने पर भी राज्य करना स्वीकार न करते हुए श्री राम चन्द्र जी की चरणपादुका सिंहासन पर रख कर उनकी ओर से चौदह वर्ष तक प्रजा की सेवा की। राज्य मानो इन चारों भ्राताओं में गेंद की भाँति बना हुआ था। यही त्याग का अनुपम आदर्श है, जिससे इतिहास में राम का उच्च स्थान है। दूसरी ओर राज-सिंहासन या राजमुकुट तो बड़ी वस्तु है, साधारण छोटे २ विषयों पर भी ससार के इतिहास में रक्त की नदियां बहने के उदाहरणों की कमी नहीं है।

श्री कृष्ण चन्द्र जी मानवीय योद्धा होते हुए भी ऐसे पराक्रमी थे कि कंस के दरबार में कुवलयापीड़ हाथी को बिना किसी शस्त्र के उसी के दांत निकाल कर उन से मार डाला और असंख्य शत्रुओं तथा दुर्धर्ष राक्षसों को जो भांति भांति के भयानक रूप

धारण करके उन के सामने आए मृत्यु के घाट उतार दिया। उनकी ज्ञानगरिमा का विचार करें तो उन्हों ने उस गीता का उपदेश दिया जिसका अनुवाद संसार की प्रत्येक भाषा में हो चुका है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, निष्काम कर्म और आत्मा आदि के रहस्यों पर जैसा विचार उसमें है वैसा उदाहरण संसार भर की किसी भी दूसरी पुस्तक में दृष्टिगोचर नहीं होता। इन सब गुणों के होते हुए भी वे इतने करुणामय थे कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर के यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण प्रक्षालन का कार्य अपने लिये लिया। इन्हीं अद्भुत कार्यों के कारण उनको ईश्वर माना गया है।

लेखक की हार्दिक इच्छा है कि भारतीय जनता अपने जीवन-काल में इन आदर्शों पर धारणा रखे जो कि हम को महापुरुषों से प्रसाद रूप में मिली हैं। भारत की रक्षा के निमित्त हमारे योद्धा भी वैसे ही आदर्श हों जैसे हमारे पथ-प्रदर्शक हुए हैं। बस, प्रत्येक जीव पर दया करना तथा क्रूर को क्रूरता से मिटा देना ही धर्म है।

ओ३म् शम्

★

सम्मतियां

इस पुस्तक के विषय में कुछ महानुभावों के विचार प्राप्त हुए हैं जो नीचे प्रस्तुत हैं—

(१) मिन जानिब लाला चानन राम एडवोकेट मोगा—
ता० ९—११—४१

किताब वाकई बहुत मजेदार और दिलचस्प भी है। काफी आपने मिहनत की है, बेशक ऐसी किताब कम दस्तयाब होती है।

(२) श्री मालवीय जी का बंगला, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

किताब बड़ी मेहनत से तैयार की गई है। हम आप की मेहनत की दाद देते हैं और उम्मीद करते हैं कि आप का दूसरा एडीशन तैयार हो गया होगा। हमारा इरादा है कि किताब हर एक उपदेशक और पंडित के हाथ में हो, ताकि इसके अन्दर ज़ाहिरकरदा ख्यालात का इजहार हो सके। आप जितनी कापियां भेज सकें बजरिये डाक पारसल भेज दें। ११·९·४२

(३) लाला केवल राम

जनाब आली गुजारिश है कि आप की छपवाई हुई किताब गोश्तखोरी' जिस की कीमत सवा रुपया है चन्द रोज़ हुए मेरी नज़र से गुज़री जो कि निहायत दिलचस्प और मुफीद है। आप बराय मेहरबानी इसकी एक कापी बजरिये वी. पी. अरसाल फरमा कर मशकूर फरमावें।

बाँगमुहम्मद-आर एण्ड एफ सेक्शन
आरर्डीनेन्स फैक्टरी, अमृतसर १४. १ ४७

(४) लाला किशन चन्द एडवोकेट लुधियाना—(१४ जुलाई सन् १९४१ ई०)

आपकी तसनीफ़ वाकई बेमिसाल है और बहुत ही मुफ़ीदे मतलब चीज़ है।

(५) महाशय जी,

नमस्ते। आप की किताब पढ़ने से मुझे आप के

कैरैक्टर का पता चला हैं। आंप आलिम मुदब्बर होने के अलावा बड़े बुलन्द-इख़लाक़ और मर्द-मैदान भी हैं। आपने अपने वक्त में बड़ी जुर्रत से मांसाहारियों को पछाड़ा है और किताब को हर लिहाज़ से सौ फी सदी मुकम्मिल लिखा है।

दीवान चन्द

४-५-५१ कमरा नं० २०-२१ ब्लाक नं० १६

पुराना किला, नई दिल्ली

(६) आपकी पुस्तक मुझे बहुत पसंद आयी। आपने बहुत परिश्रम किया है और इस से इस विषय का आपका ज्ञान भी काफी ठोस और व्यापक जान पड़ता है। 'सकायात गोश्तखोरी' का ठीक अनुवाद तो 'मांसाहार के दोष' होता है, परन्तु मेरे विचार से इस पुस्तक का नाम 'मांसाहार की भ्रान्ति' रहे तो अधिक अच्छा होगा।

सनातन देव

२३ जनवरी सन् १९५९ श्री कृष्णाश्रम, दावानल कुण्ड,

वृन्दावन (मथुरा)

(७) 'वध करके हा ! पशु जनों का खून खून करते हैं पुकार।
स्वर्ग-मार्ग यह यदि तो, बतलावो हमें नरक का द्वार ।।'

'मांस भक्षण की भ्रान्ति' पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा, जिस में लेखक ने तड़पते हुए शब्दों में अपने हृदयगत विचारों को व्यक्त किया है। आशा है भारत का ही नहीं अपितु विश्व का प्रत्येक नर-नारी इस कलुषित कलंकमयी कालिमा को धरित्री-तल से मिटा देने का दृढ़ संकल्प धारण करेगा, जिस से हम मनन-शील प्राणी होने के कारण मानव कहाने योग्य हो सकें।

—आयुर्वेदाचार्य डा० सत्यनारायण ए० एम० एस०
प्राध्यापक गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा)

★

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
११	१३	छोटे-बड़े	छोटे-बड़े
१४	१८	कई प्रकार	कई प्रकार के
२४	२५	सपाट	सपाटू
३१	९	जातों	जाती
३३	९	कोबा हर	को बाहर
४०	५	निकला जाय	निकल जाय
,,	१६	उत्पन	उत्पन्न
४४	५	नाइट्रोजन	नाइट्रोजनस
४६	१५	अलम	अम्ल
४८	१	प्रात्त	प्राप्त
,,	२१	अंतड़ियों	अँतड़ियों का
४९	१६	दूलरों	दूसरों
५१	१	तर,फ़	तरफ़
५३	५	भइायों	भाइयों
,,	१५	करने के पूरा	पूरा करने के
५६	६	बह	यह
५९	७	किशन सिंह*	विशनसिंह

*यह प्रसंग बूंदी के राजा विशनसिंह का है ; अतः यहां सभी स्थानों पर, 'किशनसिंह' की जगह 'विशनसिंह' समझना चाहिये ।

६०	२४	"अन्यान्य	अन्यान्य
६१	२३	कहा,	कहा।
६४	१३	ससान	समान
,,	१७	ह्य	ह्य्
७३	१६	गई।	गये
८५	१	रीढ़ की ही को हड्डी	रीढ़ की हड्डी ही को
८७	८	मसूड़े के	मसूड़ों के
९१	१०	बिच्खू	बिच्छू
१००	२०	गंदगों	गंदगियों
१०१	१४	भो	भी
१०२	१०	यहाँ	जहाँ
,,	१६	सुसरो	सुसरी
,,	२२	दूसरों	दूसरों को
१०५	१२	अशुद्ध	शुद्ध
११२	७	निवृतिस्त	निवृत्तिस्तु
११३	१६	'यज्ञों वै:	यज्ञो वै
११७	१	समाजिक	सामाजिक
,,	२	अध्यात्मिक	आध्यात्मिक
१२७	८	पुत्रके	पुत्रका
१३४	२१	सुसलमान	मुसलमान
१३८	१६	मारे जाते हैं। तो	मारे जाते हैं तो
१४६	१६	उत्तर दिया, मैंने	उत्तर दिया, "मैंने
१५३	२१	रह ?	रहता ?
१५५	१९	बशर	बशर।[8]
,,	२०	हैवानों[8]	हैवानों[9]
१५६	६	त	तू

१५८	७	पती	पति
१६०	२१	आन्तर	अन्तर
,,	२६	ध्रव	ध्रुव
१६२	१७	वेहरमी	बेरहमी
१७३	२०	मांस खाने पर	मांस न खाने पर
१६६	५	मुहमम्द	मुहम्मद
,,	१७	करना	करता
१७०	२६	निदयता	निर्दयता
१७८	२३	हैं,।	हैं,
१८५	१२	अन्त:	अत:
,,	१३	में एक दिन	एक दिन
१९५	१५	दहकता	दमकता
,,	१६	सवल्प	संकल्प
१९७	९	देश-भक्ति	देशभक्त
२०३	८	जायग	जायगा
२०५	२३	ऐसा	जैसा
२०८	८	डाक्टर ने	डाक्टर के
२१२	१९	करने, के	करने के
२१४	१३	जा	जाय
२२६	९	इस प्रकार	इसी प्रकार
२३२	७	ह्यमन	ह्यूमैन
२४४	१५	स्वच्छ, रहे	स्वच्छ रहे
२५४	१२	लीपे जाते जाते	लीपे जाते

LIBRARY

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

MUSSOORIE

Accession No. 125763

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving